सामाजिक नियंत्रण
Social Control

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग, ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी-263139

नैनीताल, (उत्तराखण्ड़)

फोन न0- 05946- 261122, 061123

Toll free No. : 18001804025

Email: info@uou.ac.in Website: https://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

संयोजक
निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. **प्रो. जे.पी. पचौरी,** (सदस्य) कुलपति, हिमालयन, विश्वविद्यालय, जीवनवाला, देहरादून
2. **प्रो. सी.सी.एस. ठाकुर,** (सदस्य) प्रो. (से.नि.), रानी दुर्गावती, विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश
3. **प्रो. रबीन्द्र कुमार,** (सदस्य) इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली
4. **प्रो. रेनू प्रकाश,** (सदस्य) समन्वयक, समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
5. **डॉ. भावना डोभाल,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
6. **डॉ. गोपाल सिंह गौनिया,** (मनोनीत सदस्य) असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी), समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. रेनू प्रकाश, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**
प्रो. रेनू प्रकाश, प्रध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	1, 2, 3, 5, 6, 7, 8
शैलजा, सहायक प्रध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	4, 14, 15
डॉ. भावना डोभाल, सहायक प्रध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	9, 10
डॉ. गोपाल सिंह गौनिया, सहायक प्रध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	11, 12
डा. राजेन्द्र सिंह क्वीरा असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एण्ड मीडिया स्टडीज, उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	13

सम्पादन

प्रो. रेनू प्रकाश
समन्वयक
समाजशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

शैलजा
असिस्टेंट प्रोफेसर (ए.सी),
समाजशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :

कापीराइट: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

प्रकाशन वर्ष: 2025
प्रकाशक: उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, 263139

नोट: इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड़ मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ या किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मुद्रित प्रतियॉं-

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

चतुर्थ समेस्टर (Forth Semester) **BASO (N) 202**

CORE PAPER **4 CREDITS**

अनुक्रमणिका

सामाजिक नियंत्रण

Social Control

खण्ड-1
सामाजिक नियंत्रण
Social Control

इकाई-1 सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा एवं महत्व **1-9**

Concept and Importance of Social Control

इकाई-2 सामाजिक नियंत्रण के साधन तथा प्रकार **10-22**

Means and Types of Social Control

इकाई-3 सामाजिक नियंत्रण में परिवार की भूमिका **23-37**

Role of Family in Social Control

खण्ड-II
सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक अभिकरण
Nonformal Agencies of Social Control

इकाई 4. सामाजिक मानदंड **38-50**

Social Norms

इकाई 5. **जनरीतियाँ** **51-60**

Folkways

इकाई 6. लोकाचार 61-70
Mores

इकाई 7. धर्म 71-84
Religion

इकाई 8. नैतिकता 85-92
Morality

खण्ड-III
सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक अभिकरण
Formal Agencies of Social Control

इकाई 9. राज्य 93-103
State

इकाई 10 कानून 104-111
Law

इकाई 11. शिक्षा 112-125
Education

खण्ड-IV
सामाजिक नियंत्रण में जनमत की भूमिका
Role of Public Opinion in Social Control

इकाई 12. प्रेस 126-145
Press

इकाई 13 रेडियो 146-155
Radio

इकाई 14 चलचित्र 156-170
Cinema

इकाई 15 नेतृत्व 171-184
Leadership

इकाई – 01
सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा एवं महत्व
(Concept and Importance of Social control)

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा एवं परिभाषा
1.3 सामाजिक नियन्त्रण का महत्व
1.4 सारांश
1.5 परिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 लघु उत्तरीय प्रश्न
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

जैसा कि सर्वविदित है एक अकेला मानव अपने अस्तित्व की रक्षा अकेले नही कर सकता है। जीवित रहने के लिए उसे एक दूसरे व्यक्ति, व्यक्तियों के समूह तथा एक समाज की आवश्यकता होती है। समाज में रहकर ही वह अपना सामाजीकरण करता है, और समाज में रहने योग्य बनता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के विचार, व्यवहार एवं प्रवृत्तिया भिन्न-भिन्न होती है। कुछ प्रवृत्तियां समाज के लिए लाभदायक होती है तो कुछ हानिकारक। सामाजिक नियंत्रण एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति के व्यवहार एवं उसकी हानिकारक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाकर उसको समाज में रहने योग्य बनाता है, और सामाजीकरण के साथ-साथ समाज हित में कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज को सन्तुलित एवं व्यवस्थित रखने में सामाजिक

नियन्त्रण की एक प्रमुख भूमिका होती है। इस सम्बन्ध में किंग्सले डेविस ने नियन्त्रण की विभिन्न विधियों को इतना महत्वपूर्ण माना है कि आपके अनुसार समाज का निर्माण ही ''सामाजिक सम्बन्धों''और नियन्त्रण की व्यवस्था द्वारा होता है क्योकि एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व किसी प्रकार भी सुरक्षित नही है।"[1] शिक्षार्थियों प्रस्तुत इकाई में हम समाजिक नियन्त्रण के अर्थ तथा विभिन्न विद्वानों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर समाज एवं समाज में निवासरत मानव समूहों पर सामाजिक नियन्त्रण के प्रभाव एवं महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास करेगें।

1.1 उद्देश्य

- सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- सामाजिक नियंत्रण के द्वारा समाज किस प्रकार व्यवस्थित एवं संगठित रहता है यह जान सकेंगे।
- सामाजिक नियन्त्रण के महत्व को समझ सकेगे।

1.2 सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा एवं परिभाषायें

जैसा कि हम सब जानते है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और कोई भी समाज इससे अछूता नही है। प्रत्येक समाज जैसे-जैसे विकास की दिशा की ओर अग्रसर होता है वैसे-वैसे उससे अनेक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगते है, सामाजिक नियन्त्रण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए मैकाइवर एवं पेज का मानना है कि "सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उस ढग से है जिसके द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील सन्तुलन को बनाए रखने के लिए कार्य करती है।"[2] सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा के सन्दर्भ में यदि बात करे ई० ए० रास वह पहले अमरीकी समाजशास्त्री थे जिन्होंने अपनी पुस्तक 'Social Control' में सर्वप्रथम इस तथ्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया, उनके अनुसार "सामाजिक नियंत्रण विधियों की प्रणाली है, जिसके प्रयोग द्वारा समाज अपने सदस्यों के आचरण को व्यवहार के स्वीकृत मानको के समरूप बनाता है।"[3]1894 में शब्द "सामाजिक नियन्त्रण'' का सर्वप्रथम प्रयोग स्माल एवं विसेट द्वारा किया गया था, सामाजिक व्यवहार पर सत्ता के प्रभाव का अपनी पुस्तक "Introduction to the study of Society" में वर्णन करते समय इन लेखको ने निष्कर्ष निकाला कि ''सत्ता पर जनमत की प्रतिक्रिया सामाजिक नियन्त्रण को अत्यधिक नाजुक एवं कठिन बना देती है।"[4]

सामाजिक नियन्त्रण की पहली पुस्तक का बीजारोपण सर्वप्रथम ई० ए० रॉस द्वारा किया गया. 1901 में "Social Control" नाम से प्रकाशित इस पुस्तक में रॉस द्वारा सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा का विस्तृत रूप मे

वर्णन किया गया सामाजिक नियन्त्रण के सन्दर्भ में यह पुस्तक अग्रणी पुस्तक कहा जा सकता है, रॉस ने सामाजिक वृत्तियों सहानुभूति, सामाजिकता, न्याय भावना एवं उन साधनों जिनके द्वारा समूह व्यक्ति के व्यवहार पर उसे लोकरीतियों एवं लोकाचारों का पालन कराने हेतु दबाव डालता है, पर बल दिया।[5]

1902 में कूले की पुस्तक "Human Nature and the social order" प्रकाशित पुस्तक को रास की पुस्तक का प्रशंसनीय पूरक कहा गया है, उसने व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समूह – दबाव के प्रभाव तथा उसके व्यवहार को समझने हेतु व्यक्ति के जीवन - इतिहास का अध्ययन करने कि आवश्यकता पर बल दिया, विशेष रूप से उसके द्वारा "दर्पण" सिद्धान्त तथा चेतना के सामाजिक उद्भवों के वर्णन में अन्य विचारको को सामाजीकरण की प्रकिया एवं व्यक्ति तथा उसके समूह के मध्य अन्तक्रिया के अध्ययन करने की ओर प्रेरित किया।"[6] इसी प्रकार 1906 में विलियम ग्राहम समनर की कृति "Folkways" का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक के माध्यम से समनर ने इस तथ्य पर बल दिया कि लोकरीतियॉं एवं संस्थाएँ व्यक्तियों के व्यवहार को किस प्रकार सीमित करती है, आपके अनुसार, ''लोकाचार किसी भी बात को ठीक बना सकते है एवं किसी भी वस्तु की निन्दा को रोक सकते है।''[7]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि अनेक प्रमुख विचारको द्वारा सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा को विकसित करने में दिये गये योगदान अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है। इस प्रकार मैकाइवर और पेज ने सामाजिक सम्बन्धों के जाल को समाज के रूप में परिभाषित किया है। बिना समाज के किसी भी मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव समूह में रहकर एक दूसरे से अन्त: क्रिया करके सामाजीकरण करता है, तथा उस समाज में रहने योग्य बनता है। जैसा कि सभी जानते है कि बिना नियंत्रण के किसी भी व्यवस्था को व्यवस्थित रूप से सुचारू नही चलाया जा सकता है। अतः समाज को व्यवस्थित रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण एक मुख्य अभिकरण के रूप में प्रयोग होता है।

प्राचीन काल मे परम्परागत समाज छोटे एवं सरल होते थे तथा समाज को व्यवस्थित रखना भी सरल था। जिसमें प्रमुख रूप से धर्म, रीति रिवाज, परम्परायें एवं नैतिक विचार के माध्यम से ही समाज को व्यवस्थित रखा जाता था। परन्तु धीरे-धीरे समाज जब सरल से जटिल होता गया, तो अनेक प्रकार के नियंत्रण केसाधनों में भी वृद्धि होती गई। नियंत्रण के अभाव में एक व्यवस्थित एवं नियंत्रित समाज की कल्पना नही की जा सकती है। समाज को व्यवस्थित, संगठित एवं नियंत्रित रखने के लिए समाज में कुछ नियमों को लागू करना होगा जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति, उनकी अभिवृत्तियों, व्यवहार आदि पर नियंत्रण रख सके। इस प्रकार के नियमों को जो मानव व्यवहार पर नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखनें में अपना सहयोग देता है, सामाजिक नियंत्रण कहलाता है।

बोध प्रश्न – 01

1 – ई0 ए0 रॉस की पुस्तक का क्या नाम है जिसमें उन्होने सर्वप्रथम सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणा पर प्रकाश डाला।

2- 1894 में सामाजिक नियन्त्रण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किनके द्वारा किया गया।

3 – 1906 में विलियम ग्राहम समनर की कौन सी पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

4 – मैकाइवर और पेज ने समाज को किस रूप में परिभाषित किया है।

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा

विभिन्न समाजशास्त्रियों नें सामाजिक नियंत्रण की अलग-अलग परिभाषायें दी है। कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित है–

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार 'सामाजिक नियंत्रण का अर्थ उस ढंग से है जिससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील सन्तुलन के रूपसे कार्य करती है।' [8]

गिलिन एवं गिलिन'सामाजिक नियंत्रण सुझाव अनुनय, प्रतिरोध, उत्पीड़न तथा बल प्रयोग जैसे साधनों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज किसी समूह को मान्यता प्राप्त व्यवहार व प्रतिमानों के अनुरूप बनाता है अथवा जिसके द्वारा समूह सभी सदस्यों को अपने अनुरूप बना लेता है।"[9]

गुरविच और मूरे'सामाजिक नियंत्रण का सम्बन्ध उन सभी प्रक्रियाओं और प्रयत्नों से है जिनके द्वारा समूह अपने आंतरिक तनावों और संघर्षों पर नियंत्रण रखता है और इस प्रकार रचनात्मक कार्यों को और बढाता है।"[10]

आर्गबर्न और निमकाफ'दबाव का वह प्रतिमान जिसे समाज के द्वारा व्यवस्था बनाये रखने और नियमों को स्थापित रखने के लिए उपयोग में लाया जाता है, सामाजिक नियंत्रण कहलाता है।"[11]

आर्गबर्न और निमकाफ 'व्यवस्था और स्थापित नियमों को बनाये रखने के लिए एक समाज जिस दबाव के प्रतिमान का प्रयोग करता है वह उसकी सामाजिक नियंत्रण व्यवस्था कहलाती है।"[12]

राँस "इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण में रीति रिवाज, सामाजिक धर्म, व्यैक्तिक आदर्श, लोकमत, विधि, विश्वास, उत्सव, कला, ज्ञान, सामाजिक मूल्य आदि वेसभी तत्व आते है, जिनसे व्यक्ति पर समूह का अथवा समूह पर समाज का नियंत्रण रहता है। इससे समाज में व्यवस्था बनी रहती है और व्यक्तिगत व्यवहार की मर्यादायें निश्चित रहती है। इसके बिना समाज का जीवन नहीं चल सकता।"[13]

राँस 'सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य उन सभी शक्तियों से है जिनके द्वारा समुदाय व्यक्ति को अनुरूप बनाता है।"[14]

ब्राइटली, "सामाजिक नियंत्रण नियोजित अथवा अनियोजित प्रक्रियाओं और ऐजेन्सियों के लिए एक सामुहिक शब्द है जिनके द्वारा व्यक्तियों को यह सिखाया जाता है, उनसे आग्रह किया जाता है अथवा उनको बाध्य किया जाता है कि वे अपने समूह की रीतियों तथा सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही कार्य करे।"[15]

मानहीम के अनुसार, "सामाजिक नियंत्रण उन विधियों का योग है जिनके द्वारा समाज व्यवस्था को स्थिर रखने हेतु मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।"[16]

लैडिंस के अनुसार, "सामाजिक नियंत्रण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है एवं सामाजिक संगठन को निर्मित एवं संरक्षित किया जाता है।"[17]

रूक के अनुसार, "उन प्रक्रियाओं और अभिकरणों (नियोजित अथवा अनियोजित) जिनके द्वारा व्यक्तियों को समूह के रिति-रिवाजों एवं जीवन मूल्यों के समरूप व्यवहार करने हेतु प्रशिक्षित, प्रेरित अथवा बाधित किया जाता है वह सामाजिक नियंत्रण है।"[18]

किम्बाल यंग ने सामाजिक नियंत्रण को परिभाषित करते हुए कहा है कि, 'किसी समूह का दूसरे के ऊपर अथवा समूह का अपने सदस्यों के ऊपर अथवा व्यक्तियों का दूसरे के ऊपर आचरण के निर्धारित नियमों का कियान्वित करने हेतु दमन, बल, बंधन, सुझाव अथवा अनुनय का प्रयोग है। इन नियमों का निर्धारण स्वंय सदस्यों द्वारा यथा आचरण की व्यवसायिक संहिता में अथवा किसी विशालसमविष्ट समूह द्वारा किसी अन्य छोटे समूह के नियंत्रण हेतु किया जा सकता है।"[19]

बाँटोमोर के कथानुसार, "सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य मूल्यों तथा आदर्श नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों के बीच के तनाव व संघर्ष दूर अथवा कम किये जाते हो ।"[20]

हालाकि भिन्न-भिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण की अलग-अलग परिभाषायें दी है किन्तु यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगी कि लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण को समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने की एक प्रणाली बताया है। जिससे मानव समूह समाज द्वारा स्वीकृत अनेक नियमों एवं रीति रिवाजों के माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करता है तथा समाज को संघर्ष एवं विघटन से बचाने के लिए नियंत्रित व मर्यादित व्यवहार करने को बाध्य करता है। जिससे समाज संतुलित रहता है तथा व्यक्ति के ऊपर समूह अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण रख सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समूह द्वारा बनाये गये नियमों के आधीन रह कर ही उचित ढंग से कार्य करने को बाध्य होता है और प्रत्येक कार्य दूसरे व्यक्ति के हितों को ध्यान में रखकर करने का प्रयत्न करता है।

1.3 सामाजिक नियंत्रण का महत्व

सभ्यता के आरम्भिक स्तर पर जब समाज का स्वरूप अपेक्षाकृत छोटा होता था तब समाज को नियंत्रित करना भी सरल था। समूह का एक मुखिया होता था और समूह के प्रत्येक सदस्य मुखिया के आदेशों का पालन करता था। कार्यात्मक विभाजन के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के अपने अलग- अलग कार्य होते थे जिससे व्यक्ति का व्यवहार नियंत्रित रहता था। जिसके परिणाम स्वरूप समाज को नियंत्रित एवं व्यवस्थित रखना सरल था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया सामाजिक जीवन विभिन्न समूहों एवं संस्थाओं में परिवर्तित होता गया जिससे समाज सरल से जटिल होता जा रहा है। जैसा कि सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। यहा तक कि एक समूह के आचार विचार भी दूसरे समूह से भिन्न होते है। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा जहां एक ओर व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित रखा जाता है वहीं दूसरी ओर समाज को व्यवस्थित एवं संतुलित रखा जाता है। सामाजिक नियंत्रण के महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **समाज का संगठन एवं व्यवस्था**–सामाजिक नियंत्रण के द्वारा समाज को व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाया जाता है।
2. **स्थायित्वता-**समाज के प्रत्यक समूह तथा संगठन को नियंत्रित कर संगठन में स्थायित्वता लाई जाती है।
3. **सहयोग एवं एकता-** समाजिक नियंत्रण से व्यक्ति समूह एवं संगठन मे सहयोग एवं एकता की भावना का विकास किया जाता है। व्यवहारों पर नियंत्रण रखकर प्रत्येकव्यक्ति समाज में मिल जुल रहता है। व्यक्ति के जीवन में जीवन यापन हेतु सहयोग एवं एकता अति आवश्यक तत्व है।
4. **संस्कृति एवं परम्परा की रक्षा-** समाजिक नियंत्रण के अन्तर्गत व्यक्ति को स्वीकृत नियमों आर्दशों एवं मूल्यों के अनुसार ही व्यवहार करने को बाध्य किया जाता है। जिससे संस्कृति, प्रथायें एवं परम्परायें निरन्तर चलती रहती है।
5. **सामाजिक हित सर्वोपरि-** औपचारिक एवं अनौपचारिक नियंत्रण के भय से समूह में प्रत्येक व्यक्ति समाज व समूह द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार ही व्यवहार करता है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति कोई भी कार्य व्यक्तिगत हित न मानकर सामाजिक हित को सर्वोपरि मानता है।
6. **सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा-** सामाजिक नियंत्रण का महत्व इस दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है कि यह व्यक्ति को सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करता है। जिससे व्यक्ति समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने में अपना पूर्ण योगदान देते है तथा अपना संर्वागीण विकास भी करता है।

बोध प्रश्न – 02

रिक्त स्थानों की पूर्ति करे ।

1 – सामाजिक नियंत्रण ------------ प्रयोग जैसे साधनों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज किसी समूह को मान्यता प्राप्त व्यवहार व प्रतिमानो के अनुरूप बनाता है।

2 – सामाजिक नियन्त्रण अपने -------------- पर नियन्त्रण रखता है।

3 – सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य -------------- उन सभी -------- से है जिनके द्वारा समुदाय व्यक्ति को अनुरूप बनाता है।

4 – सामाजिक नियन्त्रण एक ------------ प्रक्रिया है ।

1.4 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है। कि सामाजिक नियंत्रण के अभाव में कोई भी समाज न तो संगठित एवं व्यवस्थित रह सकता है। और ना ही सुरक्षित रह सकता है। जैसा कि हम सभी जानते है कि बिना समाज के हम किसी भी मानव के अस्तित्व की कल्पना नही कर सकते है। व्यक्ति संर्वागीण विकास के लिए एक सभ्य समाज का होना आवश्यक होता है। अतः सभ्य समाज को संगठित एवं व्यवस्थित सामाजिक नियंत्रण के द्वारा ही रखा जा

सकता है। प्राचीन समय में जब समाज का आकार छोटा होता था तब मर्यादा, धार्मिक विश्वास एवं नैतिक नियमों की प्रधानता रहती थी और संस्कृति एवं धार्मिक विश्वास के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार नियंत्रित रहते थे। कालान्तर में जैसे जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया वैसे-वैसे समाज विस्तृत एवं जटिल होते चले गये साथही प्रत्यक्ष नियंत्रण भी आवश्यक हो गया। जिससे पुलिस, कानून, न्यायलयों एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखा जाता है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक नियंत्रण समाज, सामाजिक सम्बन्धों, व्यवस्था एवं संगठन के लिए आवश्यक है जो समाज को बनाये रखने में अपना पूर्ण सहयोग देता है।

1.5 परिभाषिक शब्दावली

1.सामाजिक नियन्त्रण- समाजिक व्यवस्था को सन्तुलित रखने के लिए समाज द्वारा स्वीकृत नियमों, कानून, परम्पराको एवं प्रथाओं को विकसित कर व्यक्तियों के व्यवहार पर नियंत्रण रखने वाली प्रक्रिया को सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता है।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01 के उत्तर

01 सोशियल कोन्ट्रौल

02 स्माल एवं विसेट

03 Folkways

04 सामाजिक सम्बन्धों के जाल के रूप में

बोध प्रश्न 02 के उत्तर

01. सुझाव, अनुनय, प्रतिरोध, उत्पीड़न तथा बल
02. समूह के आन्तरिक तनावों और संघर्षो
03. शक्तियों
04. सामाजिक

1.7 सन्दर्भ सूची ग्रन्थ

1. Kingsley Davis, Human Society, page – 63
2. Maclver and Page, Society P-137

3. Ross. E.A. Special Control P-5. उद्घत, विधाभूषण, सचदेव डी० आर० "समाजशास्त्र के सिद्धान्त, - 2010. किताब महल एजेन्सीज इलाहाबाद Page No- 564
4. उपरोक्त - Page No- 566
5. उपरोक्तPage No - 567
6. उपरोक्त पे0न0 -567
7. उपरोक्त -Page No-567.
8. मैकाइवर एवं पेज ‘’सोसाइटी’’ पे0न0 8-137
9. गिलिन एवं गिलिन कल्चरल सोसियोलोजी पे0न0 – 693
10. गुरविच और मूरे, ‘’बीसवी सदी का समाजशास्त्र पे0न0 287 -288
11. आर्गबर्न और निमकाफ, ऐ हेण्डबुक आफ सोसियोलोजी
12. आर्गबर्न और निमकाफ, ऐ हेण्डबुक आफ सोसियोलोजी पे0न0 182
13. राँस–‘’सोसियल कन्ट्रोल’’ (1901)
14. राँस–‘’सोसियल कन्ट्रोल’’ (1901)
15. ब्रायरली उद्घत अग्रवला जी0के0 ‘’समाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन – 2000 साहित्य भवन पब्लिशर एवं डिस्ट्रीब्यूटरर्स आग्ररा पे0न0 93
16. मानहीम, ‘’सिस्टेमेटिक सोसियोलोजी पे0न0 125
17. लैडिंस, ‘’सोसियल कन्ट्रोल पे0न0 04
18. रूक, ‘’सोसियल कन्ट्रोल पे0न0 03
19. यंग, ‘’एन इन्ट्रोडक्ट्री सोसियोलोजी’’पे0न0 520
20. T.B. Botromore: SociologyPage No -11

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 - डॉ बी० के० अग्रवाल, "सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000,साहित्य भवन पब्लिशर्स एवंडिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा,

2 - विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, " समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना,

3– डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्सआगरा

1.9 लघु उत्तरीय प्रश्न

1 – सामाजिक नियन्त्रण का क्या अर्थ है ?

2 – सामाजिक नियन्त्रण की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को लिखिये।

3 – सामाजिक नियन्त्रण के महत्व को स्पष्ट किजिये।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 – सामाजिक नियंत्रण का क्या अर्थ है ? सामाजिक नियन्त्रण के उद्देश्यों को स्पष्ट किजिए।

2 – समाजिक नियन्त्रण की अवधारणा क्या है? सामाजिक नियन्त्रण के महत्व अथवा उपयोगिता को स्पष्ट किजिए ?

3 – सामाजिक नियन्त्रण मानव समाज के लिए आवश्यक है ?यदि हॉ तो विस्तृत रूप से व्याख्या किजिए।

4 – समाजिक नियन्त्रण के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए उसके महत्व की विस्तृत रूप से विवेचना कीजिए ?

इकाई- 02 सामाजिक नियन्त्रण के साधन तथा प्रकार
Means and Types of social control

इकाई की रुपरेखा

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक नियन्त्रण के साधन
2.3 सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार
2.4 औपचारिक एवं अनौपचारिक नियन्त्रण में अन्तर
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 लघु उत्तरीय प्रश्न
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

शिक्षार्थियो प्रथम इकाई में सामाजिक नियन्त्रण की अवधारणात्मक व्याख्या के साथ-साथ सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व पर विस्तृत चर्चा की गयी थी। इसके पश्चात आप अभी तक सामाजिक नियन्त्रण के अर्थ, परिभाषा एवं सामाजिक जीवन मे इसके महत्व से परिचित हो गये होगे, प्रस्तुत इकाई में सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधन तथा इसके प्रकारो की विस्तृत विवेचना की गयी है,इस प्रकारअब तक आप समझ चुके होगे कि सामाजिक नियन्त्रण के अभाव में एक व्यवस्थित एवं सन्तुलित समाज की कल्पना नही की जा सकती । अतः समाज में निवासरत मानव के व्यवहार को नियन्त्रित रखने के लिए कुछ साधनो का प्रयोग किया जाता है, प्रत्येक समाज का अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के अनुरूप एक विशिष्ट स्वरूप होता है, अतः अब उन्ही के अनुसार उनके नियन्त्रण के साधन एवं प्रकार होते है।

2.1 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप के द्वारा समझना सम्भव होगा।

- सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधन कौन-कौन सेहै।
- सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख प्रकारो की विस्तृत विवेचना।

2.2 सामाजिक नियन्त्रण के साधन

जैसा कि हम सब जानते है कि व्यक्ति के व्यवहारों एवं व्यक्ति पर जब समाज का नियन्त्रण होता है तो उसे सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता है, एक प्रकार से सामाजिक नियन्त्रण मनुष्य का समाजीकरण तो करता ही है साथ ही ऐसा वातावरण भी उत्पन्न करने की कोशिश करता है जिससे मनुष्य समाज के विरुद्ध कोई भी कृत्य करने में भय का अनुभव करे, समाज को व्यवस्थित रखने के लिए सामाजिक नियन्त्रण के अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, औपचारिक एवं अनौपचारिक ऐसे बहुत सारे साधन होते है जो व्यक्ति तथा मानव समूह के व्यवहार को नियन्त्रित रखने में सहायक होते है।

ई0ए0 रास [1] ने अनेक साधनों का उल्लेख किया है जो मानव इतिहास के दौरान सामाजिक समूहों द्वारा व्यक्तियों को नियंमाधीन रखने हेतु प्रयुक्त किए गये है। उनमें से महत्वपूर्ण है-

1. जनमत
2. कानून
3. प्रथा
4. धर्म
5. नैतिकता
6. सामाजिक सुझाव
7. व्यक्तित्व
8. लोकरीतियाँ एवं लोकाचार

एफ० ई० लुम्ले[2] ने सामाजिक नियन्त्रण के साधनों को मुख्य दो वर्गों में विभक्त किया है- बल पर अधारित तथा प्रतीको पर आधारित उसके अनुसार, यद्यपि शारिरिक बल ही व्यक्तियों को व्यवस्थित नही रख सकता, मानव समाजों को प्रतीकात्मक विधियों पर विश्वास करना पड़ता है जो बल की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते है। लुम्ले ने प्रतीकात्मक विधियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है, प्रथम श्रेणी में उसने पुरस्कारों, प्रशंसा अनुनय, शिक्षा एवं चाटुकारिता को सम्मिलित किया, जिनका उददे्श्य व्यक्ति के व्यवहार को कुछेक वांछित लक्ष्यों की ओर निर्देशित करना होता है। दूसरी श्रेणी में उसने गप-शप, उपहास, आलेचना, मखौला, धमकी, गाली, प्रचार, आदेश एवं दण्ड को सम्मिलित किया, जिनका उददे्श्य दमन एवं बन्धन होता है।

लूथर एल0 बर्नार्ड[3] ने सामाजिक नियंत्रण के अचेतन एवं चेतन साधनों के मध्य विभेद किया है। नियंत्रण के अचेतन साधनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है- प्रथा, रीति-रिवाज, एवं परम्परा, नियन्त्रण के चेतन साधन ऐसे साधन है जिनको सभी प्रकार के नेताओं द्वारा प्रयोग एवं विकसित किया गया है। उसके अनुसार, नियंत्रण के चेतन, अचेतन साधनों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होते है। बनार्ड ने दण्डात्मक एवं सृजनात्मक विधियों में भी विभेद किया, दण्डात्मक साधनों से तात्पर्य दंड, प्रतिकार, धमकी, दोष- विवेचना एवं दमन से है। सृजनात्मक विधियों में क्रांति, प्रथा, कानून, शिक्षा, समाज-सुधार अहिंसात्मक दबाव एवं परलोकिक शक्तियों में विश्वास सम्मिलित है।

इस प्रकार अनेक समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न साधनों को स्पष्ट किया है, समान्यतया ऐसा माना जाता है कि सामाजिक अभिकरण **(Social agency)** तथा साधन **(Means)**दोनों समान है। परन्तु दोनों शब्दों का अर्थ समान नही होता, डा0 जी0के0 अग्रवाल जी ने अपनी पुस्तक ''सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन में इन दोनो शब्दों के विभेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'अभिकरण' **(agency)** का तात्पर्य किसी भी सत्ता, समूह अथवा संगठन से होता है जो नीतियों का निर्माण करता है अथवा नियमों को समूह और व्यक्ति पर लागू करता है। इस प्रकार कुछ विशेष व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदाय के जीवन को नियन्त्रित करने में अभिकरण एक प्रत्यक्ष माध्यम है। इसके विपरीत साधन **(Means)** का तात्पर्य किसी भी ऐसी विधि अथवा तरीके से है, जिसके द्वारा कोई अभिकरण अथवा एजेन्सी अपनी नीतियों और आदेशों को लागू करती है। उदाहरण के लिए, परिवार अपने सदस्यों के व्यवहारों पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण स्थापित करता है। इसलिए परिवार को नियन्त्रण का एक अभिकरण कहा जायेगा। लेकिन परिवार नियन्त्रण की स्थापना अनेक प्रकार से कर सकता है। यह अपने सदस्यों को प्रथा, परम्परा तथा लोकाचार की शिक्षा देकर भी नियन्त्रण स्थापित कर सकता है। इस प्रकार प्रथा, परम्परा, लोकाचार, हास्य, व्यंग और तिरस्कार को सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न साधन कहा जायेगा।[4]

संक्षेप में सामाजिक नियन्त्रण के साधनों को निम्नांकित आधार पर सरलता से समझा जा सकता है।

1. **जनरीतियॉ**- जनरीतियॉ सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रमुख साधन होता है। किसी भी मानव समाज में जनरीतियॉ स्वत: उत्पन्न होती है। जो समाज द्वारा स्वीकृत होते है। जनरितियॉ वास्तव में सामान्य दैनिक जीवन से सम्बन्धित व्यवहार-प्रतिमान होते है जो समय के साथ-साथ समूह अथवा समाज द्वारा मान्य होने लगते है। समूह के प्रत्येक सदस्य के लिए इन जनरीतियों की अवहेलना अथवा उल्लघं सरल नही होता। यदि कोई व्यक्ति इन जनरीतियों का उल्लघन करता है तो समाज द्वारा उसे दण्डित भी किया जाता है तथा उसे सामाजिक बहिष्कार का सामना भी करना होता है। गिलिन के अनुसार, "जनरीतियॉ नित्यप्रति के जीवन में आचरण का वह प्रतिमान है जो समूह में अज्ञात रूप से बिना किसी पूर्व योजना अथवा निश्चित विचारों से उत्पन्न होते है।"[5] इसी प्रकार मैकाइवर के अनुसार, "जनरीतियॉ

समाज में व्यवहार करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधियॉ है।"[6] उदाहरण – अभिवादन, कूड़ा न फेकना, अपने से बड़ो का सम्मान, उचित वेश-भूषा, शिष्ट एवं नम्र व्यवहार इत्यादि।

2. **लोकाचार** – ऐसी जनरीतियॉ जो समूह कल्याण के लिए महत्वपूर्ण होती है, लोकाचार कहलाती है। लोकाचार सामाजिक नियन्त्रण के ऐसे साधन है जो यह निर्धारित करते है कि मानव का कौन सा व्यवहार समाजिक कल्याण के लिए उपयोगी है। मानव द्वारा लोकाचारो के पालन को आवश्यक समझा जाता है तथा इनके विपरीत व्यवहार को समाज मान्यता प्रदान नही करता, इस सन्दर्भ में ग्रीव का मत है कि "कार्य करने के वे सामान्य विधियॉ लोकाचार कहलाती है जो जनरीतियों की अपेक्षा अधिक ठीक और उचित समझी जाती है तथा जिनका उल्लंघन करने पर अधिक कठोर और निश्चित दण्ड दिया जाता है।"[7] सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचार के प्रभाव को समझाते हुए डेविस का कहना है कि "सामान्य व्यक्तियों के मन में लोकाचारों से बड़ा कोई न्यायालय नही है और सामान्य प्रकृति के समाजों मे लोकाचारों के अतिरिक्त दूसरे नियमों की आवश्यकता भी महसूस नही की जाती। इसका कारण यह है कि लोकाचारों की "उचित'' सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नही समझी जाती बल्कि वे अपने अधिकार शक्ति से जी जीवित रहते है।"[8] उदाहरण – अन्तविर्वाह, कुलीन्नता, बर्हिविर्वाह, पवित्रता सम्बन्धी नियम, अनैतिकता से बचाव शालीन व्यवहार, एक पत्नीत्व इत्यादि।

3. **प्रथाये** – प्रथाये किसी भी मानव समूह की वह जनरीतियॉ एवं लोकाचार होते हे जो धीरे-धीरे विकसित होती रहती है तथा पीढी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। प्रथाये अत्यन्त शक्तिशाली होती है जो दीर्घकालीन होती है, जिनका पालन करना प्रत्येक मानव एवं मानव समूह के लिए अनिवार्य होता है। सापिक ने प्रथा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "इस शब्द का प्रयोग आचरण के उन प्रतिमानो की सम्पूर्णता के लिए किया जाता है, जो परम्पराओं द्वारा उत्पन्न होते है और एक समूह की स्थायी विशेषता बन जाते है।"[9] उदाहरण – उपजाति में विवाह, रक्त सम्बन्धियों से विवाह निषेध, इत्यादि।

4. **नैतिकता (Morality)** – समाज में प्रचलित ऐसे नियम जो व्यक्ति को उचित और अनुचित व्यवहार का ज्ञान कराते है , नैतिकता कहलाते है। नैतिकता समाजिक नियंत्रण का ऐसा साधन है जो व्यक्ति को मानवीय मूल्यों के आधार पर कार्य करने को प्रेरित करता है। डॉ0 अग्रवाल के अनुसार "नैतिकता का सम्बन्ध उन सभी नियमों से है जो व्यक्ति को उचित और अनुचित का बोध कराते है। नैतिकता कर्त्वय बोध पर आधारित है। इसका सम्बन्ध एक ऐसी स्थिति से है जो व्यक्ति को चरित्रिक नियमों के अनुसार कार्य करने और मानवीय मूल्यों को बनाये रखने की प्रेरणा देती है।"[10] उदाहरण – सत्य, मानवीय मूल्य, अहिंसा, ईमानदारी, समानता का दृष्टिकोण एवं हम की भावना, समूह कल्याण की भावना, इत्यादि।

5. **संवैधानिक अधिनियम एवं कानून व्यवस्था**– सामाजिक नियंत्रण में संवैधानिक अधिनियमों एवं कानून व्यवस्था की एक प्रमुख भूमिका होती है। यह एक ऐसा औपचारिक साधन है, जिसका पालन

मानव एवं मानव समूह द्वारा अनिवार्य रूप से किया जाना आवश्यक होता है। समान्यतया मानव दण्ड के भय से भी उपयुक्त साधन का पालन करता है विधाभूषण एवं सचदेव के अनुसार "कानून सामाजिक व्यवस्था के लिए एकरूप नियमों एवं दण्डों की व्यवस्था करता है। प्रत्येक राज्य में कानून का आकार बढ़ रहा है। पहले जो नियम लोकाचारों एवं प्रथाओं में सम्मिलित थे उन्हे अब कानून की संहिता में औपचारिकृत कर दिया गया है। हिन्दू विवाह अधिनियम – 1955, ने हिन्दूओं में विवाह-सम्बन्धी नियमों को संहिताबद्ध किया है। भोजन की वस्तुएँ बेचने अग्नि से सुरक्षा, कूड़ा-करकट फेकना, टैफिक आदि को नियंत्रित करने हेतु अनेक कानूनों का निर्माण किया गया। अस्पृश्यता को बन्द करने के लिए अस्पृश्यता – विरोधी कानून बनाया गया तथा ऐसा व्यक्ति जो अस्पृश्यता का किसी रूप मे पालन करता है। दण्ड का भागी है। सिनमाघरों में धूम्रपान कानून द्वारा वर्जित है। इस प्रकार कानून आधुनिक समाजों में लोगों के व्यवहार पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है।"[11]

6. **धर्म**– धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है जो मानव के व्यवहार को नियन्त्रित रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है, मनुष्य जीवन पर्यन्त धार्मिक नियमों का पालन पूर्ण निष्ठा के साथ करता है। प्रत्येक समाज में मनुष्य के धार्मिक क्रियाओं के स्वरूपों में अन्तर हो सकता है परन्तु प्रत्येक समाज धार्मिक नियमों से बधे रहते है। उदा0 के लिए संस्कार, धार्मिक कर्मकाण्ड, टाटमवाद, आत्मवाद, वैवाहिकसंस्कार, पूजावाद, सत्कर्म, इत्यादि।
7. **प्रचार**– सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में प्रचार का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में यदि बात करे तो यह आज व्यक्ति के व्यवहार और उसके विचारो को प्रभावित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। आज के डिजिटल युग में ऐसे कई साधन है तो प्रत्येक सूचना को जनता के मध्य प्रसारित एवं प्रचारित करते है। प्रिट मिडिया एवं इल्कट्रोनिक मिडिया प्रचार एवं प्रसार के एक महत्वपूर्ण साधन है, जो व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव तो डालते है उसे नियन्त्रित भी करते है। इस सन्दर्भ में डॉ0 अग्रवाल का मानना है कि, '' प्रचार के लिए समाचार पत्र, चलचित्र, नायक-नायिकाएँ, रेडियों और प्रेस महत्वपूर्ण माध्यम है जो व्यक्तियों के विचारो को प्रभावित करते है और समान घटनाओं के प्रति समान दृष्टिकोण उत्पन्न करके सामाजिक एक रूपता की स्थापना करते है। सामान्यतया 'प्रचार' अथवा 'प्रोपेगेण्डा' शब्द से अच्छा अर्थ नही लगाया जाता, लेकिन समुचित प्रयोग से यह नियन्त्रण का प्रमुख साधन बन जाता है। समाज-सुधारक, सन्त और महापुरूष, आदि सभी अपने-अपने विचारो का प्रचार करके एक अनुकूल जनमत का निर्माण करते है और इस प्रकार सामूहिक व्यवहार को नियन्त्रित करते है।''[12]
8. **शिक्षा**– शिक्षा एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने के साथ-साथ उसके सर्वागीण विकास में भी सहायक होता है। शिक्षा के द्वारा ही मानव समाज में समायोजन की

प्रक्रिया सीखता है तथा अन्य व्यक्तियों एवं सामाजिक समूहों के मध्य सहयोग, सहनशीलता, सामाजिक मूल्यों का आत्मसात आदि गुणो को अपने व्यवहार में शामिल करता है। इस प्रकार शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रभावी एवं महत्वपूर्ण साधन होता है।

विधाभूषण एवं डी0 आर0 सचदेव ने अपनी पुस्तक "समाजशास्त्र के सिद्धान्त" में सामाजिक नियन्त्रण के साधनों को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया है जो निम्नांकित है।[13]

1 - अनौपचारिक साधन

1. विश्वास
   - आलौकिक शक्ति की अवस्थिति में विश्वास
   - पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास
   - दण्ड की देवी में विश्वास
   - स्वर्ग या नरक में विश्वास
   - आत्मा की अमरता में विश्वास
2. सामाजिक सुझाव
3. विचारधारायें
4. जनरीतियॉ
5. लोकाचार
6. प्रथायें
7. धर्म
8. कला एवं साहित्य
9. हास्य एवं उपहास

2 – औपचारिक साधन

1. कानून
2. शिक्षा
3. बल-प्रयोग

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक नियन्त्रण के अनेक औपचारिक एवं अनौपचारिक साधन होते है जो मानव एवं मानव समूह के व्यवहार को नियन्त्रित करके समाज की सन्तुलित एवं व्यवस्थित करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते है।

2.3 सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा से स्पष्ट है कि, व्यक्ति की पाशविक प्रवृतियों पर अंकुश लगाकर सामाजीकरण एवं मानवीकरण करके समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखना ही सामाजिक नियंत्रण है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों, आदतों एवं स्वभाव के कारण प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। अतः इसी विभिन्नता के चलते सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप में भी विभिन्नता आती जाती है। कुछ व्यक्तियों को प्रत्यक्ष तथा कुछ को परोक्ष रूप से नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। इस आधार पर प्रत्येक समाज तथा व्यक्ति की नियंत्रण की प्रकृति भी भिन्न होती है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप को अनेकों प्रकार से वर्गीकृत किया है।

कार्लमैनहीम के सामाजिक नियंत्रण के दो प्रकार बताये है।[14]

i. प्रत्यक्ष नियन्त्रण
ii. अप्रत्यक्ष नियन्त्रण

1- **प्रत्यक्ष नियंत्रण** – प्रत्यक्ष नियंत्रण का तात्पर्य ऐसे नियन्त्रण से है जो व्यक्ति पर उसके बहुत समीप के व्यक्तियों द्वारा लगाया गया हो, जैसे – मित्रों, माता-पिता अथवा पड़ोसियों द्वारा लगाया गया नियंत्रण, यह नियन्त्रण प्रशंसा, आलोचना, पुरस्कार अथवा सामाजिक बहिष्कार आदि के द्वारा लगाया जाता है नियन्त्रण के इस स्वरूप का प्रभाव स्थायी होता है, क्योकि इसे व्यक्ति आन्तरिक रूप से स्वीकार करता है।

2 – **अप्रत्यक्ष नियन्त्रण** – अप्रत्यक्ष नियन्त्रण का तात्पर्य विभिन्न समूहों और संस्थाओं द्वारा लगाये गय नियन्त्रण से है। नियन्त्रण का यह स्वरूप अत्यधिक सूक्ष्म और छोटे से छोटे व्यवहार को नियन्त्रित करने वाला होता है। इसके द्वारा व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जाता है। आरम्भ में हम इससे चेतन रूप से नियन्त्रित होते है। लेकिन कुछ समय बाद ऐसे नियन्त्रण में रहकर कार्य करना हमारी आदत बन जाती है। इसमें तर्क का महत्व अधिक है और सामूहिक कल्याण इसका अन्तिम लक्ष्य माना जाता है।

किम्बाल यंग – किम्बाल यंग ने रीतियों के दृष्टिकोण से समाजिक नियन्त्रण के प्रकारों का विभाजन किया है। इस प्रकार किम्बाल यंग ने सामाजिक नियन्त्रण को निम्नलिखित दो भागों में बॅाटा है। [15]

1. सकारात्मक – इसमें सामाजिक नियन्त्रण की पुरस्कार की नीति का समावेश है। पुरस्कार का व्यक्ति के कर्मो पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, समाज के अधिकतर व्यक्ति समाज से पुरस्कार पाना चाहते है। अत- वे समाज द्वारा स्वीकृत परम्पराओं, प्रथाओं, मूल्यों तथा आदर्शो का सदैव पालन करने की कोशिश करते है। इसके बदले में उन्हे सामाजिक यश, सम्मान आदि के रूप में पुरस्कार मिलता है।
2. नकारात्मक – इसमें सामाजिक नियन्त्रण की वे रीतियॉ आती है जिनमें दण्ड का भय दिखाकर व्यक्ति को किसी काम से रोका जाता है, समाज जहॉ पुरस्कार द्वारा व्यक्तियों को कुछ विशेष प्रकार के

व्यवहारों के लिए प्रोत्साहित करता है। वहॉ दण्ड द्वारा उनको अनेक काम करने से रोकता भी है। यह दण्ड हल्का, कठोर, मौखिक या शारीरिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। मौखिक दण्ड के उदाहरण बदनामी, व्यंग, उपहास, आदि है। शारीरिक दण्ड का उदाहरण जाति से बहिष्कार है। इन दण्डो के भय से व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत प्रथाओं, परम्पराओं, मूल्यो और आदर्शो आदि के विरूद्ध आचरण करने से डरते है।

चार्ल्स कूले ने सामाजिक नियन्त्रण को दो भागो में विभाजित किया है। [16]

1. चेतन नियन्त्रण
2. अचेतन नियन्त्रण

इस प्रकार अमेरिकन समाजशास्त्री चार्ल्स कूले ने स्पष्ट किया है कि जो दशाए तार्किक आधार पर व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखती है। उनके द्वारा लगाये जाने वाले नियन्त्रण को चेतन नियन्त्रण कहॉ जाता है, इसके विपरीत अचेतन नियन्त्रण वह है जिससे सम्बन्धित नियमों को तर्क के आधार पर नही समझा जा सकता, उदाहरण के लिए, हमारे बहुत से व्यवहार कुछ धार्मिक विश्वासों, संस्कारों, प्रथाओं तथा परम्परा से प्रभावित होते है वर्तमान जटिल समाजों में प्रथाओं की अपेक्षा कानूनों का महत्व बढ़ जाने के कारण चेतन नियन्त्रण के महत्व में वृद्धि हुई है।

लैपियर ने विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं को ध्यान में रखत हुए सामाजिक नियन्त्रण को दो भागों में विभाजित किया है।[17]

1. सत्तावादी
2. लोकतान्त्रिक

लैपियर के अनुसार सत्तावादी नियन्त्रण पैतृक शासन तथा साम्यवादी व्यवस्था की विशेषता है। इसमें किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्पीड़न अथवा शक्ति का प्रयोग किया जाता है। जो लोग सत्ता – सम्पन्न लोगो के विचारों और आदेशों से भिन्न व्यवहार करते है, उन्हे शारिरिक दण्ड दिये जाते है। तरह-तरह के गुप्त संगठनों और कूटनीतिक एजेन्सियों द्वारा किये जाने वाले प्रचार से ऐसे नियन्त्रण प्रभावपूर्ण बनाये जाते है।

लोकतान्त्रिक नियन्त्रण उन व्यक्तियों के द्वारा स्थापित किया जाता है, जो जनता के प्रतिनिधि होते है, ऐसे नियन्त्रण में बल-प्रयोग की जगह पारस्परिक वार्तालाप, आग्रह, पुरस्कार तथा जनमत को अधिक महत्व दिया जाता है।

गुरविच और मूरे ने सामाजिक नियन्त्रण को तीन प्रकारों में विभक्त किया है। [18]

1. **संगठित नियन्त्रण** – ऐसा नियन्त्रण जो अनेक छोटी-बड़ी एजेन्सियों और लिखित नियमों के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करता है। इनका विकास नियमित रूप से होता रहता है और इसकी

प्रकृति स्वेच्छाचारी कही जा सकती है। राज्य के कानूनों और विभिन्न संस्थाओं के द्वारा लगाये गये नियन्त्रण इस स्वरूप के उदाहरण है।

2. **असंगठित नियन्त्रण** – सांस्कृति नियमों और प्रतीकों के रूप में यह नियन्त्रण देखा जा सकता है। दैनिक जीवन में इसका प्रभाव सबसे अधिक होता है। विभिन्न संस्कारों, परम्पराओं, लोकचारों और जनरीतियों द्वारा स्थापित नियन्त्रण इसी स्वरूप का उदाहरण है।
3. **सहज समाजिक नियन्त्रण** – इस नियन्त्रण का आधार व्यक्तियों के मूल्य, आदर्श, विचार, अनुभव, और अनेक आवश्यकताएँ है, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से कुछ नियमों के अन्दर रहकर कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार का नियन्त्रण अपनी प्रकृति से सहज लेकिन अत्यन्त प्रभावपूर्ण होता है। धार्मिक नियन्त्रण इसी प्रकार के नियन्त्रण की स्थापना करते है। इस प्रकार

स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है अनेक समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियन्त्रण के अलग-अलग प्रकारों के आधार पर स्पष्ट किया है।

सामान्य तौर पर सामाजिक नियन्त्रण के दो प्रकार माने जा सकते है।

1 औपचारिक नियन्त्रण

2 अनौपचारिक नियन्त्रण

1. **औपचारिक नियन्त्रण**– औपचारिक नियन्त्रण के अन्तगर्त नियन्त्रण के ऐसे नियम सम्मिलित होते है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए ही जिनकी स्थापना की जाती है। जैसे – संवैधानिक अधिनियम, पुलिस, कानून व्यवस्था, पुलिस, जेल, दण्ड के प्राविधान, सैन्य बल या सेना। ओल्सेन ने औपचारिक नियन्त्रण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''जब राज्य अथवा कोई प्रशासनिक संस्था लोगों को कुछ स्पष्ट और लिखित नियमों के अनुसार व्यवहार करने को बाध्य करती है तथा शक्ति के द्वारा इस व्यवस्था को बनाये रखती है। तब ऐसे नियन्त्रण को हम औपचारिक नियन्त्रण कहते है। [19]
2. **अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण**– जब सामाजिक नियन्त्रण के ऐसे प्रकार जो समाज की आवश्यकताओं के अनुसार स्वत: विकसित होने लगती है तब ऐसे नियन्त्रण को अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण कहा जाता है। इस सन्दर्भ में ओल्सेन का कथन है कि ''अनौपचारिक नियन्त्रण का तात्पर्य वास्तव में आत्म-नियन्त्रण से है। यह राज्य की ओर से बलपूर्वक लागू नही किया जाता बल्कि इसकी प्रकृति साधारणतया सामाजिक होती है। [20]इस प्रकार अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण में व्यक्ति के व्यवहारों के नियन्त्रित करने के लिए किसी भी प्रकार के लिखित नियमों की आवश्यकता नही होती, बल्कि समाज द्वारा स्वीकृत प्रथाये, जनरीतियॉ, परम्पराये, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, रूढ़िया एवं सामाजिक मूल्य व आदर्श नियम, व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने का कार्य करती है।

बोध प्रश्न – 01

1. ई0ए0 रास ने सामाजिक नियन्त्रण के कुल कितन साधनों का उल्लेख किया है।
2. एफ0 ई0 लुम्ले ने सामाजिक नियन्त्रण के दो मुख्य साधन कौन से बतलाये है।
3. लूथर एल0 बनार्ड ने सामाजिक नियन्त्रण को कितने साधनों में विभक्त किया है।
4. दण्डात्मक साधनों का क्या तात्पर्य है।

2.4 औपचारिक तथा अनौपचारिक नियन्त्रण में अन्तर –

1 औपचारिक नियन्त्रण सदैव लिखित रूप होते है जबकि अनौपचारिक नियन्त्रण लिखित रूप में न होकर हमारी परम्पराओं, प्रथाओं एवं जनरीतियोंके माध्यम से स्पष्ट होती है।

2 औपचारिक नियन्त्रण में दण्ड का प्रविधान होता है, कोइ भी संवैधानिक नियम की अवहेलना करने पर व्यक्ति को नियमों के अन्तगर्त दण्ड दिया जाता है जबकि अनौपचारिक नियन्त्रण में व्यक्ति परिस्थितिनुसार ही दण्ड दिया जाता है जो समाज द्वारा ही दिया जाता है ।

3 औपचारिक नियन्त्रण में परिवर्तन का गुण निहित होता है, समय के साथ-साथ तथा आवश्यकतानुसार राज्य तथा देश अपने संवैधानिक नियमों में बदलाव एवं संशोधन करते रहते है जबकि अनौपचारिक नियन्त्रण में परिवर्तनशीलता के गुण का अभाव होता है क्योकि इस प्रकार नियन्त्रण पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते है तथा परम्परागत व्यवहार एवं प्रथाओं पर शीघ्र बदलाव सम्भव नही होता।

4 औपचारिक नियन्त्रण में कानून, न्यायालय तथा पुलिस का एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित रखता है, जबकि अनौपचारिक नियन्त्रण की प्रक्रिया में रीति-रिवाज, परम्पराये, प्रथाये एवं धार्मिक नियमों की विशेष भूमिका होती है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित बनाये रखने में अपनी अह्म भूमिका का निवर्हन करते है।

5 औपचारिक नियन्त्रण के अन्तगर्त नियमों का निर्माण योजना के अनुरूप होता है, जिसमें आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन सम्भव होता है जबकि अनौपचारिक नियन्त्रण में समाज द्वारा स्वीकृत नियमों को विकास धीरे-धीरे और स्वत: होता है। जिनमें परिवर्तन किया जाना सम्भव नही होता।

2.5 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर स्पष्ट होता है कि सामाजिक नियन्त्रण के अभाव में एक सन्तुलित एवं व्यवस्थित समाज के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती, यही कारण है कि समाज में निवासरत मानव तथा मानव समूहों को संगठित एवं व्यवस्थित रखने के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक साधनों एवं प्रकारों का उपयोग किया जाता है। जिससे समाज मे नियन्त्रण की स्थापना की जा सके। सरल एवं छोटे परम्परागत

समाज को समाज द्वारा स्वीकृत परम्पराओं, प्रथाओं, रिति-रिवाजों द्वारा नियन्त्रित करना सरल है परन्तु जैसे-जैसे सरल और परम्परागत समाज जटिल समाज में परिवर्तित होने लगते है तब राज्य द्वारा बनाये गये संवैधानिक अधिनियमों, कानूनों एवं दण्डव्यवस्था जैसे साधनों से समाज को सन्तुलित एवं नियन्त्रित रखा जा सकता है। सम्पूर्ण इकाई के अध्ययन के पश्चात अब आप सामाजिक नियन्त्रण के प्रकारों से भली-भाति परिचित हो गये होगे।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. सामाजिक नियन्त्रण के साधन– सामाजिक नियन्त्रण की ऐसी विधि या नियम जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित रखने का कार्य करती है, जैसे – जनरीतियॅा, प्रथाये, लोकाचार, नैतिकता, कानून, दण्डके प्रावधान, धर्म, प्रचार एवं शिक्षा आदि समाजिक नियन्त्रण के साधन कहलाते है।

2. सामाजिक नियन्त्रण के प्रकार– सामाजिक संरचना के आधार पर सामाजिक नियन्त्रण के दो प्रकार होते है- औपचारिक तथा अनौपचारिक, औपचारिक नियन्त्रण राज्य द्वारा लिखित नियम जो बाध्यतामूलक होते है, जैसे – कानून, पूलिस, एवं दण्ड व्यवस्था तथा अनौपचारिक नियन्त्रण लिखित रूप में नही होते बल्कि प्रथाओं, परम्पराओं, जनरीतियों, लोकाचारों एवं सामाजिक मूल्यों के रूप में समाज में विधमान होते है तथा व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने मे अपनी अह्म भूमिका का निर्वहन करते है।

2.7 बोध प्रश्न के उत्तर – 01

1. 08
2. बल पर आधारित तथा प्रतीको पर अधारित
3. 2 साधनों, अचेतन एवं चेतन में
4. दण्डात्मक साधनों से तात्पर्य दण्ड, प्रतिकार, धमकी, दोष-विवेचन एवं दमन से है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010. किताब महल एजेन्सीज इलाहाबाद Page No-570

2. उपरोक्त पे0न0 571

3. उपरोक्त पे0न0 371

4. अग्रवाल जी0के0, ''सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन – 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स (प्रा0) लि0 आगरा पे0न0 – 111,112

5. Gillin and Gillin, Cultural Sociology P – 139
6. Maclver and page, Society P – 19
7. A.W Green, Sociology P – 76
8. Davis, Human society P – 60
9. अग्रवाल, जी**0** के**0**, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स पे0न0- 99
10. अग्रवाल जी**0** के**0**, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स पे0न0– 116
11. विधाभूषण, सचदेव डी0आर0, ''समाजशास्त्र कि सिद्धान्त '' – 2010 किताब महल ऐजेन्सीज पटना पे0न0 – 577
12. अग्रवाल जी0 के**0**, ''सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन'' – 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा, पे0 न0 – 117
13. विधाभूषण सचदेव, सचदेव डी0आर0, ''समाजशास्त्र कि सिद्धान्त '' – 2010 किताब महल ऐजेन्सीज पटना पे0 न0 – 570 से 578
14. Karl Manheim, "Man and Society" – 1951, Part V (IV)
15. शर्मा रामनाथ, शर्मा राजेन्द्र कुमार, ''सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियन्त्रण'' 1996, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, पे0 न0 – 128
16. अग्रवाल जी0के0, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पे0 न0 – 90
17. Lapiere, "theory of social control" Pg No. – 388,389
18. गुरविच और मूरे उद्धृत - अग्रवाल जी0के0 ''सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन – 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पे0 न0 – 96
19. Olsen Processes of social organization
20. ओल्सेन उद्धृत अग्रवाल जी0के0, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा पे0 न0 – 92

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. E.A. Ross, Social Control
2. Lapiere, A theory of Social Control
3. डॉ बी० के० अग्रवाल, "सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000,साहित्य भवन पब्लिशर्स एवंडिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा,
4. विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, " समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना,

5. डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्सआगरा,

2.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1 सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न प्रकारों की संक्षेप में विवेचना किजिए।

2 औपचारिक तथा अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण में क्या अन्तर है।

3 औपचारिक नियन्त्रण से आप क्या समझते है।

4 अनौपचारिक नियन्त्रण से आप क्या समझते है।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1 सामाजिक नियन्त्रण से आप क्या समझते है, सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए?

2 सामाजिक नियन्त्रण के विभिन्न साधन कौन से है? विस्तार पूर्वक विवेचना किजिए

3 सामाजिक नियन्त्रण के अनौपचारिक साधनों की विवेचना किजिये?

4 सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधनों का वर्ग्रीकरण कीजिए?

इकाई- 03 सामाजिक नियंत्रण में परिवार की भूमिका

Role of family in social control

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 परिवार की अवधारणा एवं परिभाषा

3.3 परिवार की विशेषताएं

3.4 परिवार के प्रकार

3.4.1 संबंधों पर आधारित परिवार

3.4.2 वंशावली या सत्ता पर आधारित परिवार

3.5 परिवार के प्रमुख कार्य

3.6 सामाजिक नियंत्रण में परिवार का भूमिका

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 लघु उत्तरीय प्रश्न

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही परिवार सामाजिक संगठन की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई के रूप में महत्वपूर्ण रहा है। जैसे कि सर्वविदित है समाज के आभाव में मानव के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती और परिवार समाज का एक अभिन्न अंग होता है। अतः यहा पर यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगा कि परिवार व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा करने तथा उसके सामाजीकरण एवं मानवीकरण में अपनी प्रमुख भूमिका का निवर्हन करता है। परिवार सबसे अधिक व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निवर्हन करता है। सामाजिक समूहों में परिवार ही एक ऐसा प्राथमिक समूह है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में तो सहायक है साथ ही व्यक्ति को अपनी संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास एवं प्रथाओं को सीखने में भी सहायता

प्रदान करता है। परिवार के कारण ही मनुष्य स्वयं को एक सभ्य समाज के अनुकूल बनाता है तथा अपने नियन्त्रित व्यवहार से समाज को व्यवस्थित, संगठित एवं सन्तुलित रखने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। शिक्षार्थियों प्रस्तुत इकाई में आप जहॉ एक ओर परिवार के अर्थ, परिभाषा, विशेषताये एवं कार्य प्रणाली को समझेगे वही दूसरी ओर सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की प्रमुख भूमिका को भी समझ पायेगे। परिवार सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण अभिकरण भी माना जा सकता है। इस सन्दर्भ में लुण्डबर्ग का कथन है कि, "सामाजिक व्यवस्था में यदि पुनरोत्पादन का कार्य रूक जाये, यदि बच्चों का पालन-पोषण न किया जाये और उन्हे अपने विचारों को आगामी पीढ़ी के लिए संचारित करना तथा एक-दूसरे से सहयोग करना न सिखाया जाये, तब सम्भवत: समाज का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।"[1]

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात आपके द्वारा समझना सम्भव होगा-

- परिवार का अर्थ एवं परिभाषा,
- परिवार की प्रमुख विशेषताये,
- परिवार के प्रकार
- परिवार के प्रमुख कार्य
- सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की भूमिका

3.2 परिवार की अवधारणा एवं परिभाषा

सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की भूमिका को समझने से पूर्व आवश्यक है कि परिवार की अवधारणा, परिभाषा, कार्यप्रणाली एवं विशेषताओं को समझा जा सके, शाब्दिक रूप से परिवार अंग्रेजी शब्द "family" तथा लैटिन शब्द "Famulus" से बना है। जिसका अर्थ "सेवक" होता है। सरल शब्दो मे यदि परिवार के अर्थ को स्पष्ट करे तो यह एक ऐसा प्राथमिक समूह है जिसमें निवासरत प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के साथ 'हम की भावना' से बधे हुए होते है और समूह के सदस्यों के प्रति सेवा-भाव से एक दूसरे के साथ जुड़े रहते है। जैसा कि हम सब जानते है प्रत्येक समाज की अपनी एक अलग संस्कृति, कार्य-प्रणाली, धर्म एवं धार्मिक संस्कार व परम्पराये होती है, और उन्ही के अनुरूप प्रत्येक समाज का स्वरूप एक दूसरे से भिन्न होता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने परिवार को अलग-अलग दृष्टिकोण से परिभाषित किया है जो निम्नवत है।

बर्गेस और लॉक के अनुसार, "परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के सम्बन्धों द्वारा संगठित है तथा एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते है और पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई तथा बहिन के रूप में एक-दूसरे से अन्तक्रियाएं करते तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण तथा देख-रेख करते है।"[2]

मैकाइवर और पेज ने परिवार की संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा है कि, "परिवार ऐसा समूह है जो यौन-सम्बन्धों पर आश्रित है तथा इतना छोटा और शक्तिशाली है कि सन्तान के जन्म और पालन-पोषण की व्यवस्था करने की क्षमता रखता है।"[3]

पी.एच.प्रभु का कथन है कि "दक्षिण भारत में 'नायर' समुदाय के व्यक्ति तो यौन-सम्बन्धों को परिवार के कार्यो से बिल्कुल की बाहर मानते है।"[4]

आगबर्न और निमकाफ के अनुसार, "परिवार लगभग एक स्थायी समिति है, जो पति-पत्नी से निर्मित होती है, चाहे उनके सन्तान हो अथवा न हो।"[5]

किग्सलें डेविस के अनुसार, "परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है, परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनके एक-दूसरे के प्रति सम्बन्ध सगोत्रता पर आधारित होते है और जो इस प्रकार एक-दूसरे के रक्त-सम्बन्धी होते है।"[6]

क्लेअर ने परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते है जो माता पिता और उनकी संतानों के बीच पाया जाता है।"[7]

इसी प्रकार **इलियट तथा मैरिल** ने भी परिवार को पति, पत्नी एवं बच्चों से निर्मित एक जैविक सामाजिक इकाई माना है।[8]

अमेरिकन ब्यूरो आफ सेन्सस के अनुसार परिवार रक्त, विवाह तथा गोद लेने के आधार पर सम्बन्धित दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह है, इन सभी व्यक्तियों को एक परिवार का सदस्य समझा जाता है।[9]

आरनाल्ड ग्रीन ने भी परिवार को एक संस्थायीकृत सामाजिक समूह माना है, जिस पर जनसंख्या प्रस्थापन का भार होता है।[10]

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो रक्त संबंधी, विवाह संबंधी तथा गोद लिए गये व्यक्तियों के सम्बन्धों पर आधारित होता है, और एक स्थायी समिति के आधार पर सदस्यों की सुरक्षा तथा आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है।

3.3 परिवार की विशेषतायें

यद्यपि विभिन्न समाजों में कार्य तथा स्वरूप के आधार पर अलग-अलग तरह के परिवार पाये जाते है, परन्तु आकार एंव स्वरूप में विभिन्नतायें होने के पश्चात भी सभी परिवारों की कुछ सामान्य मुख्य विशेषतायें होती है जो निम्नवत् है।

1. **सीमित आकार**- सामान्यतया सभी समाजों में परिवार का आकार अपेक्षाकृत सीमित होता है। परिवार में जन्म तथा विवाह के आधार पर ही सदस्यों की संख्या का निर्धारण होता है।

2. **यौन सम्बन्धों पर आधारित**- प्रत्येक परिवार का अस्तित्व प्रायः एक पुरूष एवं स्त्री के परस्पर यौन सम्बन्धों पर आधारित होता है। ये सम्बन्ध जीवन पर्यन्त बने रहते है।

3. **विवाह सम्बन्धों पर आधारित**- यौन सम्बन्ध विवाह संस्था द्वारा स्थापित एवं सम्पन्न किये जाते है। जिनके प्रकिया एवं स्वरूप अलग-अलग हो सकते है। जीवन साथी का चयन माता पिता या संबंधित लड़के या लड़की द्वारा किया जा सकता है।

4. **उत्तरदायित्व की भावना**- परिवार में प्रत्येक व्यक्ति में 'हम की भावना होती है। अपने निजी हितों को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति परिवार कल्याण में कार्य करना अपना प्रमुख उत्तरदायित्व समझता है।

5. **सर्वव्यापी संस्था**- परिवार एक सर्वव्यापी संस्था है, क्योंकि समाज का आकार व स्वरूप चाहे कैसा भी हो परन्तु परिवार की कार्य प्रणाली सभी समाजों में प्रायः समान रूप की होती है।

6. **भावनात्मक प्रवृत्तियॉ पर आधारित** :- परिवार के प्रत्येक सदस्य भावनात्मक आधार पर एक-दूसरे से जुड़े रहते है। इस सन्दर्भ मे सदरलैण्ड और बुडवर्ड का मानना है कि “आदर्श रूप में परिवार एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक विश्राम गृह है, जिसमें कोई भी सुरक्षापूर्वक विश्राम कर सकता है, और दुकान अथवा दफतर की परेशानियों को दूर कर सकता है।”[11]

7. **सामाजिक नियन्त्रण: -** परिवार सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रमुख अभिकरण है जो अन्य समूहों अथवा समितियों की अपेक्षा प्रभावशाली ढ़ग से व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करता है। संस्कृति, परम्पराओं, धर्म और सामाजिक निषेधों के कारण व्यक्ति एक नियन्त्रित व्यवहार करने को बाध्य होता है।

मैकाइवर और पेज ने परिवार की आठ विशेषताओं का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है।[12]

1. सर्वव्यापकता- सभी सामाजिक संस्थाओं और समितियों में परिवार सबसे अधिक सर्वव्यापक है। स्वरूप तथा कार्य में परिवर्तन होने के बाद भी यह समाप्त नही होता है। एडरसन ने भी इस सम्बन्ध में कहा है कि, 'परिवार का एक रूप वह है जिसमें हम जन्म लेते है, तथा दूसरा रूप वह है जिसमें हम स्वयं बच्चों को जन्म देते है। परिवार की सार्वभौमिकता इसी बात से स्पष्ट हो जाती है कि हम में से कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो परिवार के इन दोनों स्वरूपों में से एक का भी सदस्य ना हो।[13]

2. भावनात्मक आधार- मैकाइवर तथा पेज कहते है कि परिवार के सभी सदस्य भावनात्मक आधार पर समान रूप से मिल-जुल कर कार्य करते है। सभी सदस्यों में हम की भावना पायी जाती है तथा परिवार का हित सर्वोपरि होता है जो प्रत्येक सदस्य को एक दूसरे के साथ बाधे रखता है।

3. रचनात्मक प्रभाव- जैसा कि हम जानते है कि, परिवार का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि, यहा परिवार के सभी सदस्यों के हितों को समान महत्व दिया जाता है, तथा बच्चों पर परिवार के नियमों भाषा तथा संस्कृति का एक स्थायी प्रभाव पड़ता है। जो जन्म से लेकर मृत्यु तक बना रहता है।

4. छोटा आकार- परिवार की एक मुख्य विशेषता यह है कि, दूसरे समूहों की तुलना में इसका आकार काफी छोटा होता है। जन्म विवाह और निकट सम्बन्धियों के द्वारा परिवार की स्थापना होती है तथा वर्तमान समय में औद्योगीकरण के कारण परिवार का आकार और अधिक सिमित हो गया है।

5. सामाजिक ढांचे में केन्द्रीय स्थिति- सम्पूर्ण सामाजिक ढाचें में परिवार का स्थान केन्द्रीय होता है। समाज की केन्द्रीय इकाई होने के कारण इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। अरस्तू ने समुदाय को परिभाषित करते हुए इसे परिवारों का संकलन कहकर संबोधित किया था। अर्थात परिवार ही सामाजिक ढांचे का आधार हैं।

6. सदस्यों के असिमित उत्तरदायित्व- परिवार एक ऐसा समूह है जहां व्यक्ति अपने हितों को ध्यान में न रखकर पूरे परिवार के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करता है। परिवार के सदस्यों के लिए त्याग की भावना सर्वोपरि होती है। एसी स्थिति में परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के प्रति असिमित उत्तरदायित्व की भावना रखता है। यहां पर निजी हितों की अपेक्षा पारिवारिक हितों और कर्तव्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

7. सामाजिक नियम का आधार- परिवार के अपने कुछ निश्चित नियम होते है, जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के व्यवहार पर नियंत्रण रखते है जिससे व्यक्ति का सामाजिक जीवन नियंत्रित रहता है।

8. परिवार का स्थायी व अस्थायी स्वभाव- मैकाइवर ने परिवार की अंतिम विशेषता में परिवार के दो रूपों का उल्लेख किया है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवार एक समिति भी है और संस्था भी। एक समिति के रूप में परिवार पति-पत्नी बच्चों अथवा कुछ अन्य व्यक्तियों का समूह है। इस रूप में परिवार अस्थायी है क्योंकि, विवाह विच्छेद, मृत्यु, विवाह अथवा नये शिशु के जन्म के कारण परिवार के आकार में परिवर्तन हो जाना स्वभाविक है। यदि परिवार के नियम और कार्यप्रणालियों को व्यवस्था के रूप में देखा जाये तो परिवार एक संस्था होगी और संस्था के रूप में परिवार स्थायी है। पति-पत्नी अथवा किसी अन्य सदस्य के ना रहने पर भी परिवार के नियम सदैव बने रहते है। इस प्रकार परिवार का रूप स्थायी भी है और अस्थायी भी है।

बोध प्रश्न

1. 'Family' शब्द का उद्गम 'Famulus' शब्द से हुआ है Famulusशब्द किस भाषा का है

(a) अमेरिकन

(b) लेटिन

(c) उर्दू

(d) अंग्रेजी

2. ‘'परिवार लगभग एक स्थायी समिति है, जो पति-पत्नी से निर्मित होती है, चाहे उनके सन्तान हो अथवा न हो। यह परिभाषा किसने दी।

(a)आगबर्न और निमकाफ

(b) किग्सलें डेविस

(c) मैकाइवर और पेज

(d) आरनाल्ड ग्रीन

3.4 परिवार के प्रकार

जैसा कि हम जानते है कि समाज में अलग-अलग तरह की संस्कृति एवं धार्मिक संस्कार पाये जाते है। यही कारण है कि प्रत्येक समूह के अलग-अलग संस्कृति होने के कारण इनके पारिवारिक संगठन में भी अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार परिवार के वर्गीकरण को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

3.4.1 सम्बन्धों पर आधारित परिवार

रक्त सम्बन्धी परिवार- एक परिवार में पति-पत्नी और उनके बच्चे जो आपस में रक्त सम्बन्धी होते है और जन्म के द्वारा परिवार के दूसरे सदस्यों से सम्बन्धित होते है अथवा दम्पति द्वारा गोद लिए गये हो। ऐसे परिवार रक्त संबंधी परिवार कहलाते है।

विवाह सम्बन्धी परिवार- पति और बच्चों के द्वारा बने हुए परिवार विवाह सम्बन्धी परिवार कहलाते है। जैसा कि हिन्दु धर्म में विवाह को एक पवित्र धार्मिक संस्कार माना जाता है। अतः परिवार दो व्यक्तियों को मिलाने वाला ना मानकर दो परिवारों को मिलाने वाला समझा जाता है।

प्राथमिक या एकाकी परिवार- समाज में आकार के दृष्टिकोण से प्राथमिक या एकाकी परिवार सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। हैरिस ने इस सम्बन्ध में कहा है कि एक एकाकी परिवार उन व्यक्तियों का छोटा समूह है, जो जैविकीय भूमिका निभाने के अतिरिक्त एक दूसरे के प्रति संस्थागत सामाजिक दायित्वों को पूरा करते है तथा ऐसा करने के साथ ही उन विश्वासों और मूल्यों का पालन करते है जिनकी उनसे परिवार के अन्तगर्त पूरा करने की आशा की जाती है।[8]

विस्तृत संयुक्त परिवार- विस्तृत संयुक्त परिवार ऐसे परिवार को कहा जाता है जिसमें कई एकल परिवारों के मिलने से उस परिवार का आकार बढ़ जाता है। विस्तृत परिवार में अनेक नाते-रिश्तेदार होते है। ये रिश्तेदार पति अथवा पत्नी दोंनों के परिवारों से हो सकते है। इस प्रकार के परिवार मध्य भारत की अनेक जनजातियों में पाये जाते है।

3.4.2 वंशावली या सत्ता पर आधारित परिवार

इस आधार पर परिवार को दो भागों में बाटां जा सकता है।

मातृसत्तात्मक या मातृवंशीय परिवार- ऐसे परिवार जहाँ परिवार के समस्त दायित्वोंका निर्वहन एक स्त्री द्वारा किया जाता है। ऐसे परिवार को मातृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार की सत्ता प्रमुख रूप से महिला के हाथ में होती है। ऐसे परिवारों में वंश परम्परा एक स्त्री के नाम पर चलती है और

बच्चे प्रायः अपनी माता के कुल या वंश के नाम ग्रहण करते है। भारत में आज भी बहुत सी ने जनजातियों में ऐसे वंश या परिवार पाये जाते है। जिनमे नायर, खासी, व थारू के जनजातियां प्रमुख है।

पितृसत्तात्मक या पितृवंशीय परिवार - पितृसत्तात्मक परिवार या पितृ वंशीय परिवारमें परिवार की पूर्ण सत्ता तथा अधिकार पिता या पति के हाथ में होते है। ऐसे परिवारों का वंश पिता के नाम से चलता है और बच्चे अपने पिता के वंश के नाम को ग्रहण में करते है। पितृ सत्तात्मक परिवारों में पुरुषों द्वारा अधिकारों एवं कर्तव्यों के निर्धारण के साथ ही परिवार की सम्पत्ति का प्रत्येक सदस्य में वितरण का भी अधिकार रहता है।

बोध प्रश्न-2

1. किस प्रकार के परिवार में रिश्तेदार पति अथवा पत्नी दोंनों के परिवारों से हो सकते है।

(a) संयुक्त परिवार

(b) विस्तृत परिवार

(c) एकांकी परिवार

(d) पितृ वंशीय परिवार

2 पति पत्नी और उनके आश्रित बच्चों से मिलकर बने परिवार को कहते है

(a) केंद्रीय या नामिक परिवार

(b) एकांकी परिवार

(c) विस्तृत परिवार

(d) समरक्त परिवार

3 जिस परिवार में सत्ता एवं अधिकार माता से पुत्रियों को मिलता है, उसे कहते है

(a) पत्नी सत्तात्मक परिवार

(b) मात् सतात्मक परिवार

(c) पितृवंशीय परिवार

(d) स्थानीय परिवार

3.5 परिवार के प्रमुख कार्य

परिवार किसी भी समाज एवं समूह की एक प्रमुख प्राथमिक एवं मौलिक इकाई है। जिसमें व्यक्ति समाज में रहने योग्य बनता है तथा एक सभ्य समाज में किस प्रकार अनुकूलन किया जा सकता है यह भी सीखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार की संस्कृति भाषा नियमों एवं हम की भावना के कारण हीआदिकालीन बर्बर एवं असभ्य युग से निकल कर एक सभ्य प्राणी बन सका, जिससे समाज संतुलित एवं व्यवस्थित हो गया। परिवार के प्रमुख कार्यों को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. यौन इच्छाओं की पूर्ति- समाज को व्यवस्थित रूप देने के लिए परिवार द्वारा विवाह संस्था की स्थापना की जाती है। जिसका प्रमुख कार्य मनुष्य की यौन प्रवृत्तियों की संतुष्टि करना है। यदि काम भावना का दमन किया जाये तो व्यक्तित्व का संतुलन बिगड़ने लगता है। अनैतिक तरीके से किये गये यौन संबंधों की स्थापना समाज को अव्यवस्थित कर सकता है। अतः परिवार का सबसे अनिवार्य कार्य व्यक्ति की लैंगिक संतुष्टि से है। परिवार विवाह द्वारा ऐसे अवसर प्रदान करता है, जिसमें व्यक्ति नैतिक तरीके से यौन इच्छाओं की संतुष्टि कर पाता है।

2. सन्तानोत्पत्ति तथा पालन पोषण- समाज का सबसे प्रमुख कार्य परिवार की निरन्तरता को बनाये रखना है। इस निरन्तरता को बनाये रखने के लिए संतान की उत्पत्ति अति आवश्यक है। परिवार इसका प्रमुख माध्यम है साथ ही संतान के पालन पोषण के लिए भी परिवार एक सर्वोच्च संस्था मानी जाती है।

3. सामाजीकरण- परिवार का सबसे प्रमुख कार्य व्यक्ति का सामाजीकरण करना है। जन्म के समय मनुष्य को किसी प्रकार का ज्ञान नही होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही वह समाज में रहने योग्य बनता है तथा अन्य समूहों की अपेक्षा परिवार द्वारा सिखाये गये नियम, आर्दश, मूल्य, संस्कृति, भाषा तथा दायित्वों का प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है।

4. धार्मिक कार्य- परिवार का एक प्रमुख कार्य व्यक्ति में धार्मिक प्रवृत्तियों का विकास करना भी है। परिवार में ही व्यक्ति धर्म से संबंधित नैतिक आचरण एवं आदर्शों को सीखता है, जो व्यक्ति के व्यवहार को भी संतुलित एवं व्यवस्थित करता है। उदाहरणार्थ जैसे विवाह हिन्दु धर्म में एक धार्मिक संस्कार माना जाता है।

5. आर्थिक कार्य- परिवार आर्थिक क्रियाओं का भी केन्द्र माना जाता है। यह उत्पादन की इकाईयों तथा आर्थिक गतिविधियों में अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य को जहां एक ओर आर्थिक सुविधाये तो प्रदान करता है, साथ ही आवश्यकता अनुसार प्रत्येक सुविधाएं भी प्रदान करता है। श्रम विभाजन के आधार पर परिवार के प्रत्येक सदस्यों के कार्य अलग-अलग होते है और उत्तरदायित्तव की भावना के कारण उनका निर्वहन भी करता है।

6. सांस्कृतिक कार्य - समाज को व्यवस्थित बनाये रखने में संस्कृति की निरन्तरता आवश्यक है। इसे प्रभावपूर्ण बनाने में परिवार का योगदान सर्वाधिक होता है। संस्कृति व्यक्ति को परिवार द्वारा पीढी दर पीढी विरासत में मिलती है। प्रत्येक समाज तथा समूह मे कई प्रकार के आर्दश, नियम, मूल्य, जनरीतियां, लोकाचार तथा प्रथायें होती है. जिनका निर्वहन करना अनिर्वाय रूप से प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होता है।

7. मनोरंजनात्मक कार्य- मनोरंजनात्मक कार्य के अन्तगत परिवार सामुहिक रूप से धार्मिक उत्सवों एवं त्यौहारों के माध्यम से परिवार के सदस्यों के लिए स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करता है। सामाजिक त्यौहार तथा उत्सव धर्म से संबंधित होने के कारण व्यक्ति पूर्ण नैतिकता से इनका निर्वहन भी करता है जिससे संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है, साथ ही संबंधों में दृढता आती है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले कार्यों का मुख्य उद्देश्य परिवार के सदस्यों की सुरक्षा, सामाजीकरण तथा व्यक्तिव विकास के लिए आवश्यक परिस्थितिया तैयार करना है। परिवार एक सामाजिक मौलिक इकाई इसलिए मानी जाती है कि, यह एक सभ्य समाज के लिए सभ्य मानव का निर्माण करता है। जो समाज में अनुकूलन करने की क्षमता रखता है।

3.6 सामाजिक नियंत्रण में परिवार का भूमिका

जैसा कि हम जानते है कि परिवार सामाजिक संगठन की सबसे प्राथमिक इकाई है। परिवार जहा एक ओर व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा करता है वही उसके सामाजीकरण एवं मानवीकरण में भी अपनी विशेष भूमिका निभाता है।एण्डरसन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि, 'एक कार्यात्मक इकाई के रूप में परिवार इतनी महत्वपूर्ण संस्था है कि सभी समाज परिवार के माध्यम से ही अपने मान्यता प्राप्त लक्ष्यों को पाने का प्रयत्न करते है।"[14]

इसी प्रकार किग्सले डेविस के कथनानुसार, "परिवार के सभी कार्य इतने स्वतन्त्र प्रकृति के होते है कि उन सभी कार्यों को अन्य संस्थाओं के द्वारा भी पूरा किया जा सकता है लेकिन परिवार के अतिरिक्त ऐसी कोई संस्था नही है जिसमें इन कार्यों को असीमित उत्तरदायित्व की भावना के साथ किया जाता हो।"[15]

'परिवार के विभिन्न कार्यों के फलस्वरूप ही मानव बर्बरता और असभ्यता की सीमाओं को लाघकर एक सभ्य प्राणी बन सका है। एक ऐसा प्राणी जिसके पास संस्कृति व ज्ञान है और आविष्कार करने की क्षमता है। परिवार के कारण ही मनुष्य दूसरे के लिए त्याग करना सीखता है और सामुहिक जीवन के महत्व को स्वीकार करता है।[16]

परिवार सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली अभिकरण है। मानव जो परिवार में जन्म लेता है और अपने जीवन के अन्त तक किसी न किसी रूप में परिवार से जुड़ा रहता है और परिवार के सभी नियमों का पालन करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने में परिवार का एक केन्द्रीय एवं प्रमुख स्थान होता है। परिवार सामाजिक संरचना एवं व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण का प्रमुख साधन माना जा सकता है। सामाजिक नियंत्रण में परिवार की भूमिका को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1- मानवीयकरण एवं सामाजीकरण-जैसा कि पूर्व से ही हम जानते है कि परिवार एक ऐसी संस्था है जहां व्यक्ति का सामाजीकरण एवं मानवीयकरण होता है परिवार में रहकर ही व्यक्ति समाज में रहने का ढंग एवं तौर तरीका सीखता है। परिवार द्वारा सीखे हुए गुण, अनुशासन, सहानुभूति, समर्पण की भावना से व्यक्ति समाज में सामंजस्य स्थापित करता है तथा परिवार द्वारा बनाये गये विभिन्न नियमों को मानकर अपने व्यवहार को भी

अनुशासित करता है। परिवार द्वारा बनाये गये विभिन्न नियम समाज तथा व्यक्ति पर नियंत्रण रखने का कार्य करते है।

2- कर्तव्यों एवं दायित्वों का निवर्हन–परिवार का मुखिया परिवार के प्रत्येक सदस्य को उसके उम्र के हिसाब से कार्यात्मक विभाजन करके उनसे अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों का निवर्हन परिवार एवं समाज के हित में करने को कहता है। जिससे व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखा जाता है।समाज व परिवार में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति भी सामाजिक बहिष्कार एवं तिरस्कार के डर से प्रत्येक नियमों एवं आदर्शों को मानने का बाध्य होता है। इस सम्बन्ध में कालमन ने कहा है कि 'परिवार में जो माता-पिता बच्चों के पालन पोषण का जितना अधिक ध्यान रखते है उनका व्यवहार सामाजिक रूप से उतना ही अधिक नियंत्रित होता है।[17]

3- सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से-परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख अभिकरण इसलिए भी माना जाता है क्योंकि, यह व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। जैसा कि विदित है कि परिवार अथवा समाज के अभाव में व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नही कर सकता। अतः व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार में सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी जुड़ा रहता है। परिवार प्रत्येक सदस्य को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति परिवार व समाज के नियमों एवं संस्कृति के प्रति निष्ठावान रहता है, तथा परिवार के विभिन्न सुविधाओं का उपभोग भी जीवन पर्यन्त करता है। अतः सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। क्योकि प्रत्येक व्यक्ति बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, दूर्घटना, बेरोजगारी एवं बीमारी की स्थिति में परिवार में ही अपने को सुरक्षित महसूस करता है और परिवार ही प्रत्येक अवस्था में उसकी सुरक्षा करता है।

4- धार्मिक नियम एवं संस्कृति द्वारा नियंत्रण-विभिन्न धार्मिक नियम एवं सांस्कृतिक नियमों के माध्यम से भी परिवार व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण रखता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, विचार, आर्दश, मूल्य एवं नियम उसके धार्मिक नियमों एवं संस्कृति पर निर्भर करते है। इस सम्बन्ध में क्यूबर का कथन है कि, "परिवार द्वारा स्थापित नियंत्रण में परिवार के नियमों का प्रभाव सबसे अधिक होता है। परिवार के नियम चाहे प्रथाओं के रूप में हो अथवा परम्परा के रूप में व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखने में इनका प्रभाव सर्वव्यापी होता है। परिवार के नियम चार प्रकार से नियंत्रण की स्थापना करते है।[18]

(अ) प्रत्येक परिवार विवाह से संबंधित कुछ मर्यादाओं और निषेधों का पालन करता है। उदाहरण के लिए एक हिन्दु परिवार में प्रत्येक व्यक्ति को विवाह के समय की गई प्रतिज्ञाओं के अनुसार जीवन पर्यन्त अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। इसी प्रकार कोई कानून न होने पर भी व्यक्ति अपने गोत्र अथवा निकट संबंधी से केवल इसलिए विवाह करने की बात नही सोचता कि, इससे परिवार के नियम की अवहेलना हो सकती है। इसके फलस्वरूप नैतिक व्यवहारों को प्रोत्साहन मिलता है और व्यक्ति सामाजिक मूल्यों से बधां रहता है।अधिकांश परिवार साधारणतया विवाह विच्छेद की अनुमति नहीं देते अथवा विवाह विच्छेद करना अनुचित मानते है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहारों और उद्देश्यों पर नियंत्रण रखकर परिवार को संगठित

बनाये रखने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार विवाह विच्छेद संबंधी नियमों ने मानवीय व्यवहारों पर नियंत्रण रखा है।

(स) परिवार के नियम व्यक्ति को यह निर्देश देते है कि, वह सांस्कृतिक मूल्यों का प्रत्येक स्थिति में पालन करेगा। इसके फलस्वरूप व्यक्ति समाज विरोधी कार्यों की ओर प्रतृत्त नही हो पाते।

(द) सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में पारिवारिक नियंत्रण इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि, यह व्यक्ति की यौनिक प्रेरणाओं पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये रखता है। परिवार के अतिरिक्त दूसरी कोई भी संस्था इस क्षेत्र में प्रभावपूर्ण नही बन सकती है। परिवार के यौनिक आचरण सम्बन्धी इन नियमों ने व्यक्तियों का पारस्परिक संघर्षो से बचाया है।

नियन्त्रण एवं परिवर्तन –

1 – शिक्षा द्वारा नियन्त्रण

2 – समायोजन का गुण विकशित करना

इसी आधार पर क्यूबर ने भी स्पष्ट किया है कि, ‘‘परिवार के नियम परम्परागत आदर्शो पर आधारित होने के बाद भी सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली माध्यम है।’’[19]

3.7 सारांश

सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर कह सकते है कि परिवार समाज की प्राथमिक एवं मूलभूत इकाई होने के साथ-साथ सामाजिक नियंत्रण में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। परिवार एक ऐसा एकमात्र समूह है जो व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा के साथ ही संर्वागीण विकास में भी सहायक है। जैसा कि हम जानते है नियंत्रण के अभाव में कोई भी समाज व्यवस्थित व संगठित नहीं रह सकता। कहने का आशय यह है कि समाज तभी सुव्यवस्थित रह सकता है जब उस पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नियंत्रण हो। नियंत्रण के अभाव में यदि परिवार विघटित होते है, तो सामाजिक संगठन भी कभी व्यवस्थित नही रह सकता है। व्यक्ति अपने चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण अपने परिवार द्वारा दिये गये गुणों, मूल्यों एवं आर्दशो के आधार पर करता है और आगे चलकर समाज में उसी के अनुसार व्यवहार भी करता है। अतः कहा जा सकता है कि परिवार एक ऐसा अभिकरण है जो व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित कर एक संगठित और व्यवस्थित आर्दश समाज बनाने में अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। आकार तथा स्वरूप के आधार पर परिवार में अनेकों विभिन्नतायें पायी

जाती है परन्तु परिवार का सबसे प्रमुख कार्य ही समाज के प्रत्येक पक्ष पर नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित करना होता है।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

परिवार – व्यक्तियों के ऐसे समूह को परिवार कहा जाता है जो विवाह, रक्त सम्बन्धों एवं गोद लिये गये बच्चों से आपस में सम्बन्धित होता है। समाज में परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह होता है। परिवार एक मात्र ऐसा समूह होता है जो बच्चो का समाजीकरण एवं उनके सर्वागीण विकास में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करता है।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01 के उत्तर

1. लेटिन
2. आगबर्न और निमकाफ

बोध प्रश्न 02 के उत्तर

1. विस्तृत परिवार
2. एकांकी परिवार
3. मात् सतात्मक परिवार

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. G.A. Lundberg and other, Sociology Pg No. 291
2. Burgess and Locke, Family Pg No. 8
3. Maclver and Page, Society, Pg No. 238
4. P.H Prabhu, Hindu Social Organization, Pg No. 292
5. Ogburn and Nimkoff, A Handbook of Sociology, Pg No. 459
6. Margaret Hewitt in Dictionary of Sociology edited by Mitchell, Pg No 76
7. विधाभूषण, सचदेव “समाजशास्त्र का सिद्धान्त” किताब महल – 2010 पे.न. 293
8. उपरोक्त पे.न. 293
9. The American Bureau of the census, Quoted by Johnson; H.M Sociology Pg no. 155
10. विधाभूषण, सचदेव “समाजशास्त्र का सिद्धान्त” किताब महल – 2010 पे.न. 293

11. Sultherland and Woodword, “Introductory Sociology” Pg No. 615
12. Maclver and Page, Society, Pg No. 240 – 241
13. Anderson and Parker Society: Its Organisation and Operation, Pg No. 160
14. Anderson and Parker Society: Its Organisation and Operation, Pg No. 162
15. Kinsley Davis, Human Society Pg No. 395 – 396
16. अग्रवाल जी0के0 “मानव समाज” – 2000 साहित्य भवन आगरा, पे.न. 369
17. Curtis Coleman & Ralph Lane, Sociology: An Introduction Pg No. 126
18. अग्रवाल जी0के0 “सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन” – 2000 साहित्य भवन आगरा, पे.न. 127
19. J.E Cuber, Sociology: A Synopsis of Principles Pg No. 439–441

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1- डॉ बी० के० अग्रवाल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा
2- विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना
3- डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
4- Gillin and Gillin, Cultural Sociology three
5- Martindale and monachesi, Elements of sociology
6- Sumner, Folkways
7- Merrill, “Society and Culture”
8- A.W. Green “Sociology”
9- E. Durkeim, “Elementary form of Religious”
10- Thomas O. Dea, “Sociology of Religion”

3.12 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. परिवार किस प्रकार सामजिक नियंत्रण में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता है?
2. परिवार समाज के प्राथमिक और मौलिक इकाई है। स्पष्ट करें।
3. परिवार कितने प्रकार के होते है? तथा इसके महत्व को स्पष्ट किजिये।

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परिवार का अर्थ एवं परिभाषा समझाइए तथा परिवार के कार्यों की विवेचना किजिये।
2. समाज को परिवार किस प्रकार व्यवस्थित और संगठित करता है? विस्तार से समझाइयें।
3. परिवार की प्रमुख विशेषतायें कौन सी है? मैकाइवर तथा पेज द्वारा दी गई विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण के रूप में परिवार की भूमिका की विवेचना किजिये।

इकाई-04 सामाजिक मानदंड
Social Norms

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 सामाजिक मानदंड का अर्थ एवं परिभाषा
4.3 सामाजिक मानदंडों की विशेषताएँ
4.4 सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण
4.5 सामाजिक नियंत्रण में मानदंडों की भूमिका
4.6 सामाजिक नियंत्रण एवं मानदंडों का संबध-
4.7 सारांश
4.8 परिभाषिक शब्दावली
4.9 बोध प्रश्न के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 लघु उत्तरीय प्रश्न
4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

किसी भी समाज की स्थिरता और संतुलन को बनाए रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण आवश्यक होता है। सामाजिक नियंत्रण का अर्थ है – व्यक्तियों के व्यवहार को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप नियंत्रित करना। इसके लिए समाज में अनेक अभिकरण (agencies) कार्य करते हैं, जो स्पष्ट नियमों, विधियों और संस्थाओं के माध्यम से नियंत्रण स्थापित करते हैं। ये अभिकरण सामाजिक मानदंडों की रक्षा करते हैं और उनके उल्लंघन पर दंड भी प्रदान करते हैं।

सामाजिक मानदंड या सामाजिक प्रतिमान से तात्पर्य उन नियमों, परंपराओं, और मूल्यों से है जो किसी समाज या समुदाय में स्वीकृत और अपेक्षित व्यवहार का निर्धारण करते हैं। यह मानदंड (प्रतिमान) सामूहिक जीवन को सुव्यवस्थित बनाते हैं और समाज के सदस्यों के बीच सामंजस्य बनाए रखने में सहायक होते हैं। समाजिक मानदंड (Social Norms) समाज में व्यवहार, आचरण और नैतिकता के वह अनुकूलित नियम और परंपराएँ

हैं, जो व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। ये मानदंड समाज के सामान्य संचालन और स्थिरता को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सामाजिक मानदंड समाज के संगठन और सामंजस्य को बनाए रखने वाले महत्वपूर्ण आधारभूत तत्व हैं। ये मानदंड समाज में व्यवहार और आचरण के स्वीकार्य स्वरूपों को निर्धारित करते हैं। किसी भी समाज में व्यक्तियों के बीच परस्पर संबंधों, उत्तरदायित्वों, और अधिकारों को सुव्यवस्थित करने के लिए इन मानदंडों की स्थापना होती है।

सामाजिक मानदंड न केवल समाज की सामूहिक इच्छाओं और अपेक्षाओं को दर्शाते हैं, बल्कि वे व्यक्तियों को सामाजिक जीवन में सम्मिलित होने और उसके नियमों का पालन करने के लिए मार्गदर्शन भी प्रदान करते हैं। ये मानदंड किसी भी समाज की संस्कृति, परंपरा, और मूल्यों पर आधारित होते हैं।

प्रिय शिक्षार्थियों इस इकाई में समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के मानदंडों (प्रतिमानों), उनकी विशेषतओं और समाज में उनके महत्व को स्पष्ट किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप के द्वारा समझना सम्भव होगा।

- सामाजिक मानदंड का अर्थ एवं परिभाषा
- सामाजिक मानदंड की प्रमुख विशेषतायें
- सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण

4.2 सामाजिक मानदंड का अर्थ एवं परिभाषाएं

सामाजिक मानदंड समाज को एकजुट बनाए रखने के साथ-साथ व्यक्तियों को उनके कर्तव्यों और अधिकारों का बोध कराते हैं। सामाजिक मानदंड वे नियम और अपेक्षाएँ हैं, जो किसी समाज या समुदाय में व्यक्तियों के आचरण को नियंत्रित करती हैं। सामाजिक मानदंड के नियम लिखित नही होते हैं, यह नियम पीढ़ी दर पीढ़ी परंपरा के रूप में चलते रहते हैं। जैसें किसी बड़े का सम्मान करना, पड़ोसियों की मदद करना, सार्वजनिक स्थानों पर अनुशासन बनाए रखना, आदि।

सामाजिक प्रतिमान या सामाजिक मानदंड की समाजशास्त्रीयों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषाएं दी हैं। इनमें प्रमुख समाजशास्त्री किंग्सलें डेविस, रार्बट वीरस्टीड, बर्टन राइट, वुड्स लैण्डिस, हारालाम्बोस आदि हैं। इनकी पूर्ववर्ती परिभाषाएं हैं।

बर्टन राइट[1] का कहना है, "सामाजिक प्रतिमानों की एक सामान्य परिभाषा यह है कि वे व्यवहार के उचित तरीकों को बताते हैं।"

राबर्ट वीरस्टीड[2] ने अपनी कृति 'द सोशियल आर्डर' में लिखा है, "सामाजिक प्रतिमान, संक्षिप्त में कार्य-प्रणालियों की प्रमाणित पद्धतियाँ हैं। कार्य पूर्ण करने की एक विधि है जो हमारे समाज द्वारा मान्य है।"

जे. आर. लेण्डिस[3] ने अपनी पुस्तक 'सोशियोलोजी' में कहा है, "प्रतिमान एक विशेष स्थिति में एक व्यक्ति के द्वारा किस प्रकार का व्यवहार प्रमाणित और अपेक्षित है, को प्रकट करते हैं।"

हारलाम्बोस[4] ने 'सोशियोलॉजी 'में बताया है, "ऐसे निर्देश, प्रत्येक संस्कृति में बड़ी संख्या में मिलते हैं जो व्यवहार को विशिष्ट परिस्थितियों में निर्देशित करते हैं। ऐसे निर्देशों को ही सामाजिक प्रतिमान या आदर्श-नियम कहते हैं।"

एस. एफ. जे. वुड्स[5] ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी' में लिखा है, "सामाजिक प्रतिमान वे नियम हैं जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं, व्यवस्था में सहयोग करते हैं और किसी विशिष्ट परिस्थिति में व्यवहार की भविष्यवाणी करना सम्भव बनाते हैं।"

किंग्सले डेविस[6] ने अपनी कृति 'ह्यमन सोसायटी 'में सामाजिक प्रतिमान की परिभाषा इस प्रकार दी है, "ये (सामाजिक प्रतिमान) नियन्त्रण हैं। इन्हीं नियन्त्रणों के द्वारा मानव समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को इस प्रकार संचालित करता है कि वे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रिया करते हैं चाहे कभी उनकी जैविक आवश्यकताएँ ही पूरी न हो पाएँ।"

उपर्युक्त विद्वानों की परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक मानदंड उन मान्य और प्रमाणित प्रक्रियाओं का समूह हैं, जो समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होते हैं। ये मानदंड व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित, निर्देशित और संचालित करते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक प्रतिमान, समाज के वे नियम होते हैं जो उसके सदस्यों को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं और विशिष्ट परिस्थितियों में उनके व्यवहार की भविष्यवाणी को संभव बनाते हैं।

दुर्खीम ने भी अपने अध्ययन में बताया है कि समाज में नियमों की उपस्थिति आवश्यक है। जब व्यक्ति निर्धारित नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, तो समाज सुव्यवस्थित बना रहता है। उन्होंने सामाजिक प्रतिमानों के एक विशिष्ट रूप "सामूहिक प्रतिमान" का भी विस्तृत विश्लेषण किया है। सामूहिक प्रतिमान, वे बाह्य सामाजिक तथ्य होते हैं, जो व्यक्ति पर नियंत्रण रखते हैं और समाज को संतुलित बनाए रखते हैं। ये प्रभावशाली सामूहिक चेतना के रूप में कार्य करते हैं और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में मौजूद रहते हैं। समाज के सभी सदस्य इनका पालन करते हैं, जिससे सामाजिक व्यवस्था संतुलित बनी रहती है।

4.3 सामाजिक मानदंडों की विशेषतायें

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार सामाजिक मानदंड, व्यक्ति का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में भी सहायक होते हैं। सामाजिक मानदंड की प्रकृति अनौपचारिक

होती है। अधिकांश सामाजिक मानदंड लिखित रूप में नहीं होते, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रसारित होते हैं। सामाजिक मानदंडों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होते हैं। इन्हें समाज के अधिकांश लोग स्वीकार करते हैं और उनका पालन करते हैं। सामाजिक मानदंड समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक, और आर्थिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर अलग-अलग हो सकते हैं। सामाजिक मानदंड व्यक्तियों को यह सिखाते हैं कि समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए। यह समाज के सामूहिक हित और संतुलन बनाए रखने के लिए बनाए जाते हैं। इनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. सामाजिक मानदंड वे आदर्श नियम होते हैं जिनका पालन समाज के प्रत्येक सदस्य से अपेक्षित होता है। यह समाज के नैतिकता का आधार होते हैं।
2. सामाजिक मानदंड के अंतर्गत अनेक छोटे-बड़े नियम और उपनियम आते हैं, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों और स्थितियों से संबंधित होते हैं।
3. सामाजिक मानदंड हर समाज में अनिवार्य रूप से पाए जाते हैं। जैसा कि कहा गया है-"जहाँ प्रतिमान नहीं हैं, वहाँ समाज भी नहीं है।"
4. यह मानदंड हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं और अधिकांशतः हम बिना विशेष सोच-विचार के इन्हें अपने व्यवहार में अपनाते हैं। इनका उल्लंघन समाज विरोधी माना जाता है।
5. सामाजिक मानदंड का संबंध सामाजिक उपयुक्तता से होता है। इसलिए जब समाज की आवश्यकताएँ बदलती हैं, तो समय के साथ-साथ मानदंडों में भी परिवर्तन आने लगता है।
6. सामाजिक मानदंड विभिन्न मानव समूहों के बीच होने वाले संघर्षों की स्थिति में सामाजिक अस्तित्व को बनाए रखने में सहायक होते हैं।
7. यह मानदंड हमें दिशा प्रदान करते हैं तथा स्वयं एवं दूसरों के बारे में हमारे निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इनके पालन या उल्लंघन से व्यक्ति तथा समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।
8. सामाजिक मानदंड एक प्रकार का सामाजिक नियंत्रण हैं, जिनके माध्यम से समाज अपने सदस्यों के व्यवहार पर आवश्यक नियंत्रण स्थापित करता है, ताकि वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक बन सकें।
9. मानदंड की प्रकृति सरल होती है। इनके अनुसार आचरण करने के लिए विशेष प्रयास या गहन सोच-विचार की आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतः व्यक्ति सहज रूप से इनके अनुसार व्यवहार करता है।
10. सामाजिक मानदंड सापेक्ष होते हैं, अर्थात् ये न तो सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू होते हैं और न ही सभी परिस्थितियों में। जो प्रतिमान स्त्रियों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं, वह पुरुषों के लिए आवश्यक नहीं कि उपयुक्त हों। इसी प्रकार एक सैनिक के लिए उपयुक्त मानदंड एक चिकित्सक के लिए अनुकूल हों, यह आवश्यक नहीं है।

सामाजिक मानदंड की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन मैकाइवर और पेज, मर्टन, डेविस, वीरस्टीड, गिलिन और गिलिन, पारसन्स आदि समाजशास्त्रियों ने किया है[7]-

1. एकता
2. प्रकार्यात्मक सार्वभौमिकरण
3. अपरिहार्यता
4. नियत्रण के साधन
5. अन्योन्याश्रितता
6. संघर्षों से रक्षा
7. पथ-प्रदर्शन
8. सापेक्षता
9. अनुकूलता
10. व्यावहारिकता
11. लिखित/अलिखित
12. नैतिकता
13. व्यवहार के अंग
14. सामाजिकता
15. अधि-वैयक्तिता

सामाजिक मानदंड, समाज के सदस्यों को एकजुट रखते हैं और आपसी समझ बढ़ाते हैं। यह समाज में अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने में सहायक होते हैं। मानदंड समाज की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में मदद करते हैं। सामाजिक मानदंड व्यक्ति को नैतिकता और जिम्मेदारी सिखाते हैं।

4.4 सामाजिक मानदंडों की आवश्यकता

सामाजिक मानदंड समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं। ये मानदंड न केवल व्यक्तियों के व्यवहार को निर्देशित करते हैं, बल्कि वे समाज के सामूहिक जीवन की दिशा भी निर्धारित करते हैं। जब लोग इन मानदंडों का पालन करते हैं, तो वे समाज में एक दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से जीते हैं। सामाजिक मानदंड की आवश्यकता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

1. सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया का मूल आधार सामाजिक मानदंड ही होते हैं। ये मानदंड यह निर्धारित करते हैं कि समाज में क्या व्यवहार उचित है और क्या अनुचित। जब व्यक्ति मानदंडों के अनुसार आचरण करता है, तो सामाजिक नियंत्रण स्वाभाविक रूप से स्थापित रहता है।

2. सामाजिक मानदंड स्वयं एक प्रकार का अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण हैं। इनके पालन के लिए किसी कानूनी दंड की आवश्यकता नहीं होती है। लोग स्वाभाविक रूप से इन्हें मानते हैं, क्योंकि यह सामाजिक स्वीकृति और मान्यता से जुड़े होते हैं।

3. सामाजिक मानदंडों के कारण व्यक्ति स्वयं के व्यवहार को नियंत्रित करता है। इस तरह समाज को कठोर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह आंतरिक नियंत्र का कार्य करता है, जिससे समाज में व्यवस्था बनी रहती है।

4. मानदंडों के माध्यम से समाज अपने सदस्यों के आचरण पर निगरानी रखता है और उन्हें अनुशासित करता है। यदि कोई व्यक्ति इन मानदंडों का उल्लंघन करता है, तो सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया जैसे—आलोचना, बहिष्कार, शर्मिंदगी, या दंड—सक्रिय हो जाती है। इस प्रकार मानदंड और नियंत्रण साथ-साथ कार्य करते हैं।

5. जब सभी व्यक्ति समान सामाजिक मानदंडों का पालन करते हैं, तो समाज में सामूहिकता और एकता का भाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार साझा व्यवहार और मूल्यों को प्रोत्साहित करके, मानदंड एकता और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देते हैं। संघर्ष और अराजकता को कम करते हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत स्थान का सम्मान करने के मानदंड अनावश्यक विवादों को रोकते हैं।

6. जब किसी मानदंड का पालन धीरे-धीरे कम होने लगता है, तो यह इस बात का संकेत होता है कि समाज में कोई मूलभूत परिवर्तन आ रहा है। इस तरह मानदंड सामाजिक परिवर्तन के संकेतक भी होते हैं। जैसे-जैसे मानदंड विकसित होते हैं, वह समाजों को नई वास्तविकताओं के अनुकूल होने में सक्षम बनाते हैं। उदाहरण के लिए, शहरी भारत में अंतर-जातीय विवाहों की बढ़ती स्वीकृति बदलते मानदंडों को दर्शाती

7. मानदंड व्यक्ति के निजी व्यवहार को समाज के अनुरूप ढालते हैं। व्यक्ति को यह समझाते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की एक सीमा होती है, जो सामाजिक हितों से जुड़ी होती है।

8. मानदंड एक नैतिक कम्पास के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यक्तियों को जटिल सामाजिक स्थितियों से निपटने में मदद करते हैं।

9. मानदंड सांस्कृतिक निरंतरता, समाज की परंपराओं और विरासत को दर्शाते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करते हैं।

सामाजिक मानदंड सामाजिक नियंत्रण के सबसे प्रभावशाली और मौलिक उपकरण होते हैं। ये व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन स्थापित करने में मदद करते हैं और समाज को संगठित, व्यवस्थित और गतिशील

बनाए रखते हैं। दोनों का संबंध पूरक और परस्परावलंबी होता है। मानदंड (प्रतिमान), समाज में सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने में भी सहायक होते हैं।

4.5 सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण

प्रिय शिक्षार्थियों यदि हम सामाजिक मानदंडों का वैज्ञानिक, क्रमबद्ध और संगठित रूप से अध्ययन करना चाहते हैं, तो उनके विभिन्न प्रकारों को समझना आवश्यक हो जाता है। सामाजिक मानदंड वह अपेक्षाएँ होती हैं जो समाज किसी व्यक्ति के व्यवहार से रखता है। इनका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना होता है। समाजशास्त्रियों ने सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, किंतु इनमें से कोई भी वर्गीकरण पूर्ण, स्पष्ट या एकमात्र स्वीकार्य नहीं है। इस संदर्भ में हम बीयर्स्टेड तथा किंग्सले डेविस द्वारा दिए गए वर्गीकरणों का विश्लेषण करेंगे। साथ ही, सामाजिक मानदंडों को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे- सकारात्मकता, औपचारिकता, लिपिबद्धता, जटिलता, लागू करने की सीमा, संगठन, और चेतनता। इन आधारों के अनुरूप सामाजिक मानदंडों के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं-

बीरस्टीड द्वारा सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण- बीरस्टीड ने सामाजिक मानदंडों को प्रभाव और गंभीरता के आधार पर अपनी पुस्तक 'सोशियल आर्डर' में तीन वर्गों में बाँटा है:-

(1) जनरीतियाँ (Folkways)

(2) रूढ़ियाँ (Mores)

(3) कानून (Law)

इनमें से जनरीतियाँ और रूढ़ियाँ अनौपचारिक सामाजिक प्रतिमान हैं, जो समाज द्वारा निर्मित नियमों पर आधारित होते हैं। इनका उल्लंघन करने पर समाज स्वयं दण्ड प्रदान करता है। वहीं, कानून एक औपचारिक सामाजिक प्रतिमान है, जिसका उल्लंघन होने पर दण्ड न्यायिक प्रणाली के माध्यम से दिया जाता है।

किंग्सले डेविस द्वारा सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण- किंग्सले डेविस ने अपनी कृति ह्यूमन सोसायटी में सामाजिक मानदंडों को आवश्यकता और नियंत्रण के स्तर के आधार पर ग्यारह प्रकारों का उल्लेख किया है:-

(1) जनरीतियाँ (Folkways)

(2) रूढ़ियाँ (Mores)

(3) कानून (Law)- कानून को भी दो प्रकारों में विभक्त किया

3.1 प्रथागत कानून (Customary Law)

3.2 पारित कानून (Enacted Law)

(4) संस्थाएँ (Institutions)

(5) प्रथा (Custom)

(6) नैतिकता (Morality)

(7) धर्म (Religion)

(8) परिपाटी (Convention)

(9) शिष्टाचार (Etiquette)

(10) फैशन (Fashion)

(11) धुन (Fad)

सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण उनकी प्रकृति, निषेध, प्राथमिकता, दायरा आदि आधार पर भी किया जा सकता है-

आधार	**प्रकार**	**विशेषताएँ**	**उदाहरण**
1. औपचारिकता के आधार पर	औपचारिक	लिखित, संस्था द्वारा निर्धारित	कानून, ड्रेस कोड, ट्रैफिक नियम।
	अनौपचारिक	परंपरागत, अनलिखित	जनरीतियाँ, प्रथाएँ, रू बड़ों को नमस्ते करना,
2. सकारात्मकता के अधार पर	सकारात्मक	नैतिकता व अच्छाई कार्य करने की प्रेरणा देता है	सदैव सत्य बोलना, दान देना,
	नकारात्मक	बुराई पर आधारित कार्य एवं व्यवहारों को निषिद्ध	झूठ न बोलना, चोरी न करना।
3. लिखित- अलिखित	लिखित	साधारण आदतें, व्यवहार करने के तरीके	कानून, संविधान
	अलिखित	मौखिक रूप से विद्यमान	शिष्टाचार, फैशन, धुन
4. सामुदायिक-संघात्मक के अधार पर	सामुदायिक	इन प्रतिमानों का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज या समुदाय से होता है	अभिवादन करना।
	संघात्मक	किसी विशेष समूह, संघ से सम्बन्धित	गुरु का कहना मानना चाहिए
5. संगठनात्मकता के अधार पर	संगठित	नियमों से स्पष्ट और निश्चित होते हैं	विवाह के प्रकार, परिवार की संरचना और कार्य
	असंगठित	सांस्कृतिक नियम और प्रतीक	जनरीतियाँ, रूढ़ियाँ, परम्पराएँ

कुछ प्रमुख समाजिक मानदंड है जिनका विवेचन निम्न प्रकार किया गया है-

1. **जनरीतियाँ (Folkways)-** 1904 में सर्वप्रथम समनर ने अपनी पुस्तक 'फोकवेज' में इस शब्द का प्रयोग किया था। "जनरीतियां" शब्द का अर्थ होता है जन तथा रीतियां जो समाज में प्रचलित उन नियमों, आदतों या परंपराओं को दर्शाता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही होती हैं और समाज के सदस्यों द्वारा सामान्य रूप से स्वीकार की जाती हैं। जनरीतियों को सामाजिक नियम भी कहा जाता है और ये अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में कार्य करती हैं। सामान्यतः यह स्थिर होती हैं, हालांकि समय-समय पर इनमें कुछ हद तक परिवर्तन भी संभव होता है। यह समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती हैं। जनरीतियों का उल्लंघन करने पर कानूनी दंड नहीं दिया जाता है। मैकाइवर और पेज के अनुसार, "जनरीतियाँ समाज में आचरण करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधियॉ है।''[8]
1. **प्रथा (Custom)-** प्रथाएँ सामाजिक मानदंड का एक महत्वपूर्ण और अनौपचारिक प्रकार है। जब जनरीतियाँ निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित रहती हैं, तो समाज उन्हें स्थायित्व प्रदान करता है और उनकी मान्यता सुनिश्चित हो जाती है। तब समुदाय यह मानने लगते हैं कि इनका पालन उनके पूर्वज करते आए हैं, और इन्हें न मानना पूर्वजों की परंपराओं का उल्लंघन करना है। उनका अनुसरण सम्मान का विषय माना जाता है। इस स्थिति में जनरीति एक प्रथा का रूप ले लेती है। इस प्रकार, प्रथाएँ जनरीति का विकसित रूप मानी जाती हैं और य सामूहिक व्यवहार का प्रारंभिक चरण होती हैं। प्रथा यह समाज में व्यवहार के उन नियमों को दर्शाती है जो लंबे समय से चले आ रहे हैं और जिन्हें समाज के लोग परंपरा के रूप में मानते हैं।
2. **लोकाचार या रूढियाँ (Mores)-** लोकाचार, जनरीतियों से विकसित होते हैं। जब जनरीतियाँ समाज, समूह अथवा समुदाय के लिए महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारी समझी जाने लगती हैं वैसे ही वे जनरीति से लोकाचार बन जाती हैं। लोकाचार या रूढ़ियाँ सामाजिक समूहों द्वारा स्वीकृत, नियम, मान्यताएँ और व्यवहार हैं, जो समाज के नैतिक और सामाजिक मूल्यों को दर्शाते हैं। यह समाज के लिए इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि इनका उल्लंघन सामाजिक निंदा या दंड का कारण बन सकता है।
3. **परम्परा (Tradition)-** जनरीति और लोकाचार के अलावा परम्परा भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रतिमान है। सामान्यतः परम्परा उन व्यवहारों और तरीकों से जुड़ी होती है जो समय के साथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। जहाँ जनरीतियाँ और लोकाचार किसी समाज द्वारा स्वीकृत विचारों और कार्यशैलियों से संबंधित होते हैं, वहीं परम्परा में वे दार्शनिक मान्यताएँ और कलात्मक विधियाँ भी सम्मिलित होती हैं जो निरंतर एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक पहुँचती रहती हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी समुदाय में कई पीढ़ियों से माता-पिता अपने बच्चों को विशेष कहानियाँ सुनाते आ रहे हैं, तो यह एक परम्परा मानी जाएगी। इसका तात्पर्य है कि परम्परा अपने आप में अनेक प्रथाओं,

लोकाचारों और जनरीतियों को समाहित कर सकती है। इस कारण इसका दायरा जनरीति या लोकाचार की तुलना में अधिक व्यापक होता है।

4. **कानून (Law)-** कानून राज्य या कानूनी संस्थाओं द्वारा लागू किए जाने वाले औपचारिक मानदंड हैं। वे अक्सर रीति-रिवाजों से उत्पन्न होते हैं, लेकिन कानूनी प्रणालियों में संहिताबद्ध होते हैं। उदाहरण: दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के तहत भारत में दहेज अवैध है, जो एक बार स्वीकृत मानदंड से कानूनी रूप से निषिद्ध प्रथा में बदलाव को दर्शाता है।
5. **संस्थाएं (Institutions)-** 'संस्था' शब्द का सबसे पहले उपयोग स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स' में किया था। उनके अनुसार, संस्था समाज की वह इकाई है जिसके द्वारा सामाजिक क्रियाओं को संपन्न किया जाता है। संस्थाएँ समाज की संरचना का एक महत्वपूर्ण अंग होती हैं और इनमें कई सामाजिक प्रतिमान (norms) निहित रहते हैं, जो समाज की व्यवस्था और संचालन में योगदान करते हैं। किंग्सले डेविस के अनुसार, "संस्था को परस्पर सम्बन्धित लोकरीतियों, लोकाचारों तथा वैधानिक नियमों की समग्रता कहकर परिभाषित किया जा सकता है, जो एक अथवा अधिक कार्यों के लिए बनाई गई हो।"[9] इस प्रकार, संस्थाएँ सामाजिक नियंत्रण के लिए आवश्यक मानदण्डों को निर्धारित करने का कार्य करती हैं।
6. **परिपाटी एवं शिष्टाचार (Convention and Etiquette)-** किंग्सले डेविस के मतानुसार, "परिपाटी एवं शिष्टाचार विशिष्ट प्रकार की लोकरीतियाँ अथवा जनरीतियाँ हैं जिनका कोई गहन अर्थ नही होता, केवल सामाजिक सम्बन्धों में सरलता उत्पन्न करना ही इनका प्रमुख महत्व है।"[10] इस प्रकार परिपाटी किसी कार्य को करने की पारंपरिक और प्रचलित विधि होती है। यह व्यवहार के उन निश्चित तरीकों को दर्शाती है, जिन्हें समाज में एक विशेष स्थिति में अपनाना आवश्यक माना जाता है। उदाहरणस्वरूप, भारत में सड़क के बाईं ओर चलना एक परिपाटी है, जिसे सभी लोग इसलिए मानते हैं क्योंकि यह लंबे समय से चलता आ रहा है। वहीं शिष्टाचार का तात्पर्य किसी कार्य को करने के उपयुक्त और सामाजिक रूप से स्वीकृत तरीके से है।

किंग्सले डेविस के अनुसार शिष्टाचार की व्याख्या इस प्रकार की गई है "यह भी सामाजिक मानदण्डों का एक प्रकार है। इसका अर्थ यह है कि हम किसी कार्य को कई ढंगों से कर सकने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। किन्तु उनमें से एक अच्छा ढंग चुन लेते हैं। इस कारण बाह्य साधनों में शिष्टाचार एक प्रतीक के समान है, जिसे व्यक्ति के वर्ग का पद जाना जा सकता है। सामाजिक कार्यक्षमता और सरलता के दृष्टिकोण से इसका अधिक महत्त्व नहीं है; जैसे-हम किस प्रकार अभिवादन करते हैं? कैसे वस्त्र पहिनते हैं? आदि-आदि। किन्तु शिष्टाचार के दृष्टिकोणों से यही तरीके एक बड़ी भिन्नता उत्पन्न कर सकते हैं,

क्योंकि अनेक विषयों में से उचित-अनुचित ढंग को चुनना व्यक्ति के सामाजिक-स्तरीकरण को स्पष्ट करता है। इस प्रकार शिष्टाचार एक साधन है जिससे समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों की पहिचान हो जाती है।"[11]

7. **फैशन एवं धुन (Fashion and Fad)-** फैशन और धुन दोनों का समाज में विशेष महत्व होता है। मनुष्य स्वभावतः नवीनता और भिन्नता की ओर आकर्षित होता है। जबकि वह पुराने आदर्शों का पालन करता है, साथ ही साथ उसमें कुछ नया अपनाने की प्रवृत्ति भी रहती है। यही प्रवृत्ति कुछ ऐसे नियमों और तरीकों को जन्म देती है जो एक सीमित समय तक लोकप्रिय रहते हैं और फिर बदल जाते हैं। इन्हें ही फैशन या धुन कहा जाता है। फैशन एक प्रकार का सामाजिक मानदंड होता है। इसकी प्रकृति अस्थाई होती है, जबकि जनरीतियाँ, परंपराएं, प्रथाएं और रूढ़ियाँ स्थायित्व लिए होती हैं। धुन को फैशन का ही एक तीव्र और अल्पकालिक रूप माना जा सकता है। जब कोई बदलाव अत्यंत तेज़ी से और प्रायः दिखावे के रूप में सामने आता है, तो वह फैशन की बजाय धुन कहलाता है। धुनें केवल कुछ ही लोगों द्वारा अपनाई जाती हैं, और जब वही बदलाव समाज के अधिकांश लोग अपनाने लगते हैं, तो वह फैशन बन जाता है। उदाहरण के लिए, कुछ युवा आजकल बालों को नीला, हरा या बैंगनी रंगने लगे हैं — यह एक धुन है, क्योंकि इसे सिमित युवाओं द्वारा अपनाया जा रहा है। इसके विपरीत, जीन्स और टी-शर्ट पहनना आजकल एक आम चलन बन चुका है, जिसे हर वर्ग के लोग, विशेष रूप से युवा पीढ़ी, बड़े पैमाने पर अपना रही है, इसलिए यह फैशन कहलाता है।
इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार फैशन की तुलना में धुन का सामाजिक महत्त्व कम होता है, क्योंकि फैशन का दायरा व्यापक होता है जबकि धुन कुछ खास वर्गों या व्यक्तियों तक सीमित रहती है।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1 'संस्था' शब्द का सबसे पहले उपयोग स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक………………; में किया था।

2 लोकाचार, **............**.से विकसित होते हैं।

4.8 सारांश

सामाजिक मानदंड वे नियम, अपेक्षाएँ और आदर्श होते हैं जो समाज में व्यक्ति के व्यवहार को दिशा देते हैं और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसे समाज में रहते हुए इन मानदंडों का पालन करना होता है। ये मानदंड समाज द्वारा सामूहिक रूप से बनाए जाते हैं और समाज के अधिकांश लोग

इन्हें स्वीकार करते हैं। परिभाषाओं के अनुसार, समाजशास्त्रियों ने सामाजिक मानदंडों को ऐसे नियम बताया है जो यह निर्धारित करते हैं कि व्यक्ति को क्या करना चाहिए और क्या नहीं। विशेषताएँ यह दर्शाती हैं कि सामाजिक मानदंड व्यवहार को अनुशासित करते हैं, सामाजिक नियंत्रण का साधन होते हैं, समय और स्थान के अनुसार बदलते हैं, और प्रायः व्यक्ति इन्हें अवचेतन रूप से अपनाता है।इन मानदंडों का महत्व यह है कि ये समाज में अनुशासन बनाए रखते हैं, व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होते हैं, सामाजिक एकता को बढ़ावा देते हैं और संस्कृति के वाहक होते हैं। अत: सामाजिक मानदंड समाज की मूलभूत संरचना को स्थिर बनाए रखने में सहायक होते हैं। इनकी अनुपस्थिति से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है।

4.9 परिभाषिक शब्दावली

फैशन- फैशन एक प्रकार का सामाजिक मानदंड होता है। इसकी प्रकृति अस्थाई होती है, जबकि जनरीतियाँ, परंपराएं, प्रथाएं और रूढ़ियाँ स्थायित्व लिए होती हैं।

धुन- धुन को फैशन का ही एक तीव्र और अल्पकालिक रूप माना जा सकता है। जब कोई बदलाव अत्यंत तेज़ी से और प्रायः दिखावे के रूप में सामने आता है, तो वह फैशन की बजाय धुन कहलाता है।

4.10 बोध प्रश्न के उत्तर

1 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स'

2 जनरीतियों

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश (2004). समाजशास्त्र का परिचय. जयपुर: पंचशीन प्रकाशन. पेज 302

2. वही, पेज 302

3. वही, पेज 302

4. वही, पेज 302

5. वही, पेज 302

6. वही, पेज 302

7. वही, पेज 303

8. Maclver and Page, Society, P-19

9. शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश (2004). समाजशास्त्र का परिचय. जयपुर : पंचशील प्रकाशन. पेज न. 326

10. वही, पेज 326-327

11. वही, पेज 327

4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 विरेन्द्र प्रकाश शर्मा, समाजशास्त्र का परिचय. जयपुर: पंचशीन प्रकाशन.

2 डॉ० जी० के० अग्रवाल, मानव समाज साहित्य भवन आगरा, पे0न0 – 369

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक मानदंड से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. सामाजिक मानदंडों की किन्ही पाँच विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. सामाजिक मानदंडों की विशेषताएँ (लक्षण) क्या हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक मानदंडों की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 05 जनरीतियाँ
Falkways

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 जनरीति का अर्थ एवं परिभाषा
5.3 जनरीति की विशेषतायें
5.4 सामाजिक नियन्त्रण में जनरीति ती भूमिका
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 लघु उत्तरीय प्रश्न
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

जैसा कि हम सब जानते है कि समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने में सामाजिक नियन्त्रण का विशेष योगदान होता है। इससे पूर्व की इकाइयों में आपने अभी तक सामाजिक नियन्त्रण की औपचारिक एवं अनौपचारिक विधियों के बारे में पढ़ा होगा, वास्तव में औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण का प्रभाव व्यक्ति को बाहय स्वरूप को ही प्रभावित करता है, जबकि अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधन व्यक्ति को आन्तरिक रुप से भी प्रभावित करते है। जनरीतियाँ सामाजिक नियन्त्रण की वह अनौपचारिक साधन या अभिकरण है जो व्यक्ति और मानव समूह को आन्तरिक रुप से इसके नियमों का पालन करने के लिए प्रेरित करती है, इस दृष्टिकोण से जनरीतियॉ सामाजिक नियंत्रण वह विधियाँ है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित कर समाज में व्यवस्था, संगठन एवं समरूप समानता पर आधारित वातावरण उत्पन्न करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपके द्वारा समझना सम्भव होगा

- जनरीति की अर्थ एवं परिभाषा
- जनरीति की प्रमुख विशेषतायें
- सामाजिक नियन्त्रण में जनरीति की भूमिका

5.2 जनरीति का अर्थ एवं परिभाषा

विलियम ग्राहम समनर ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक " Folkways" में जनरीति शब्द का प्रयोग किया था, समनर ने अपनी पुस्तक में जनरीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रत्येक मनुष्य को समाज में समायोजन स्थापित करने के लिए दूसरे व्यक्ति के अनुकूल ही व्यवहार करना पड़ता है, यह सर्वविदित है कि मनुष्य को अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति, कार्य एवं व्यवहार के द्वारा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ती करता है, व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यवहार यदि उपयोगी होते है तब समाज द्वारा उसे स्वीकृत कर लिए जाता है, उसे जनरीति कहा जाता है। समनर के अनुसार, 'जनरीतियों का तात्पर्य व्यवहार के उन प्रत्याशित और संचित प्रतिमानों से है जो तत्कालीन परिस्थितियों और पारस्परिक क्रियाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के फलस्वरूप उत्पन्न होते है।[1]

जनरीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए समाजशास्त्री डा० अग्रवाल जी का मानना है कि "जनरीति का सम्बन्ध व्यक्ति के प्रति समूह की प्रत्याशाओं से है, इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन में समाज हमसे जिन हजारों प्रकार के व्यवहारों की आशा करता है वे उस समाज की जनरीतियों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं, उदाहरण के लिए, प्रत्येक समाज में खान-पान, स्वागत, विदाई वेशभूषा, संस्कारों, अनुष्ठानों, शिष्टाचार, सत्कार, आदि के क्षेत्र में समाज व्यक्ति से कुछ विशेष व्यवहारों की आशा करता है, है, यदि कोई व्यक्ति इन प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार न करे तो इसके लिए उसे कोई कानूनी दण्ड तो नही मिलता, लेकिन उसको मिलने वाला तिरस्कार अथवा सामाजिक व्यंग कानूनी दण्ड से भी अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है।"[2]

इसी प्रकार समनर ने जनरीति या लोकरीति की उत्पत्ति एवं विकास के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है, "ये प्राकृतिक शक्तियो की उपज के समान होती है। जिनको मनुष्य अचेतनावस्था में प्रारम्भ करते है अथवा वे पशुओं की नेसगिक अवस्थाओं के समान होती है, जो अनुभव से विकसित होती है, जो किसी, स्वार्थ के लिए अधिकतम अनुकूलन के अन्तिम स्वरूप तक पहुंचती है, जो परम्परा से चली आती है और जो किसी भी अपवाद या भिन्नता को स्वीकार नहीं करती, तथापि नई परिस्थितियों का अनुकूलन करने के लिए बदलती है परन्तु तब भी उन्ही सीमित पद्धतियों के अन्तगर्त ही परिवर्तित होती है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी युगों एवं संस्कृति की सभी अवस्थाओ मे मानव प्राणियों का सम्पूर्ण जीवन प्रजाति की प्रारम्भिकतम अवस्थिति से

हस्तांतरित अनेक लोकरीतियों द्वारा मुख्यतः नियन्त्रित होता है।"[3] अतः स्पष्ट है कि मनुष्य अपनी सभ्यता एवं संस्कृति अनुसार समाज में रहकर अनेक व्यवहार करता है, जब ऐसे व्यवहार को समाज द्वारा पूर्ण स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तब एक सामूहिक व्यवहार के रूप में समूह के सभी सदस्य उस व्यवहार के अनुरूप व्यवहार करने लगते है तो उसे जनरीति कहा जाता है।

जनरीति के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों द्वारा अलग-2 परिभाषाये दी गयी है, कुछ प्रमुख परिभाषाये निम्नवत है,

2. **मैकाइवर और पेज** के अनुसार, "जनरीतियाँ समाज में आचरण करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधियॉ है।''[4]
3. **प्रो० ग्रीन** के अनुसार, "जनरीतियों का तात्पर्य व्यवहार के उन तरीको से है जो एक समाज अथवा समूह में सामान्य रूप से पाये जाते है तथा जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर दिये जाते है।''[5]
4. **मैरिल और एलरिज** के अनुसार, "जनरीतियाँ सामान्य व्यक्तियों की कार्यविधियॉ है, ये वे सामाजिक आदते अथवा सामूहिक कार्य है जो नित्य प्रति के सामूहिक जीवन से उत्पन्न होते है।''[6]
5. **गिलिन और गिलिन** के अनुसार."जनरीतियाँ नित्य प्रति के जीवन में आचरण के वे प्रतिमान है जो साधारणतया समूह में अचेतन रूप से उत्पन्न होते है तथा बिना किसी पूर्व- योजना या निश्चित विचारों के उत्पन्न हो जाते हैं ।''[7]
6. **मार्टिण्डेल और मोनाकेसी** के अनुसार, "जनरीतियाँ कार्य करने के अभ्यस्त तरीके है जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों और व्यक्ति का अपनी स्थान सम्बन्धी परिस्थितियों से अनुकूलन करने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।''[8]
7. **एच० डब्लू० ओडम** के अनुसार, ''लोकरीति व्यक्ति की आदते एवं समूह की प्रथाएँ होती है जिनका जन्म स्वाभाविक एवं सहज ढंग से होता हो एवं जो जीवन के विभिन्न अंगो के चारों ओर धीरे-धीरे विकसित होती है।''[9]
8. **बोगार्डस** के अनुसार,"समूह की जनरीतियों में लोकाचार एवं व्यवहार के सभी अन्य ढ़ग सम्मिलित है जिन्हें रूचिकर समझा जाता है, परन्तु समूह-कल्याण हेतु अनिवार्य नहीं।''[10]
9. **एफ० बी० रैन्टर एवं सी०डब्लू० हार्ट** के अनुसार, "लोकरीतियॉ कार्य की सरल आदते है जो समूह के सदस्यों में सामान्य रूप से पाई जाती है, वे लोगों के ढ़ग है जो कुछ स्तरीकृत है एवं जिनके पीछे उनकी दीर्घता के लिए परम्परागत संपुष्टि की कुछ मात्रा भी है।''[11]
10. **लुण्डबर्ग एवं अन्य** के अनुसार "लोकरीतियाँ किसी समूह अथवा समुदाय में पालन किए जाने वाले आचरण की शैली, मनोवृत्तियों एवं स्वभावगत विश्वास है।''[12]

11. **हार्टन एवं हंट** के अनुसार, "लोकरीतियाँ सरल शब्दो में प्रथागत, समान्य एवं स्वभावगत ढंग है जिनके अनुसार कोई समूह कार्य करता है।''[13]

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है, कि मनुष्य जिस समाज में निवास करता है वहाँ एक दूसरे के साथ विभिन्न व्यवहारों को करता है, यही व्यवहार की रीतियों उसके समाज की जनरीतियों के माध्यम से अभिव्यक्त होते है। सामाजिकरण एवं मानवीकरण की प्रक्रिया में प्रत्येक मानव से समाज एवं समूह व सामाजिक आशाओं के अनुरुप ही कार्य करने व व्यवहार करने को प्रेरित किया जाता है, अतः संक्षेप में स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि व्यक्तियों द्वारा किये गये व्यवहार जो समय के साथ उपयोगी तथा अर्थपूर्ण होते है और सम्पूर्ण समूह द्वारा स्वीकार भी कर लिए जाते है, वह जनरीति कहलाती है।

बोध प्रश्न – 01

1. विलयम ग्राहम समनर ने सर्वप्रथम अपनी कौन सी पुस्तक में जनरीति शब्द का प्रयोग किया था?
2. मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में जानरीति के अर्थ को स्पष्ट करे?
3. जनरीतियों का मुख्य उद्देश्य क्या है?
4. समाज या समूह द्वारा व्यक्ति के कौन से विचार स्वीकृत किये जाते है?

5.3 जनरीति की विशेषतायें

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि जनरीतियाँ ऐसे आदर्श नियमों एवं रीति-रिवाजों को कहा जाता है जो सम्पूर्ण समूह द्वारा स्वीकृत कर लिए जाते है और यह जनरीतियाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी होते रहते है। इस प्रकार जनरीति की कुछ सामान्य विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **उपयोगी विचार** :- जनरीति की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि इसका आरम्भ सदेव एक उपयोगी विचार-धारा से उत्पन होता हो इस सन्दर्भ मे डा० जी० के० अग्रवाल का मानना है कि, "प्रत्येक जनरीति का आरम्भ एक उपयोगी विचारधारा से होता है, जब एक विचार अथवा कार्य करने के ढ़ग को समूह के सदस्य स्वाभाविक आदत के रुप में ग्रहण कर लेते है, तभी उस विचार अथवा व्यवहार को जनरीति का स्वरूप प्राप्त हो जाता है।''[14]
2. **समाज द्वारा स्वीकृत** :- मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन में, प्रत्येक दिन दूसरे व्यक्तियों अथवा मानव समूह से अनेक व्यवहार करता है, परन्तु मानव द्वारा किये गये प्रत्येक व्यवहार को जनरीति नहीं कहा

जा सकता है, क्योंकि केवल मनुष्य का वही व्यवहार जनरीति कहलाता है जो समाज द्वारा स्वीकृत होता है तथा आशा की जाती है कि ऐसे व्यवहार का पालन समाज में निवासरत प्रत्येक सदस्य द्वारा किया जाये।

3. **स्थानीय विशेषताओं का गुण**- भारतीय समाज में, अनेक प्रकार की संस्कृति एवं सभ्यता का समावेश होता है, प्रत्येक धर्म एवं जाति की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताये है, अतः जनरीति की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि इसमें स्थानीय विशेषतायें निहित होती है, अर्थात प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के अनुरूप ही व्यवहार करता है, जो समाज द्वारा स्वीकृत भी कर लिए जाते है, इस प्रकार प्रत्येक जनरीति की स्थानिय विशेषतायें भिन्न भिन्न होती है।
4. **परिवर्तनशीलता का गुण**:-जैसा कि हम सब जानते है कि कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, मानव समाज भी इससे अछूता नहीं है, जैसे- जैसे मानव समाज में परिस्थितियों के अनुरुप परिवर्तन आते रहते है, उसी के अनुसार जनरीतियॉ भी परिवर्तित होती रहती है, किन्तु परिवर्तन की प्रक्रिया समाज में शीघ्रता से नहीं होती क्योकि कोई जनरीति जब समाज द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है तब उसमें यदि आवश्यकता हुई तभी परिवर्तन सम्भव होता है और इसमें सामाजिक कल्याण की भावना सर्वोपरि होती है।
5. **सामान्य समरूपता का गुण**- जनरीतियो की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि जनरीतियों में एक सामान्य समरूपता का गुण निहित होता है, अथात व्यवहार के ऐसे सामान्य नियम जो प्रत्येक समाज एवं समूह के लिए अनिवार्य होते है उनका पालन प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जाता है। उदा० के लिए जैसे अपने से बड़ों का आदर, एवं अभिवादन करना, स्वच्छ वस्त्रों का धारण एवं स्वच्छता सम्बन्धित आदतों को अपने व्यवहार में शामिल करना, प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना इत्यादि।
6. **हस्तान्तरण का गुण** :- सधारणयतया जनरीतियों का कोई भी लिखित दस्तावेस्त नहीं होता अर्थात जनरीतियों का कोई लिखित स्वरूप नहीं होता है, वास्तव में ये हमारे व्यवहार एवं आदतों का एक

हिस्सा होते हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं। अतः जनरीतियों में हस्तान्तरण का गुण पाया जाता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का एक अभिन्न अंग के रूप में परिलक्षित होते है।

7. **विविधता** :- जनरीतियों में विविधता का गुण पाया जाता है, इस सन्दर्भ में समाजशास्त्री डॉ0 अग्रवाल का मानना है कि "विभिन्न समूहों में जनरीतियों की कोई निश्चित संख्या अथवा सार्वभौमिक रूप नहीं होता बाल्की इसमें अत्यधिक विविधता देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए हिन्दु शाकाहारी भोजन करना अच्छा समझते है, जबकि पाश्चमी समाज की जनरीतियाँ मांसाहारी भोजन का विरोध नहीं करती, दक्षिण भारत में चावल हाथ से खाया जाता है, जबकि उत्तर प्रदेश में मैं चम्मच से खाने का प्रचलन बद गया है भारत में हाथ जोड़कर अभिवादन किया जाता है, पश्चिमी समाजों में हाथ मिलाकर, इसी प्रकार जन्म, विवाह, मृत्यु, वेशभूषा, नातेदारी आदि से सम्बान्धित जनरीतियाँ भी विभिन्न समूहों में भिन्न-भिन्न होती है।''[15]
8. **नियन्त्रण का गुण**ः- जनरीतियों की एक प्रमुख विशेषता इसमें निहित नियंत्रण के गुण से सम्बन्धित है। सभी स्वीकृत जनरीतियाँ मानव समूह को एक उपयोगी एवं सुव्यवस्थित जीवन शैली के अनुरूप कार्य करने को प्रेरित करते है। जिसका मुख्य उद्देश्य मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने से है। अर्थात जनरीतियाँ एक तरह से मानव के व्यवहार को नियन्त्रित कर समाज को व्यवस्थित रखने का कार्य भी करता है।

बोध प्रश्न- 02

रिक्त स्थानों की पूर्ती करे

1 - समाज एवं समूह में रहने वाला प्रत्येक -------------- मानव के भय से जनरीतियों को मानने के लिए बाध्य होते है।

2 - प्रत्येक समाज एवं समूह की अपनी एक --------------होती है।

3 – जनरीतियों के कारण ------------- भावना का विकास होता है।

4 - जनरीति एवं लोकाचार ------------- से भी ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रभावशाली होते है।

5.4 सामाजिक नियन्त्रण में जनरीति की भूमिका

अतः सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि एक, अनौपचारिक साधन के रूप में जनरीतियों का मानव जीवन एवं समाज को व्यवस्थित रखने में विशेष भूमिका होती है, समाज एवं समूह में रहने वाला प्रत्येक मानव सामाजिक बहिष्कार एवं समाजिक अवहेलना के भय से उनको मानने के लिए बाध्य होते है। यहाँ पर यह कहना कोई भी अतिश्योक्ति नही होगा कि लिखित कानून की अपेक्षा जनरीतियाँ व्यक्ति एवं व्यक्ति के व्यवहार को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करते है, सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों की भूमिका को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1 - जनरीतिया समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वाहन करते है, व्यक्ति जनरीतियों की अवहेलना इसलिये नहीं कर पाता क्योंकि उसे भय होता है कि उसे सामाजिक अवहेलना या सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार वह एक अनुशासित जीवन यापन करता है जो समाज को व्यवस्थित रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है।

2 - प्रत्येक समाज एवं समूह की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। व्यक्ति अपनी भाषा और संस्कृति उसी समाज में सीखता है जिस समाज में वह जन्म लेता है। जनरीतियों के माध्यम से व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों के साथ वही व्यवहार करता है जो समाज में व्यक्ति द्वारा पूर्व में किये जा रहे होते है, अतः समाज में अनुकूलन तथा अपने समाज के अनुरूप बनाने में व्यक्ति को किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है तथा किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति कोई भी निर्णय सरलता से लेता है।

3 - जनरीतियों की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए समनर का मानना है कि "जनरीतियाँ तथा लोकाचार व्यक्ति को अनुशासन सामाजिक, आदतों तथा सामाजिक निर्णयों में निष्ठा बनाये रखने की प्रेरणा देते है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यवहारों का निधारण स्वयं करना पड़े और उसे प्रत्येक परिस्थिति में किये जाने वाले व्यवहारों का निर्णय स्वयं लेना पड़े तो ऐसा व्यक्ति जीवन के बोझ को उठाने में भी असफल हो जायेगा, लोकाचार व्याक्ति को अपने साधनों का अधिकतम उपयोग करने और सम्भावित कठिनाइयों से बचने की क्षमता प्रदान करते है।"[16] इस प्रकार स्पष्ट है कि जनरीतियाँ व्यक्ति को समाप्त से अनुकूलन एवं समायोजन करने में सहायता प्रदान करता है जिससे व्यक्ति को जीवन के किसी भी क्षेत्र में निर्णय लेने में किसी भी प्रकार की समस्याओं का सामनना

न करना पड़े क्योंकि व्यक्ति परिवार के बड़ो या पूर्वजों द्वारा लिये गये निर्णयों के आधार पर ही अपने कार्यों को सम्पादित करता है, जिससे समाज में एकरुपता बनी रहती है और व्यक्ति समाज द्वारा बनाये गये नियमों की अवहेलना भी नहीं कर पाता।

4 – जनरीतियों के कारण ही व्यक्ति में सामुदायिकता या हम की भावना का विकास होता है, प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन प्रर्यन्त जिस समूह में रहता है उसके बनाये गये नियमो तथा रीति-रिवाजों के आधीन रहकर ही कार्य करता है, जनरीति तथा लोकाचार कानून तथा दण्ड से भी ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रभावशाली होते है। व्यक्ति प्रत्येक कार्य अपने हित के सन्दर्भ में सोचकर करता है।

5 - धार्मिक या धर्म सम्बन्धी नियमों का समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है, जनरीतियाँ धार्मिक जीवन में भी अपना प्रभावशाली स्थान रखते है, व्यक्ति अपने व्यवहार में कई ऐसे कार्यों को करने से डरता है जो हमारे धार्मिका विश्वासों के विपरीत होते हैं, जैसे- अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों को मानना, इस प्रकार के मर्यादित व्यवहार समाज को नियन्त्रित रखने में अपना सहयोग देते हैं।

5.5 सारांश

इस प्रकार सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि जनरीतिया सामाजिक नियन्त्रण को एक ऐसा महत्वपूर्ण अभिकरण है जो समाज में निवासरत प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाकर समाज को व्यवस्थित रखने में अपना सहयोग देते हैं, जैसा कि हम सब जानते है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए समाज तथा समाज के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती तथा समाज से अनुकूलन स्थापित करने के लिए समाज के नियमों एवं आदर्शो के आधार पर ही व्यवहार एवं अन्र्तक्रिया करता है, उपयोगी व्यवहार धीरे-धीरे समाज व समूह द्वारा स्वीकृत होते है और सामाजिक कल्याण के लिए उपयोगी कोई भी विचार या व्यवहार जब एक बार समाज द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात जनरीति बन जाते हैं, ये जनरीतिया इतनें प्रभावशाली होते है कि व्यक्ति इनके अनुरूप कार्य करने को बाध्य हो जाता है, यदि वह इन जनरीतियों के विपरीत कार्य या व्यवहार करता है तो समूह से उसे बहिष्कार व तिरस्कार का सामना करना पड़ता है, जो कानूनी दण्ड से भी भयावह होता है। इस प्रकार कहॉ जा सकता है कि जनरीतिया व्यक्ति के

व्यवहार को नियन्त्रित एवं सन्तुलित करते है। साथ ही यह समाज को संगठित एवं व्यवस्थित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली.

1 **- जनरीतियाँ**:- व्यक्ति द्वारा किये गये ऐसे व्यवहार जो समाज एवं समूह के दूसरे सदस्यों के लिए उपयोगी होते है, और उनके द्वारा किये गये व्यवहार को सम्पूर्ण समाज व समूह द्वारा स्वीकृति मिल जाती है ऐसे व्यवहार को जनरीति कहा जाता है।

5.7 बोध प्रशों के उत्तर.

बोध प्रश्न 01 के उत्तर

1 – “Folkways”

2 – मैका इवर और पेज ‘जनरितियॉ समाज में आचरण करने कि स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधिया है

3 – जनरीति का मुख्य उददे्श्य मानव व्यवहार को नियंत्रित करने से है

4 – उपयोगी एवं सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित

बोध प्रश्न 02 के उत्तर

1 - सामाजिक बहिष्कार एवं सामाजिक अवहेलना

2 - विशिष्ट संस्कृति

3 - सामुदायिकता एवं हम की

4 - कानून एवं दण्ड

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Sumner W.G. Folkways P-13.

2. अग्रवाल जी0के0, "सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन "- 2000, साहित्य भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा पे0न0- 167

3. Sumner W.G. Falkway P.No- 13.

4. Maclver and Page, Society, P-19

5. A.W. Green, Sociology

6. Merrill & Eldrige, P-31, Culture and society

7. Gillin and Gillin, Cultural Sociology P-139

8. Martindale and Monachesi, Elements of sociology P-120

9. Odum H.W. Understanding Society P-225

10. Bogardus, E.S. Sociology P-6

11. F.B. Renter & C.W. Hart: Introduction to Sociology P-147.

12. Lundberg & others Sociology. P-173.

13. Horton and Hunt Sociology P-50

14.अग्रवाल जी0के0 'सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन' 2000 साहित्य भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स आगरा, पे0न0 - 168

15. उपरोका, पे0न0 - 404,

16. Quoted by Cuber and Harsoff Readings in Sociology. P-55

5.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ बी० के० अग्रवाल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000,साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा

2. विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना

3. डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा

4. Gillin and Gillin, Cultural Sociology three

5. Martindale and monachesi, Elements of sociology

6. Sumner, Folkways

5.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1- जनरीति से आप क्या समझते है?

2- जनरीति की प्रमुख विशेषताये कौन-कौन सी है,

3- जनरीतियों के सामाजिक महत्व की विवचना कीजिए,

4- सामाजिक नियन्त्रण में जनरीति की भूमिका को संक्षेप में स्पष्ट किजिए।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनरीतियों का अर्थ तथा परिभाषा को स्पष्ट कीजिए तथा समाज में उनके महत्व की व्याख्या कीजिए?

2. जनरीतियाँ किस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में कार्य करते है।

3. जनरीतियों को परिभाषित करते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किजिए।

इकाई– 06 लोकाचार
Mores

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 लोकाचार का अर्थ एवं परिभाषा
6.3 लोकाचार की विशेषतायें
6.4 लोकाचारों के कार्य
6.5 जनरीति एवं लोकाचार में अन्तर
6.6 सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचारों की भूमिका
6.7 सांराश
6.8 पारिभाषिक शब्दावली
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.12 लघु उत्तरीय प्रश्न
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 - प्रस्तावना

जैसा कि हम सब जानते है कि समाज के अस्तित्व के लिए सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक सुदृढ़ता का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है, यह तभी सम्भव होता है जब समाज में निवासरत प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था के ही अनुकूल अपना जीवन निवर्हन करे तथा व्यवहार करे, सामाजिक नियन्त्रण के विविध साधन जैसे परिवार, शिक्षा, व्यवस्था, धर्म, सामाजिक आदर्श, मूल्य, संस्कृति, एवं कानून व प्रशासन के नियम, व्यक्ति तथा व्यक्ति के व्यवहार पर नियन्त्रण लगाकर सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करते है। यहॉ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सामाजिक नियन्त्रण के प्रत्येक साधन व्यक्ति तथा समूह के व्यवहार को तभी नियन्त्रित कर पाते है जब वह समाज द्वारा स्वीकृत होते है।

जनरीतियॉ एवं लोकाचार सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधन या अभिकरण के रूप में व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने का कार्य करते है, जिससे समाज में समरूपता तो स्थापित हो साथ में समाज संगठित एवं

व्यवस्थित बना रहे। इस प्रकार समूह द्वारा स्वीकृत व्यवहार जो समाज के लिए उपयोगी एवं आवश्यक होते है और जनरीति के रूप में परिवर्तित हो जाते है, ऐसे व्यवहार आगे चलकर लोकाचार कहलाते है। इस सन्दर्भ में प्रमुख समाजशास्त्री समनर ने लोकाचार को समूह की एक महत्वपूर्ण जनरीति के रूप में परिभाषित किया है। शिक्षार्थियों पिछली इकाई में आपने जनरीति के अर्थ एवं जनरीति को विस्तृत रूप से समझ लिया होगा, प्रस्तुत इकाई में लोकाचार को सामाजिक नियन्त्रण के एक प्रमुख साधन के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा।

6.1 - उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- लोकाचार के अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेगें।
- लोकाचार की प्रमुख विशेषताओं का समझ सकेगें।
- लोकाचार के प्रमुख कार्य समझ सकेगें।
- जनरीतियों एवं लोकाचारों में क्या अन्तर है, समझ पायेगे।
- सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचारों की भूमिका को समझ सकेगें।

6.2 - लोकाचार का अर्थ एवं परिभाषा

शाब्दिक रूप से अंग्रेजी शब्द Mores लैटिन शब्द Mos का बहुवचन है। जिसका तात्पर्य प्रथा से है, एक दूसरी व्याख्या के अनुसार इस शब्द की उत्पत्ति Moral से हुई है। जिसका तात्पर्य समूह के प्रथागत विश्वासों अथवा क्रियाओं के अनुसार व्यवहार करना होता है। इससे स्पष्ट होता है कि लोकाचार का सम्बन्ध व्यवहार के उन नियमों से है जो नैतिकता की भावना द्वारा सामाजिक जीवन को प्रभावित करते है। आरम्भ में समूह द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहार जनरीति का रूप लेते है लेकिन जब इन जनरीतियों को समूह कल्याण के लिए आवश्यक मान लिया जाता है, तब यही जनरीतियॉ लोकाचारों के रूप में बदल जाती है। इस शब्द का उपयोग सबसे पहले समनर ने किया था।[1] समनर ने लोकाचार को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'लोकाचार समूह की महत्वपूर्ण जनरीतियॉ है। लोकाचार का तात्पर्य कार्य करने के ऐसे तरीकों अथवा व्यवहारों से है जिन्हे समूह-कल्याण के लिए आवश्यक समझा जाता है। यद्यपि इन्हे किसी सर्वमान्य सत्ता द्वारा लागू नही किया जाता लेकिन यह व्यक्ति को अपने अनुरूप व्यवहार करने को बाध्य करते है।[2] इसी प्रकार समनर का मानना है कि 'हमारे उद्देश्य हेतु लैटिन शब्द "Mores" उन लोकरीतियों , जिनमें सही एवं सत्य तथा सामाजिक कल्याण के अर्थ निहित हो, के लिए समग्र रूप में व्यवहारिक तौर पर अधिक सुविधाजनक एवं प्राप्त दिखाई देता है।[3] इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि वास्तव में लोकाचार व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार जो उसके तथा समूह के लिए

उपयोगी है, जनरीति है। यही जनरीति जब सम्पूर्ण समाज द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है, तो यह समाज के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी हो जाती है। तब यही जनरीतियॉ लोकाचार में परिवर्तित हो जाती है, लोकाचार के सन्दर्भ में अलग-अलग समाजशास्त्रियों एवं विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी है जो निम्नांकित है।

1- प्रो0 ग्रीन के अनुसार – "लोकाचार कार्य करने के वे सामान्य तरीके है जिन्हे जनरीतियों की अपेक्षा अधिक ठीक और अधिक उचित समझा जाता है तथा जिनकी अवहेलना करने पर व्यक्ति को अधिक कठोर दण्ड दिया जाता है।" [4]
2- डासन और गेटिज के अनुसार, "लोकाचार वे जनरीतियॉ है जिनमें इस निर्णय का समावेश हो जाता है कि उन पर पूरे समूह का कल्याण निर्भर है।" [5]
3- लाम्ले के अनुसार, "जब एक जनरीति में समूह कल्याण की भावना जुड़ जाती है, तो वह जनरीति एक लोकाचार बन जाती है।"[6]
4- सापिर के कथानानुसार, "लोकाचार शब्द का उपयोग उन प्रथाओं के लिए किया जाता है जो व्यवहार के तरीकों को सही अथवा गलत बताने में एक दृढ़ भावना को व्यक्त करते है।" [7]
5- गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "लोकाचार वे प्रथाएॅ एवं समूह-दिनचर्याएं है, जिन्हे समाज के सदस्यों द्वारा समूह की सतत अवस्थिति हेतु आवश्यक समझा जाता है।" [8]
6- मैकाइवर के अनुसार, "जब लोकरीतियों के साथ समूह कल्याण की धारणाएॅ तथा उचित और अनुचित के स्तर मिल जाते है, तो वे लोकरीतियॉ लोकाचारों में बदल जाती है।" [9]
7- सदरलैण्ड तथा अन्य के अनुसार, "लोकाचार वे लोकरीतियॉ है जो एक समूह के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है (विशेष रूप से) उसे (समूह) के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है।" [10]
8- समनर के अनुसार, "जब सत्य और औचित्य के तत्व कल्याण के सिद्धान्तों में विकसित हो जाते है। लोकरीतियॉ दूसरे (उच्च) क्षेत्र (लोकाचारों) में विकसित हो जाती है।" [11]
9- मैरिल के अनुसार, "लोकाचारों की प्रकृति सर्वव्यापी नही होती बल्कि समूह की परिस्थितियों के अनुसार इनकी प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है। एक समूह में जो व्यवहार लोकाचार होता है, वही दूसरे समूह में अपराध बन सकता है। उदाहरण के लिए, एस्कीमों जनजाति के कुछ भागों में शिशु-हत्या और पितृ-हत्या एक लोकाचार है, जबकि हमारे समाज में यह एक गम्भीर अपराध है, युद्धकाल में दूसरे पक्ष की हत्या करना प्रशंसनीय हो जाता है जबकि शान्तिकाल के लोकाचार हिंसा के विरोधी होते है।" [12]

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकाचार जनरीतियों का वह समूह है जिस पर सामुहिक कल्याण की भावना जुड़ी रहती है तथा यह जनरीति से अधिक कठोर होते है एवं अवहेलना करने पर व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी बनता है।

बोध प्रश्न – 01

1- जब लोकरीतियों के साथ समूह कल्याण की धारणायें तथा उचित और अनुचित के स्तर मिल जाते है तो वे लोकरितियॉ लोकाचारों में बदल जती है। यह कथन किसका है ?
2- लोकाचार को स्पष्ट करते हुए सदरलैण्ड एवं अन्य ने क्या कहॉ है?
3- लोकाचारों की प्रकृति सर्वव्यापी नहीं होती बल्कि समूह की परिस्थितियों के अनुसार इनकी प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है, यह किसने कहा है?

6.3 - लोकाचार की विशेषतायें

1- **समूह कल्याण के लिए आवश्यक** - लोकाचार में व्यक्ति के उन्ही व्यवहारों को समूह या समाज द्वारा मान्यता मिलती है, जो सम्पूर्ण समूह के कल्याण के लिए आवश्यक होती है।

2- **आदर्श मूल्यों का समावेश -** व्यक्ति के वह व्यवहार जो समाज के लिए उपयोगी तो होते है, साथ ही उसमें आदर्श मूल्यों का भी समावेश होता है, वह लोकाचार है। जैसे अपने से बड़ो का सम्मान करना तथा मद्यपान ना करना आदि कुछ ऐसे सामान्य लोकाचार है, जिसमें आदर्श, मूल्यों एवं नैतिकता का समावेश होता है।

3- **सार्वभौमिकता का गुण** - समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाने में लोकाचार की एक प्रमुख भूमिका है। यद्यपि अलग-2 समूह में विभिन्नता के गुण होने के कारण लोकाचार भी भिन्न-2 हो सकते है। परन्तु लोकाचार सभी समूहो एवं समाज की एक सार्वभौमिक विशेषता है।

4- **बाध्यता का गुण** - जैसा कि आप जानते है कि व्यक्ति द्वारा किये गये एक व्यवहार स्वीकृत होकर जब समूह का लोकाचार बन जाता है, तो समूह के प्रत्येक व्यक्ति के लिए इनका पालन करना आवश्यक हो जाता है। सामाजिक बहिष्कार एवं दण्ड के भय से व्यक्ति इन लोकाचारों को मानने के लिए बाध्य भी होता है।

6.4 - लोकाचारों के कार्य

समाज को संगठित रखने में लोकाचारों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक जीवन में लोकाचारों के प्रमुख कार्यो को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

मैकाइवर ने लोकाचारों के निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया है।[12]

1- **लोकाचार हमारे अधिकांश निजी व्यवहारों को निश्चित करते है -** वे व्यवहार को बाधित एवं निषेधित दोनो करते है। वे सदैव प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति को प्रतिबंधित एवं प्रभावित करते रहते है। दूसरे शब्दों में नियंत्रण के उपकरण है। समाज में असंख्य लोकाचार यथा एक पत्नीत्व दास विरोधिता, प्रजातंत्र एवं मद्यनिषेध आदि है, जिसका अनुपालन आवश्यक समझा जाता है।

2- **लोकाचार व्यक्ति का समूह से तादात्म्य स्थापित करते है -** लोकाचारों के अनुपालन द्वारा व्यक्ति अपने साथियों के प्रति तादात्म्य स्थापित कर लेता है, और उन सामाजिक सूत्रों को बनाए रखता है। जो सन्तोषपूर्ण जीवन के लिए स्पष्टतः बहुत ही आवश्यक है।

3- **वे सामाजिक सुद्धता के संरक्षक है** - लोकाचार समूहों के सदस्यों को एकता के सूत्र में बाघे रखता है। समूह के सदस्यों में यद्यपि उनमे समानता की चेतना होती है। जीवन एवं प्रस्थिति को अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करने हेतु परस्पर प्रतियोगिता रहती है। उन्हें लोकाचार ही सीमा के अंदर रखते है। समान लोकाचारों का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों में उनकी समान भावनाओं के कारण अच्छी सदृढता का भाव होता है। इसका यह भी अर्थ है कि मिन्न लोकाचारो का अनुसरण करने वाले व्यक्ति के प्रति उनमें विरोध एवं प्रतिरोध की भावना होती है। लिंग, आयु वर्ग और समूह प्रत्येक के लिए एवं सभी समूहों के लिए लोकाचार विधमान है। जो समूह की दृढता को बनाए रखने का कार्य पूरा करते है।

6.5 - जनरीति एवं लोकाचार में अन्तर

जनरीति तथा लोकाचार वास्तव में व्यवहार के एक सामान्य तरीके है और दोनों ही समूह कल्याण के लिए आवश्यक भी माने जाते है। परन्तु वास्तविकता यह है कि दोनो की प्रकृति एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न है। जनरीति तथा लोकाचार के अन्तर को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1-जनरीति व्यक्तियों द्वारा नैतिक नियमों के आधार पर किये गये सामान्य व्यवहार को कहा जाता है। जबकि लोकाचार ऐसे विचारो एवं व्यवहार को कहा जाता है, जो एक बार समूह में आने के पश्चात समूह के लिए उपयोगी होने के दशा में सम्पूर्ण समूह द्वारा स्वीकृत कर लिये जाते है।

2- जनरीति उपयोगी होने की दशा में लोकाचार तो बन सकता है परन्तु एक बार लोकाचार बन जाने के पश्चात वह पुनः जनरीति नही बन सकता।

3- जनरीति परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होते रहते है, जबकि लोकाचार मे परिवर्तन संभव नही होता और ना ही कोई व्यक्ति लोकाचारों की अवहेलना कर पाता है।

4- जनरीति का पालन व्यक्ति अपने हितों तथा आवश्यकता की पूर्ती के लिए करता है, जबकि लोकाचार समूह कल्याण के लिए आवश्यक होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को इनका पालन करना आवश्यक होता है।

5- जनरीतियां अपनी परिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण कानून का रूप नहीं ले सकती है, जबकि उपयोगी लोकाचार एक बार स्वीकृत होने के पश्चात धीरे-धीर कानून का रूप धारण कर लेते है।

6- लोकाचार जनरीतियों की अपेक्षा समाज में अधिक स्थाई एवं प्रभावशाली होते हैं. ये व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित एवं संतुलित करने वाले होते है।

7- लोकाचार में बाध्यता का गुण होता है जबकि जनरीति में बाध्यता का गुण नहीं होता है। जनरीति का उल्लघंन हो सकता है किन्तु सामाजिक बहिष्कार के भय से लोकाचार का उल्लघंन नही किया जा सकता है।

बोध प्रश्न – 02

1 – सत्य / असत्य लिखिये ।

1. लोकाचार समूह कल्याण के लिए आवश्यक होते है।
2. व्यक्ति के व्यवहार जो समाज के लिए उपयोगी तो होते है उनमें आदर्श मूल्यों का समावेश नही होता।
3. लोकाचार का प्रमुख कार्य व्यक्ति के व्यवहार को बाधित एवं निषेधित करना है।
4. मैकाइवर ने लोकाचारों के कार्यो को स्पष्ट करते हुए कहा है कि वे सामाजिक सुदृढ़ता के संरक्षक नहीं होते है।

6.6 सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचारों की भूमिका

जैसा कि अब तक आप समझ गये होगे कि मानव समूह एवं समाज में जनरीतियों एवं लोकाचारों का विशेष महत्व होता है, समाज का संगठित एवं व्यवस्थित रखने में जनरीतियों एवं लोकाचारों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोकाचारा का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के ऐसे व्यवहार से है जो नैतिक रूप से व्यक्ति के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है, ऐसा व्यवहार जो व्यक्ति के सामाजिक जीवन को प्रभावित तो करता ही है साथ ही समूह के कल्याण के लिए भी आवश्यक समझा जाता है। सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचारों की भूमिका को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. किसी भी समाज में मूल्यों का एक विशेष महत्व होता है। लोकाचार समाज में निवासरत व्यक्तियों को मूल्यों के आधार पर व्यवहार करने को प्रेरित करता है। जिससे व्यक्ति का सामाजिक जीवन सुदृढ़ एवं सन्तुलित बना रहे।
2. किसी भी समाज में लोकाचार धीरे-धीरे विकसित होते है, जिसे समाज एवं समूह अपनी स्वीकृति प्रदान करते है। समूह कल्याण के उद्देश्य से प्रत्येक व्यक्ति इनका पालन पूर्ण निष्ठा से करता है जिससे समाज व्यवस्थित एवं संगठित बना रहता है।

3. सामाजीकरण की प्रक्रिया में भी लोकाचारों की प्रमुख भूमिका होती है, व्यक्ति लोकाचारों के अनुरूप ही अपना व्यवहार करता है तथा व्यवहार के माध्यम से ही समाज में समायोजन एवं अनुकूलन करता है।
4. लोकाचार समाज में 'हम की भावना' का विकास करता है, लोकाचार के माध्यम से ही समाज या समूह में एकरूपता आती है, जो सम्पूर्ण समाज को संगठित एवं व्यवस्थित करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निवर्हन करते है।
5. लोकाचारों की प्रमुख भूमिका के संदर्भ में डॉ0 जी0के0 अग्रवाल का मानना है कि 'प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था बहुत बड़ी सीमा तक लोकाचारों के प्रभावपूर्ण बने रहने पर निर्भर होती है। समाज के लोकाचार यह बताते है कि विभिन्न आयु-समूहों, वर्गो और लिगो के सदस्यों के साथ एक व्यक्ति को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। इसके साथ ही लोकाचार उन सीमाओं को भी स्पष्ट करते है जिनकी अवहेलना करने पर व्यक्तित्व का विकास रूक सकता है। इसके फलस्वरूप लोकाचार व्यक्ति और समूह को व्यर्थ के संघर्षो से बचा लेते है। इससे पारस्परिक सद्भावना बढ़ती है और एकीकरण करने वाली शक्तियों को प्रोत्साहन मिलता है।"[14]

6.7 सांराश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक नियंत्रण में लोकाचारो की एक प्रमुख भूमिका होती है। लोकाचार सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा साधन है जो सामाजिक जीवन को प्रभावित करने में अपनी विशेष भूमिका का निवर्हन करते है। किसी भी समाज एवं समूह में लोकाचार का सम्बन्ध व्यक्ति के ऐसे व्यवहार से है जो उसके सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करते है। व्यक्ति का ऐसा व्यवहार जो समाज या समूह द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है प्रारम्भ में वह जनरीति का रूप ले लेता है, जब यह जनरीतियॉ सम्पूर्ण समाज एवं समूह के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी हो जाती है तब यही जनरीतियॉ लोकाचार के स्वरूप में परिवर्तित हो जाती है। यही लोकाचार इतने प्रभावशाली होते है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति इनके अनुरूप कार्य करने को बाध्य होता है। व्यक्ति समाज एवं समूह से बहिष्कृत होने के भय से लोकाचारों के विपरीत कार्य करने का साहस नहीं कर पाता, इस प्रकार लोकाचार व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित कर समाज को व्यवस्थित रखने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करते है।

6.8 पारिभाषिक शब्दावली

लोकाचार – समनर के अनुसार "लोकाचार समूह की महत्वपूर्ण जनरीतियॉ है। लोकाचार का तात्पर्य कार्य करने के ऐसे तरीकों अथवा व्यवहारों से है जिन्हे समूह-कल्याण के लिए आवश्यक समझा जाता है। यद्यपि इन्हे किसी

सर्वमान्य सत्ता द्वारा लागू नही किया जाता लेकिन यह व्यक्ति को अपने अनुरूप व्यवहार करने को बाध्य करते है।"

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01 के उत्तर

1. मैकाइवर
2. "लोकाचार व लोकरीतियॉ है जो एक समूह के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है विशेष रूप से उस समूह के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है।"
3. मैरिल

बोध प्रश्न 02 के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल जी0के0 "सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन " – 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा पे0न0 – 170
2. उपरोक्त पे.न. 170
3. विधाभूषण, सचदेव डी0आर0 "समाजशास्त्र के सिद्धान्त किताब महल इलाइबाद" – 2010 पे.न. 597
4. A.W. Green, Sociology Pg No – 86
5. Dawason and Gettys, "An Introduction to Society"
6. F.E. Lumley, "Principles Of Sociology"
7. Edward Sapir in Encyclopedia of Social Science.
8. Gillin and Gillin, Cultural Sociology, Pg No – 315
9. Maclver, R.M. "Society" Pg No – 19
10. Suther Land, Wordland and Morewell, "Introductory Sociology" Pg No- 23

11. Sumner, W.S. "Folkways" Pg No – 30
12. Merrile, "Society and Culture" Pg No – 71
13. विधाभूषण सचदेव डी0आर0 'समाजशास्त्र के सिद्धान्त' किताब महल इलाहबाद – 2010, पे.न. 600
14. अग्रवाल जी0के0 "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" – 2000 साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा, पे.न. 175

6.11 - सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Merrill, "Society and Culture"
2. A.W. Green "Sociology"
3. Sumner "Folkways"
4. डॉ बी० के० अग्रवाल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000,साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा
5. विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना
6. डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
7. Gillin and Gillin, Cultural Sociology three
8. Martindale and monachesi, Elements of sociology

6.12 - लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोकाचार से आप क्या समझते है ?
2. जनरीति तथा लोकाचार में अन्तर बताइये?
3. लोकाचारों की प्रमुख विशेषतायें क्या है ?
4. लोकाचारों के सामाजिक महत्व की विवेचना किजिए?

6.13 - निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकाचारों को परिभाषित करते हुए उसके कार्यो की विवेचना कीजिए ?
2. लोकाचारों से आप क्या समझते है। सामाजिक नियन्त्रण में लोकाचारों की भूमिका को समझाइये?

3. लोकाचार परिभाषित करते हुए समझाइये कि किस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में कार्य करते है?

4. लोकाचारों की प्रमुख विशेषताये क्या है? जनरीतियों तथा लोकाचारों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए?

इकाई- 07 **धर्म**

Religion

इकाई की रूपरेखा

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 धर्म का अर्थ एवं परिभाषा
7.3 धर्म की उत्पत्ति एवं सिद्धान्त
7.4 धर्म के प्रमुख तत्व
7.5 सामाजिक नियन्त्रण में धर्म का महत्व
7.6 सारांश
7.7 पारिभाषिक शब्दावली
7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 लघु उत्तरीय प्रश्न
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

मनुष्य जब इस संसार में जन्म लेता है किसी एक समाज या समूह का सदस्य बनता है। वह अपने जीवन में कुछ लक्ष्य निर्धारित करके अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। व्यक्ति व समूह के बीच सम्बन्धों को संतुलित करने के लिए भारतीय समाज में पुरुषार्थ के माध्यम से व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में अपने विभिन्न कर्तव्यों का निर्वहन संतुलित ढंग से करता है। इस संसार में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए जो भी कार्य करता है, उनका अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम ऐसे पुरूषार्थ है जो व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न कर्तव्यों तथा दायित्वों का बोध कराते है और यही तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करके व्यक्ति अन्त में जीवन मरण के चक से मुक्त हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति जो संसार में जन्म लेता है, अपना सम्पूर्ण जीवन इन्ही पुरुषार्थों के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति के लिए करता है। वास्तव में मानव की वास्तविक प्रकृति आध्यात्मिक होती है और जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना होता है। धर्म को एक महत्त्वपूर्ण पुरूषार्थ माना गया है। धर्म ऐसा पुरुषार्थ है जो व्यक्ति को अपने

कर्तव्य पालन तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन सही मार्ग के द्वारा करने को प्रेरित करता है। इस सम्बन्ध में डेविस का कथन है कि 'धर्म मानव-समाज का एक ऐसी सर्वव्यापी, स्थायी और शाश्वत तत्व है जिसे समझे बिना समाज के रूप को बिलकुल भी नही समझा जा सकता ।[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि धर्म सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा अभिकरण है जो व्यक्ति के समक्ष आदर्श मूल्यों को अपने व्यवहार में सम्मिलित करने के लिए बाध्य करते है, कहने का आश्य यह है कि सामाजिक नियन्त्रण में धर्म का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है क्योकि इन दोनों का ही सम्बन्ध सांसारिक जीवन से न होकर पारलौकिक जीवन से होता है। प्रत्येक मनुष्य धार्मिक एवं नैतिक विचारों से बंधा होता है तथा अलौकिक एवं अदृश्य शक्ति पर विश्वास रखते हुए अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन इस प्रकार करता है कि किसी का अहित न हो और वह सही मार्ग का चुनाव कर अपने कर्त्तवयों का पालन करें, जिससे उसे परलोक में मोक्ष की प्राप्ति तो होगी ही साथ ही सांसारिक जीवन भी सुधर जायेगा। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह सामाजिक नियन्त्रण के एक साधन के रूप में व्यक्ति को व्यवहार को नियन्त्रित कर सदभार्ग में चलने को प्रेरित करता है जिससे समाज संगठित और व्यवस्थित बना रहता है।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप समझेगे,

- धर्म का अर्थ एवं परिभाषा।
- धर्म की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्त।
- धर्म के प्रमुख तत्व।
- सामाजिक नियन्त्रण में धर्म का महत्व।

7.2 धर्म का अर्थ एवं परिभाषा

धर्म - धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द "धृ" से हुई है। जिसका अभिप्राय धारण करने से है। आध्यात्मिक एवं अलौकिक शक्तियों के प्रति विश्वास, सामाजिक मूल्यों एवं आदर्श नियमों को अपने व्यवहार में धारण करना तथा जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्त करना धर्म कहलाता है। जैसा कि विदित है कि विकसित मस्तिष्क के कारण इस संसार में मानव अन्य जीव जन्तुओं से श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। आदिम युग से वर्तमान तक मनुष्य के लिए जीवन आज भी रहस्य बना हुआ है। जिज्ञासु प्राणी होने के कारण व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रतिदिन ये विचार आते है कि जीवन क्या है और जीवन में दिन प्रतिदिन होने वाले परिवर्तन कैसे

होते है। अन्त में जब वह इन कारणों को ज्ञात नहीं कर पाता तो उस अदृश्य शक्ति को सम्पूर्ण सृष्टि का जनक तथा शक्तिशाली समझ कर उसकी पूजा तथा आराधना करने लगता है। धीरे-धीरे यही धर्म का रूप धारण कर लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी अलौकिक शक्तियां जो हमारे विश्वासों से संबंधित होती है धर्म कहलाती है। इस सम्बन्ध में जान्सन का मानना है कि "धर्म कम या अधिक मात्रा में अधि प्राकृतिक तत्वों, शक्तियों स्थानों और आत्माओं से संबंधित विश्वासों तथा आचरणों की एक संगठित व्यवस्था है।"[2] सामाजिक नियन्त्रण में यदि धर्म की भूमिका के सन्दर्भ में बात करे तो धर्म एक ओर व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित तो करता ही है साथ ही सम्पूर्ण जीवन निर्वाह के सम्बन्ध में दिशा निर्देश देने का भी कार्य करता है। समाजशास्त्रीय कृति के अनुसार, "धर्म विश्वासों, प्रतिकों, मूल्यों, एवं क्रियाओं की संस्थायीकृत प्रणालियॉ है जो मनुष्य के समूहो को अपने परम जीवन के प्रश्नों का समाधान प्रदान करती है। "[3]

अनेक समाजशास्त्रियों ने धर्म की अलग-अलग परिभाषायें दी है जो निम्नवत है –

1- फेजर के अनुसार, "धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि अथवा आराधना से है जिनके बारे में व्यक्तियों का यह विश्वास हो कि वे प्रकृति और मानव जीवन को नियन्त्रित करती है तथा उनको निर्देश देती है। "[4]

2- क्यूबर के अनुसार, "धर्म सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित व्यवहारों का वह प्रतिमान है जिसका निर्माण (क) पवित्र विश्वासों, (ख) विश्वासों से सम्बन्धित उद्वेगपूर्ण विचारों, तथा (ग) इन्हे व्यक्त करने वाले बाहरी आचरणों से होता है।"[5]

3- मिल्टन यंगर के अनुसार, "धर्म वह व्यवस्थित प्रयास है जिसमें हम जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करते है।"[6]

4- जान्सन के अनुसार, "धर्म कम या अधिक मात्रा अलौकिक शक्तियों, तत्वों तथा आत्मा से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की एक संगठित व्यवस्था है। "[7]

5- एण्डरसन के अनुसार, "धर्म एक नैतिक-आध्यात्मिक संस्था अथवा अनेक विचारों, उद्वेग और विश्वासों का एक संकुल है जो किसी आलौकिक शक्ति के प्रति अभिव्यक्त होता है।"[8]

6- दुर्खीम के अनुसार, "धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित अनेक विश्वासों और व्यवहारों की एक ऐसी संगठित व्यवस्था है जो व्यक्तियों को एक नैतिक समुदाय की भावना में बॉधती है जो उसी प्रकार के विश्वासों और व्यवहारों को अभिव्यक्त करते है।"[9]

7- आगबर्न के अनुसार, "धर्म – अतिमानवीय शक्तियों के प्रति मनोवृत्ति है।"[10]

8- फलैडरट के अनुसार, "धर्म संसार को शासित करने वाली शक्ति के साथ मानवी जीवन का सम्बन्ध है जो उसके साथ मिलकर एक होना चाहता है।"[11]

9- मैकाइवर के अनुसार, "धर्म जैसा कि हम समझते आए है, से केवल मानव के बीच का सम्बन्ध ही नही, एक उच्चतर शक्ति के प्रति मानव का सम्बन्ध भी सूचित होता है।"[12]

10- क्रिस्टोफर डासन के अनुसार, "जब कभी और जहॉ कही मानव को ऐसी बाह्य शक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता है जो उसकी अपनी शक्तियों से अधिक रहस्यपूर्ण व ऊँची हो तो धर्म की उत्पत्ति होती है, और ऐसी शक्तियों के सामने मानव एक प्रकार के भय एवं तुच्छता की भावना से भर जाता है जिस भावना को धार्मिक भावना कहा जाता है। यह भावना उपासना और प्रार्थना की जड़ है।"[13]

11- डब्ल्यू राबर्टसन, "धर्म अनजान शक्तियों का अस्पष्ट भय नही है, न भय की उपज है। अपितु किसी समुदाय के सभी सदस्यों के साथ उस समुदाय का हित चाहने वाली शक्ति के साथ सम्बन्ध है जो उसके कानून एवं आचार-व्यवस्था की रक्षा करती है।"[14]

12- गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत किसी समूह में अलौकिक से सम्बन्धित उद्देश्य पूर्ण विश्वास तथा इन विश्वासों से सम्बन्धित बाह्य व्यवहार भौतिक वस्तुएॅ और प्रतीक सम्मिलित है।"[15]

13- सपीर के अनुसार, "धर्म दैनिक जीवन की परेशानियों एवं उससे परे आध्यात्मिक शान्ति के मार्ग की खोज करने में मनुष्य का सतत् प्रयास है।"[16]

14- लोवी के अनुसार, "धर्म वास्तविकता की भयावह विलक्षण अभिव्यक्तियों के प्रति सहज अनुक्रिया है।"[17]

15- अर्नाल्ड़ ग्रीन के अनुसार, "धर्म ऐसे विश्वासों की प्रतीकात्मक क्रियाओं एवं वस्तुओं की प्रणाली है जो ज्ञान की अपेक्षा विश्वास द्वारा शासित होती है, और जो मनुष्य को अनदेखी एवं नियंत्रण-क्षेत्र से दूर अतिप्राकृतिक शक्ति के साथ सम्बद्ध कर देती है।"[18]

16- मैलीनोव्स्की के अनुसार, "धर्म क्रिया का एक तरीका है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्रीय घटना के साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।"[19]

17- हानिगशीम के अनुसार, "प्रत्येक मनोवृत्ति जो इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से सम्बन्धित है कि अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव एवं महत्वपूर्ण है, धर्म कहलाती है।"[20]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य उन अदृश्य शक्तियों पर विश्वास करता है जिन्हें वह शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ समझता है, कहने का तात्पर्य यह है कि लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने धर्म को एक अलौकिक शक्तियों से जोड़ा है जिस पर मानव पूर्ण रूप विश्वास करके उनकी अराधना या पूजा करता है। साथ ही यह धार्मिक प्रवृत्तिया मनुष्य के विचारों तथा व्यवहारों पर नियंत्रण तो लगाती ही है, साथ ही उन्हें समाज से समायोजित करने के लिए आवश्यक निर्देश भी देती है।

7.3 धर्म की उत्पत्ति एवं सिद्धान्त

धर्म की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों की विचारधाये भिन्न-भिन्न है। धर्म की उत्पत्ति आदिकालीन समाज से मानी जाती है तथा ऐसा माना जाता है कि प्राचीन घटनायें धर्म की उत्पत्ति का प्रमुख कारण रहा है, अनेक विद्वानों तथा समाजशास्त्रियों द्वारा दिये गये कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत है। [21]

1. आत्मवाद - एडवर्ड टायलर ने सर्वप्रथम इस मत का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति प्रेतात्माओं के भय से हुई है। जनजातीय समाज में आत्मवाद के सिंद्धान्त को धर्म की उत्पत्ति का कारण माना है। इन समाजों में ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति का केवल शरीर मरता है जबकि आत्मा अजर-अमर है। कहा जाता है कि व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात भी आत्मा कभी समाप्त नहीं होती है। ये आत्मायें किसी के भी शरीर अथवा पदार्थ में शामिल होकर समाज में मानवीय कियाओं को संचालित एवं निर्देशित करते है। यह व्यक्ति के जीवन को पूर्ण रूप से प्रभावित भी करते है। अतः व्यक्ति के लिए इन आत्माओं को प्रसन्न रखना आवश्यक हो गया, जिसके लिए वह उनकी आराधना करने लगा। आत्मा के अस्तित्व को पहचानने के सन्दर्भ में टायलर ने माना है कि जनजातियों ने अपने अनुभव के आधार पर आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। किसी प्रकार की परछाई सपने देखना तथा व्यक्ति का निर्जीव होकर मृत्यु को प्राप्त करना ये ऐसे उदाहरण है जिसके आधार पर व्यक्ति ने माना कि आत्मा कभी नष्ट नहीं होती है। आदिम समाज में जब व्यक्ति का मष्तिष्क पूर्ण विकसित नहीं था तब प्राकृतिक घटनायें उसके लिए रहस्य बनी हुई थी तब उसे यह विश्वास होने लगा कि कुछ अदृश्य शक्तियां ऐसी है जो उसके आस-पास विद्यमान है और उसके अच्छे और बुरे को उस आत्मा से जोड़कर देखने लगा और आत्मा की शक्ति पर विश्वास करके वह उसकी आराधना तथा पूजा करने लगा। **जी० के० अग्रवाल** ने अपनी पुस्तक मानव समाज में आत्माओं के दो प्रकार के अस्तित्व का स्वीकार किया है। पहला शरीर आत्मा तथा दूसरा स्वतन्त्र आत्मा। आपका मानना है कि शरीर आत्मा स्वतन्त्र नही होती शरीर से एक बार निकल जाने पर यह पुनः लौटकर नहीं आती और फलस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। स्वतन्त्र आत्मा शरीर से बार-बार निकलती है और पुनः शरीर में प्रवेश कर जाती है। यह स्वतन्त्र आत्मा जिस स्थान पर भी विचरण करती है अथवा जिस व्यक्ति से भी सम्पर्क स्थापित करती है उन सारी घटनाओं का धुधला आभास शरीर को भी स्वप्न के रूप में होता रहता है। आदिवासियों का मानना था कि ये अदृश्य आत्माए उनका अनिष्ट भी कर सकती है और विपत्यिों से उनकी रक्षा भी कर सकती हैं। इसी प्रकार टायलर का विश्वास है कि पूर्वजों की आत्माओं से डरना और उनको प्रसन्न रखने के लिए उनकी पूजा व आराधना करना ही धर्म की उत्पत्ति का मौलिक श्रोत है।

2. जीवित सत्तावाद अथवा मानावाद का सिद्धान्त - बिट्रिश मानवशास्त्री मैरेट ने धर्म के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे उससे जीवित सत्तावाद अर्थात मानावाद का सिद्धान्त कहा। मैलेनेशिया की

जनजातियों के अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त का जन्म हुआ। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि मैलेनिशिया की जनजातियां एक अलौकिक एवं अदृश्य शक्तियों पर विश्वास करती है। उनका मानना है कि कुछ ऐसी अदृश्य शक्तिशाली शक्तियां है जो प्रत्येक व्यक्ति तथा पदार्थों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। मैलेनिशिया की जनजातियां इस शक्ति को 'माना' के रूप में जानती है। कुछ जनजातियां इसे मानव के अतिरिक्त वाकुआ अथवा बोगा भी कहते है। प्रमुख समाजशास्त्री लोवी ने इस शक्ति को बिजली के प्रभाव के समान स्वीकार किया है। जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति अथवा एक वस्तु से दूसरी वस्तु में जा और आ सकती है जनजातियां यह विश्वास करती है कि माना की यह शक्ति उन्हें सफलता भी दिला सकती है और इसके दोषपूर्ण होने पर असफलता का कारण भी बन सकती है। अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करने के कारण ही जनजातियों ने इसक पूजा आराधना करना आरम्भ कर दिया। यही पूजा धर्म का मौलिक रूप था। अपनी माना शक्ति को दूसरों के पास जाने से रोकने और अन्य व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को माना शक्ति के सम्भावित दुष्परिणामों से बचाने के लिए ही जनजातियों में अनेक प्रकार के निषेधों और पवित्रता की धारणा का विकास हो गया।

3. प्रकृतिवाद - प्रकृतिवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक मैक्स मूलर है। मैक्स मूलर ने इस संबंध में कहा है कि आदिकालीन मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति के बीच में रहकर व्यतीत होता था। अतः प्राकृतिक शक्तियों ने उसके अन्दर भय तथा श्रद्धा को उत्पन्न किया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति की कई वस्तुएं जहां एक ओर व्यक्ति के लिए उपयोगी होती है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के लिए विनाशकारी भी हो सकती है। जैसे वर्षा कभी लाभ पहुंचाती है तो कभी विनाश भी करती है। प्राकृतिक स्वरूप में परिवर्तन होने से व्यक्ति यह मानने लगा कि संसार में ऐसी कोई अदृश्य शक्तियां है जो मानव से भी अधिक शक्तिशाली है तथा व्यक्ति को परोक्ष रूप से प्रभावित करती रहती है। अतः मैक्स मूलर का विचार है कि आदिमानवों ने भी प्राकृतिक शक्तियों जैसे- सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, जल, पेड़-पौधें के प्रति श्रद्धा तथा आराधना करना प्रारम्भ कर दिया जिससे यह शक्तिया मानव के लिए उपयोगी बन जाये तो उनके दुष्परिणामों से मुक्ति मिल जाये। अतः प्राकृतिक शक्तियों से भय के कारण ही धर्म की उत्पत्ति हुइ तथा इस सिद्धान्त को प्रकृतिवाद सिद्धान्त कहा गया।

4. धर्म का सामाजिक सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम दुर्खिम ने अपनी पुस्तक 'दि एलीमेन्ट्री फार्मस आफ रिलीजियस लाइफ" में किया। दुर्खिम ने धर्म को पूर्णतया एक सामाजिक तथ्य माना है। समाज में यह एक सामुहिक चेतना के रूप में विद्यमान रहता है। दुर्खिम ने सम्पूर्ण सामाजिक तथ्यों को दो भागों में विभाजित किया है। साधारण तथा पवित्र। दुर्खिम के अनुसार सभी धर्मो का संबंध पवित्र समझी जाने वाली वस्तुओं से है। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि सभी पवित्र वस्तुएं धार्मिक या ईश्वरीय होती है। ये पवित्र घटनाएं सामुहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इसी कारण व्यक्ति इनसे प्रभावित भी होते है। दुर्खिम ने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि पवित्र वस्तुओं तथा घटनाओं को व्यक्ति अपवित्र वस्तुओं से दूर रखते है तथा उसकी रक्षा करते है। यही संस्कार तथा आचरण बाद में धार्मिक

क्रियाओं का रूप लेते है। दुर्खिम के अनुसार एक दुनिया (समाज) तो वह है जिससे उसका प्रतिदिन का जीवन नीरस रूप से व्यतीत होता है। लेकिन दूसरी दुनियां वह है जिसमें व्यक्ति उस समय तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि उसका संबंध ऐसी असाधारण शक्तियों से न हो जाये जिससे वह अपने अस्तित्व को ही न भूल जाये। पहली दुनियां साधारण है। और दूसरी दुनियां पवित्र। **दुर्खिम** ने पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं में भेद टोटमवाद के आधार पर स्पष्ट किया है। टोटम कोई भी पशु, पौधा या निर्जिव पदार्थ है जिसे ये जनजातियां उन्हें अपने पूर्वज के रूप में स्वीकार करती हैं तथा उसके प्रति भय, श्रद्धा तथा सम्मान की भावना रखी जाती है। दुर्खिम ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों तथा क्रियाओं की वह सम्पूर्ण व्यवस्था है जो अपने सदस्यों को एक नैतिक समुदाय में बांधती है।

बोध प्रश्न – 01

1. यह कथन किसका है। "धर्म कम या अधिक मात्रा अलौकिक शक्तियों, तत्वों तथा आत्मा से सम्बन्धित विश्वासों और आचरणों की एक संगठित व्यवस्था है" ?
2. सर जेम्स फ्रेजर ने धर्म की क्या परिभाषा दी है?
3. मैलीनास्की के धर्म के बारे में क्या विचार है?

7.4 धर्म के प्रमुख तत्व

धर्म के प्रमुख तत्वों को निम्नांकित आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों पर विश्वास - धर्म का सबसे प्रमुख तत्व व्यक्ति द्वारा अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करना है। व्यक्ति का मानना है कि संसार में कुछ ऐसी शक्तिया भी होती है जो मनुष्य को दिखाई नही देती परन्तु वह इतनी शक्तिशाली होती है कि व्यक्ति की समस्त कियाओं को संचालित करने की भी क्षमता रखती है। व्यक्तियों का यह विश्वास होता है कि हमारे पाप और पुण्य का निर्धारण भी यही शक्तियां करती है जिसके परिणाम स्वरूप हमें अपने जीवन में सफलता और असफलता तथा सुख-दुख की प्राप्ति है। ऐसा माना जाता है कि हमारे कर्मो के आधार पर ही यह शक्तियां हमारे सम्पूर्ण जीवन को अच्छे या बूरे रूप में प्रभावित करती है।

2. धार्मिक स्तरीकरण- किसी भी समाज में धार्मिक कियाओं को करने वाले व्यक्तियों का समाज या समूह में विशेष स्थान होता है। जैसे पुजारी, तांत्रिक ओझा साधु, सन्त एवं महन्त आदि धर्म के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति जो संयम में रहकर अपनी जीवन व्यतीत करते है तथा धर्म का प्रचार प्रसार करते है उन्हें समाज या समूह में विशेष स्थान प्राप्त होता है। समाज में सबसे निम्नतम् स्थान उन व्यक्तियों का होता है जो अपवित्र कार्य करते

है या अपवित्र व्यवसाय करते हैं जैसे अस्पृश्य जातियां आदि। इस प्रकार कार्यात्मक आधार पर प्रत्येक समाज में धर्मगत् संस्तरण सा स्तरीकरण पाया जाता है।

3. धार्मिक क्रिया कलाप - धर्म का एक महत्वपूर्ण तत्व व्यक्ति द्वारा धर्म के प्रति अपने विश्वास को प्रकट करने के लिए किये गये विभिन्न धार्मिक क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति है। जैसे मन्दिर में जाकर पूजा-पाठ करना, व्रत रखना, यज्ञ तथा विशेष कर्मकाण्ड करना आदि।

4. धार्मिक अनुष्ठानों की प्रधानता - अदृश्य शक्तियों को प्रसन्न रखने के लिए प्रत्येक समाज में विभिन्न धार्मिक कियाओं के आधार पर कुछ धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं जो उन शक्तियों के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा को प्रकट करते है। ब्रूम ने इस संबंध में कहा है कि धार्मिक अनुष्ठानों का तात्पर्य ऐसी स्वीकृत कियाओं से है जो स्वयं पवित्र होती है तथा साथ ही किसी पवित्र वस्तु को प्रतीकात्मक रूप से स्पष्ट करती है। "

एण्डरसन एवं पार्कर ने धर्म के चार प्रमुख तत्वों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित है।[22]

1. अति प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास - प्रत्येक धर्म किसी अप्राकृतिक शक्तियों जो मनुष्य एवं उसके पर्यवेक्षणीय संसार से परे है, में विश्वास करता है। ये शक्तिया मानवीय घटनाओं एवं परिस्थियों को प्रभावित करती है। ऐसा माना जाता है कुछ इनको ईश्वर कुछ देवता कहते है तो अन्य इन शक्तियों का कोई नामकरण नहीं करते।

2. अति प्राकृतिक शक्तियों के प्रति मनुष्य का अनुकूलन- चूंकि मनुष्य इन शक्तियों पर आश्रित है अतः उसे स्वयं को इनके प्रति अनुकूलित करना चाहिए। परिणाम स्वरूप प्रत्येक धर्म में कुछ बाह्य कियाओं यथा प्रार्थना, उपासना, कीर्तन, यज्ञ एवं भक्ति के अन्य प्रकारों की व्यवस्था होती है। इन कियाओं को न करना पाप समझा जाता है।

3. कार्यों की पाप में परिभाषा - प्रत्येक धर्म कुछ कार्यों को पाप कहता है। ऐसे कार्य ईश्वर अथवा देवताओं के साथ मनुष्य के मधुर संबंधों को नष्ट करते है एवं उसे उनका कोध सहन करना पड़ता है।

4. मुक्ति की विधि- मनुष्य को किसी ऐसी विधि की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वह अपने दोष को दूर कर ईश्वर के साथ समरसता को पुनः प्राप्त कर सके। इस प्रकार बौद्ध धर्म निमार्ण तथा हिन्दू धर्म-कर्म के बंधन से छुटकारा दिलाने के रूप में मुक्ति की व्यवस्था करता है।

7.5 सामाजिक नियन्त्रण में धर्म का महत्व

जैसा कि हम सब जानते है कि प्रत्येक मानव के जीवन में धर्म का विशेष महत्व होता है। धर्म व्यक्ति के जीवन का एक ऐसा अभिन्न अंग होता है जो न केवल व्यक्ति को भवानात्मक संरक्षण देने में सक्षम होता है वरन जीवन से अनुकूलन स्थापित करने में भी अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करता है। धर्म एक शक्तिशाली साधन के रूप

में न केवल व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित रखता है, बल्कि समाज को व्यवस्थित एवं सन्तुलित रखने में भी सहायक होता है, इस सन्दर्भ में **डॉ. जी. के.. अग्रवाल** का मानना है कि "यद्यपि धर्म में न तो सरकार के समान कोई शक्ति होती है, न ही आर्थिक संस्थाओं के समान यह वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने में सहायक हो सकता है लेकिन फिर भी सामाजिक जीवन में धर्म का महत्व सर्वव्यापी और शाश्वत है।"[23]

इसी प्रकार लेवी का कथन है कि "धर्म जीवन के अन्तिम लक्ष्यों से सम्बन्धित क्रियाओं की सम्पूर्णता का नाम है।"[24]

इस प्रकार धर्म के महत्व को निम्नांकित रूपो में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. धर्म व्यक्ति के व्यवहार तथा विचारों को नियन्त्रित रखने का कार्य करता है। प्रत्येक मनुष्य अलौकिक शक्ति पर विश्वास रखता है, तथा आध्यात्मिक जीवन के प्रति उसका एक दृढ़ विश्वास होता है, यही कारण है कि जीवन में आने वाली प्रत्येक समस्या, सफलता एवं असफलता को वह इन्ही अध्यात्मिक शक्तियों के परिणाम के रूप में गृहण कर लेता है। यही कारण है कि इसी अदृश्य शक्ति प्रसन्न रखने के उद्देश्य से वह कोई भी धर्म विरोधी कार्य नही करता।
2. धर्म समाजिक नियन्त्रण के एक शक्तिशाली साधन या अभिकरण के रूप में कार्य करता है, अर्थात धर्म व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष पर अपना प्रभाव डाल कर उसे नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। स्वयं व्यक्ति भी धर्म या धार्मिक नियमों की अवहेलना नही करता क्योकि उसे ऐसा लगता है कि यदि वह ऐसा करेगा तो वह पाप का भागी होगा और उसे ईश्वर के दण्ड का भागी बनना पड़ेगा और उसे मोक्ष की प्राप्ति नही होगी। अग्रवाल जी के अनुसार, "औद्योगीकरण के वर्तमान युग में कानून और न्यायालय नियन्त्रण केवल औपचारिक साधन बनकर रह गए है जिनकी अवहेलना करना व्यक्तियों की आदत बन गयी है।" इसके विपरीत धर्म के पीछे "ईश्वरीय दण्ड" का भय बना रहता है प्रत्येक स्थान पर इस भावना ने व्यक्तियों को अपराध और दुराचरण करने से रोका है, कि "एक अलौकिक शक्ति प्रत्येक स्थान पर विधमान रहती है।" धार्मिक संस्थाऍ व्यक्ति को पाप के बदले ईश्वरीय दण्ड का भय दिखाकर ही नियन्त्रण की स्थापना नही करती बल्कि व्यक्ति को यह विश्वास भी दिलाती है कि नैतिक कार्यो अथवा पुण्य कर्मो के द्वारा वह समुद्धि प्राप्त कर सकता है। [25]
3. धर्म व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण व विकास में तो सहायक है बल्कि दूसरी ओर वह उसे निराशाजनक परिस्थितियों में भी धैर्य बनाकर जीवन-निर्वाह की प्रेरणा का स्त्रोत बनता है, इस सन्दर्भ में विधाभूषण एवं सचदेव का मानना है कि "संसार में मनुष्य को उपब्धियों एवे आशाओं के मध्य भी निराशाओं का सामना करना पड़ता है। जिन वस्तुओं को प्राप्त करने का वह प्रयास करता है , वे उसे नही मिल पाती, जब मानवी आशाओं का तुषारापात हो जाता है। जब सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते है, तब मनुष्य को स्वभाविकताया सान्त्वना एवं हानिपूर्ति हेतु कोई वस्तु चाहिए जिस धैय एवं समभाव से धार्मिक व्यक्ति

दुर्भाग्य एवं दुखों को सहन करते है। वह धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं की शक्ति की प्रमुख अभिव्यक्ति है।"[26] इस प्रकार डेविस का मानना है कि, "यदि हमारा लक्ष्य किसी विश्वास का प्रचार करना है तो राज- शक्ति उसे असफल बना सकती है। यदि हमारा लक्ष्य अपने देश को संसार का अगुआ बनाना है तो विनाशकारी युद्ध इस पर तुषारापात कर सकता है, यदि हमारा लक्ष्य प्रसिद्धि प्राप्त करना है तो एक छोटी सी असफलता ही हमें निराश कर सकती है। इस प्रकार सभी सांसारिक लक्ष्य तरह-तरह से निराशाओं को जन्म देकर व्यक्तित्व को विघटित कर सकते है, लेकिन कुछ लक्ष्य ऐसे भी है, जिनको प्राप्त करने में असफलता की कोई भी सम्भावना नही होती। ये लक्ष्य "अधिदैविक लक्ष्य" है, तथा ये सामाजिक जीवन में उत्पन्न निराशा को दूर करने का भी प्रयत्न करते है। इस प्रकार पवित्र वस्तुओं की विद्यमानता और पवित्र संस्कारों में भाग लेना व्यक्ति को सुख ही प्रदान नही करता बल्कि उसके विश्वासों को भी दृढ़ बनाता है।[27]

4. व्यक्ति के जीवन में सामाजिक मूल्यों का विशेष महत्व होता है। सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति समाज एवं समूह के अन्य लोगो से व्यवहार करते है, जिससे समाज के सदस्यों के मध्य समरूपता एवं एकता बनी रहे। सामाजिक मूल्यों का उद् गम वास्तव में इसी धर्म के आधार पर होता है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति का सामाजिकरण एवं मानवीकरण करने सहायक होते है और जीवन प्रर्यन्त व्यक्ति इन्ही सामाजिक मूल्यों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करता है। इस सन्दर्भ में ब्लैकमार एवं गिलिन का मानना है कि "समाजीकरण की प्रक्रिया में एवं समाज में नियन्त्रण के साधन-रूप में धर्म के मूल्य पर बल देते हुए इसका शक्तिपूर्ण समर्थन किया है। धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कदाचित अनुशासनात्मक था, धर्म ने ही पाशविक अराजकता को दूर कर आज्ञापालन एवं भक्ति का पाठ पढ़ाया।"[28] इसी प्रकार जॉन्सन का मानना है कि, "धर्म सामान्य मूल्यों का निर्माण करता है, उनके रूप को स्पष्ट करता है। प्रतीको के रूप में उन्हे स्थायी बनता है, और अन्त में उन्हे सम्पूर्ण समाज पर लागू करता है।[29] अग्रवाल जी के अनुसार, "धर्म का एक प्रमुख काय्र लोकाचारों की अनिवार्यता को स्पष्ट करना और उनके प्रभाव को स्थायी बनाना होता है, वास्तव में लोकाचारों को ही "सामाजिक और नैतिक मूल्य" कहा जाता है। धार्मिक नियम और सामाजिक मूल्य एक दूसरे से इतने मिल-जुले है कि इन्हे एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता है।[30] मैरिल के अनुसार, "लोकाचारो करा कार्य सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना होता है। लेकिन लोकाचारों की स्वीकृति धर्म के द्वारा ही दी जाती है।"[31] जान्सन के कथनानुसार, "धर्म सामान्य मूल्यों का निर्माण करता है, उनके रूप को स्पष्ट करता है, प्रतिकों के रूप में उन्हे स्थायी बनाता है, और अन्त में उन्हे सम्पूर्ण समाज पर लागू करता है।"[32]

5. धर्म सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन तो करता है, साथ ही व्यक्ति को निराशा एवं अवसाद से भी बचाने का कार्य करता है, क्योकि धार्मिक कर्मकाण्डो पर

आधारित अनेक धार्मिक नियम व्यक्ति को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करने का कार्य करते है। धर्म एवं धार्मिक पर्व पर आधारित अनेक उत्सव, त्योहार एवं अनुष्ठान इत्यादि व्यक्ति को आध्यात्मिक बल के साथ-साथ मानसिक एवं भावनात्मक सन्तुष्टि प्रदान करने में अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करते है।

7.6 सारांश

उपरोक्त सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते है कि धर्म समाज को नियन्त्रित करने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है, साथ ही सामाजिक व्यवस्था को संगठित रखने में धार्मिक नियम व्यक्ति के विचारों तथा व्यवहार मनोवैज्ञानिक रूप से उचित एवं अनुचित विचारधारा पाप और पुण्य जैसी अवधारणा को जन्म देते है। सरल शब्दों में यदि कहे तो व्यक्ति ईश्वरीय भय के आधीन रहकर अपना प्रत्येक कार्य करता है। अच्छे कर्मो के लिए पुण्य तथा बुरे कर्मो के लिए पाप की भावना निहित होती है। अदृश्य तथा अलौकिक शक्ति के भय से व्यक्ति का व्यवहार संतुलित रहता है और धार्मिक नियमों तथ नैतिक नियमों के अनुसार ही वह व्यवहार करता है तथा समाज को संगठित रखने में भी सहयोग प्रदान करता है साथ ही सामाजिक नियन्त्रण को भी प्रभावपूर्ण बनाये रखता है1 धर्म के महत्व को स्पष्ट करते हुए थॉमस ओडिया ने अपनी पुस्तक "Sociology of Religion" में स्पष्ट किया है कि, "धर्म व्यक्ति का समूह से एकीकरण करता है। अनिश्चितता की स्थिति में उसकी सहायता करता है, निराशा के क्षणों में उसे ढाढस बॅधाता है। सामाजिक लक्ष्यों के प्रति व्यक्ति को जागरूक बनाता है। आत्मबल में वृद्धि करता है और एक-दूसरे के समीप आने की भावना को प्रोत्साहन देता है।"[33] इस प्रकार सांराश रूप में कहा जा सकता है कि धर्म समाज या समूह में व्यक्ति के सन्तुलित व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है जिससे सामाजिक व्यवस्था को संगठित एवं व्यवस्थित रखने में सहायता प्राप्त होती है।

7.7 परिभाषिक शब्दावली

धर्म - धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द "धृ" से हुई है। जिसका अभिप्राय धारण करने से है। आध्यात्मिक एवं अलौकिक शक्तियों के प्रति विश्वास, सामाजिक मूल्यों एवं आदर्श नियमों को अपने व्यवहार में धारण करना तथा जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्त करना धर्म कहलाता है।

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. जान्सन

2. सर जेम्सफ्रेजर के अनुसार, "धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखलाती और नियंत्रित करती है।"

3. मैलीनास्की, " धर्म क्रिया की एक विधि और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्रीय तथ्य के साथ ही एक व्यक्तिगत अनुभव भी है।"

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kingsley Davis, Human Society, Pg No – 509
2. Johnson, Sociology : A Systematic Introduction Pg No – 392
3. Charles Y.Glock and Radney, "Strak, Religion and Society in tension. Pg No – 17
4. James Frazer, the Golden Bough, Pg No – 459
5. J.F Cuber, Sociology : A Synopsis (1968) Pg No. – 511
6. J. Milton Yinger, "Religion Society and the Individual" Pg No – 12
7. H. Johnson, "Sociology A Systematic Introduction", Pg No – 392
8. Andenson And Parkar, Society : An Introduction to Sociology (1966) Pg No – 195
9. Emile Durkhein, the Elementary Forms of the Religious life, Pg No – 47
10. Orburn and Nimkoff, "A Hand Book off Sociology" Pg No – 411
11. Quoted by G. Galloway, "The Principles of Religious Development" Pg No – 50
12. उद्धत – विधाभूषण, सचदेव डी0आर0, "समाजशास्त्र के सिद्धान्त" – 2010, किताब महल एजेन्सीज, इलाहाबाद पे0न0 – 629
13. Dawson ch, "The Age of the gods" Pg No – 22
14. Quoted by S. Koeniol Sociology Pg – 110
15. Gillin and Gillin, "Cultural Sociology" Pg – 459
16. Sapir Edward, Quoted by Lundberg Op. cited Pg – 583
17. उपरोक्त पे0 न0 – 583
18. Green A.W, " Sociology" Pg – 449

19. Malinowski, B. “Magic Science and Religion and other Eassays” Pg – 24
20. उद्धत – विधाभूषण, सचदेव डी0आर0, “समाजशास्त्र के सिद्धान्त” – 2010, किताब महल एजेन्सीज, इलाहाबाद पे0न0 – 630
21. अग्रवाल जी0के0 “मानव समाज” – 2000, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा, पे0न0 – 384 – 389
22. विधाभूषण सचदेव डी0 आर0, “समाजशास्त्र के सिद्धान्त” – 2010, किताब महल इलाहाबाद पे0न0 – 631 – 632
23. अग्रवाल जी0के0 “मानव समाज” – 2000 साहित्य भवन पब्लिशर्स आगरा, पे0न0 – 391 – 392
24. Levy “Modernization and structure of Societies (1966) Vol – II” Pg No – 436
25. अग्रवाल जी0के0 “मानव समाज” – 2000 साहित्य भवन पब्लिशर्स आगरा, पे0न0 – 390
26. विधाभूषण सचदेव डी0 आर0, “समाजशास्त्र के सिद्धान्त” – 2010, किताब महल इलाहाबाद पे0न0 – 638
27. Kingsley Davis, Human Society, Pg No – 532
28. उद्धत – विधाभूषण, सचदेव डी0आर0, “समाजशास्त्र के सिद्धान्त” – 2010, किताब महल एजेन्सीज, इलाहाबाद पे0न0 – 639
29. Johnson, Sociology : A Systematic Introduction Pg No – 459
30. अग्रवाल जी0के0 “मानव समाज” – 2000 साहित्य भवन पब्लिशर्स आगरा, पे0न0 – 392
31. E.F. Merrill : “Society and Culture” Pg No – 263
32. Johnson, Sociology : A Systematic Introduction Pg No – 459
33. Thomas O’ Dea, “Sociology of Religion” (1966) Pg No – 1 – 2

7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1 - डॉ बी० के० अग्रवाल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन - 2000,साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा

2 - विद्याभूषण, डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धान्त - 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना

3– डॉ० जी० के० अग्रवाल, समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा

4 - Gillin and Gillin, Cultural Sociology three

5 - Martindale and monachesi, Elements of sociology

6 – Sumner, Folkways

7. Merrill, “Society and Culture”

8. A.W. Green “Sociology”

9. E. Durkeim, “Elementary form of Religious”

10. Thomas O. Dea, “Sociology of Religion”

7.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म की परिभाषा कीजिए?
2. धर्म के महत्व को स्पष्ट कीजिए ?
3. धर्म की सामाजिक भूमिका का वर्णन किजिए?
4. दुर्खिम ने पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं में क्या भेद किया है? इन्होने धर्म के बारे में क्या कहॉ है?

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. धर्म की परिभाषा कीजिए? धर्म की उत्पत्ति से सम्बन्धित किसी एक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए?
2. धर्म से आप क्या समझते है? धर्म के समाजशास्त्रीय महत्व की विवेचना कीजिए?

इकाई– 08 **नैतिकता**

Morality

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 नैतिकता का अर्थ तथा परिभाषा

8.3 नैतिकता की विशेषतायें

8.4 धर्म तथा नैतिकता में अन्तर

8.5 सामाजिक नियन्त्रण में नैतिकता का महत्व

8.6 सारांश

8.7 पारिभाषिक शब्दावली

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

नैतिकता सही और गलत अथवा उचित और अनुचित के सिद्धान्त पर आधारित है, सरल शब्दों में यदि कहे तो नैतिकता व्यक्ति को सही और गलत व्यवहार के मध्य अन्तर को स्पष्ट करता है। जैसा कि हम सब जानते है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा समाज के बिना उसके अस्तित्व की कल्पना भी नही की जा सकती है। समाज में अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे समाज के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति पर निर्भर होना पड़ता है। अतः समाज व समूह से सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसे समाज के अनुरूप ही अपने व्यवहार का निर्धारण करना पड़ता है। प्रत्येक समाज या समूह अपने समूह के सदस्यों के लिए आचरण के कुछ नियमों का निर्धारण करता है और आशा करता है कि व्यक्ति उन्ही नियमों के अनुरूप व्यवहार करे, ‘‘ जिन नियमों की स्वीकृति ईश्वरी सत्ता के द्वारा न होकर बल्कि केवल समाज द्वारा ‘‘ उचित और अनुचित की भावना के आधार पर होती है। उन नियमों के अनुसार आचरण करना ही नैतिकता है तथा इन नियमों के संग्रह को हम आचार संहिता कहते है।’’[1]

नैतिकता सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा शक्तिशाली अभिकरण या साधन होता है जो व्यक्ति को सतकम् के र्माग पर चलने को प्रेरित करता है। इस प्रकार एक तरह से नैतिकता व्यक्ति के आर्दश, सामाजिक मूल्यों एवं आचरण के नियमों से जुड़े हुए होते है, तथा व्यक्ति के व्यवहार को अनुशासित रखकर समाज कि संगठित एवं संतुलित बनाए रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप द्वारा सम्भव होगा।

1. नैतिकता के अर्थ को समझना।
2. विभिन्न समाजशास्त्रीयों एवं विद्वानों की दी गई परिभाषाओं के आधार पर नैतिकता को समझना।
3. नैतिकता की प्रमुख विशेषताएं क्या है
4. धर्म और नैतिकता में अन्तर
5. सामाजिक नियन्त्रण में नैतिकता का महत्व

8.2 नैतिकता का अर्थ तथा परिभाषा

जैसा की आप सभी जानते है की मुनष्य जिस समूह या समुदाय में रहता है उसका व्यवहार तथा आचरण कुछ नियमों के अधीन रहता है। इन व्यवहारों को करते समय मानव यह सोचता है कि वह जो भी कार्य करता है वह अच्छा कार्य तथा बुरा कार्य होता है। गलत कार्य करने का भय उस पर बुरा प्रभाव डाल सकता है। अतः अच्छे कार्य के अर्न्तगत किए गए प्रत्येक कार्य जो सामाजिक नियमों के अनुरूप हो नैतिकता कहलाता है। नैतिकता के अर्न्तगत किए गए व्यवहारों का सम्बन्ध हमारी आत्मा से होता है, जैसे बड़ो का सम्मान करना, ईमानदारी, दूसरों के प्रति वफादार रहना, सदैव सच बोलना, तथा सद्मार्ग पर चलना कुछ ऐसे नैतिक नियम है जो समाज द्वारा स्वीकृत होते है, और व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी संतुलित रखते है। विधाभूषण एवं सचदेव के अनुसार ''प्रत्येक समूह में समाजिक व्यवहार के कुछ नियम पाये जाते है, जिनका इसके सदस्यों द्वारा पालन किया जाता है, अथवा किया जाना चाहिए। अच्छे अथवा बुरे से सम्बन्धित इन नियमों को जिनका बोध हमारी आत्मा द्वारा कराया जाता है, नैतिकता कहते है। इन नियमों को समुदाय मान्यता प्राप्त करता है, ईमानदारी, वफादारी, सत्यता, नेकी आदि कुछ नैतिक अवधारणाएं है। जब हम कहते है कि अमुक व्यक्ति नैतिक रूप से अच्छा है तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि वह विश्वास - योग्य, ईमानदार, वफादार, एवं नेक है।''[2]

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने नैतिकता की अलग-अलग परिभाषायें दी है जो निम्नलिखित है।

1 - **डेविस** का कथन है कि ''नैतिकता कर्त्तव्य की आन्तरिक भावना अर्थात उचित और अनुचित पर बल देती है।''[3]

2 - **जिस्बर्ट** का विचार है कि, ''नैतिक नियम, नियमों की वह व्यवस्था है जो अच्छे और बुरे से सम्बन्धित है तथा जिसका अनुभव व्यक्ति की अन्त्रात्मा के द्वारा होता है।''[4]

3 - **गुरविच** के अनुसार, ''नैतिकता गत्यात्मक, रचनात्मक और रूढ़िवादी तत्वों का विरोध करने वाली होती है।''[5]

4 - **जी0 के0 अग्रवाल** के अनुसार, ''नैतिकता नियमों और सिद्धान्तों की वह व्यवस्था है जो हमें आत्म-चेतना के द्वारा भलाई और बुराई में भेद करना सिखाती है।''[6]

5 - मैकाइवर के अनुसार, ''हम यह नही कह सकते कि पहले धार्मिक नियम उत्पन्न हुए या नैतिक नियम। सामाजिक तथा नैतिक चिन्तन के तत्वों को धर्म अपने में मिला लेता है, और नैतिक नियम की धार्मिक धारणाओं से बहुत कुछ प्रभावित होता है। नैतिक नियमों के निर्देशों ने धार्मिक विश्वासों के स्थायित्व का पथ प्रशस्त्र किया। धार्मिक नियमों ने अपनी अति-प्राकृतिक सम्पुष्टियों से सहारे एक समूह कि नीति को स्थायी बना दिया है।''[7]

8.3 नैतिकता की विशेषताएं

नैतिकताओं कि विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है-

1. नैतिकता ऐसे नियम है जो समाज द्वारा स्वीकृत होते है।
2. नैतिकता चारित्रिक गुणों को विकसित करता है, जैसे सत्य के मार्ग पर चलना तथा ईमानदारी के साथ जीवन व्यतीत करना।
3. समूह तथा समाज के स्वरूप के आधार पर नैतिक नियम बनते तथा बिगड़ते रहते है, कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिकता मे परिवर्तनशीलता का गुण पाया जाता है।
4. नैतिकता एक ऐसा आन्तरिक तथ्य है जिस पर भारी नियमों का प्रभाव नही पड़ता क्योकि व्यक्ति पाप और पुण्य को ध्यान में रखकर ही नैतिक नियमों का पालन करता है और नैतिक नियम उसके आन्तरिक विचार होते है।
5. नैतिकता व्यक्ति के विचार, विवेक एवं तर्क पर आधारित होते है। क्योकि व्यक्ति सदैव उन्ही नियमों का पालन करता है जिससे किसी दूसरे व्यक्ति को अहित न हो।

डॉ0 जी0के0 अग्रवाल ने नैतिकता की धारणाओं को प्रमुख विशेषताओं के आधार पर स्पष्ट किया है, जो निम्नांकित है।"[8]

1. नैतिकता का तात्पर्य चारित्रिक नियमों की उस व्यवस्था से है जिन्हे किसी विशेष परिस्थिति में उचित समझा जाता है।

2. नैतिकता की धारणा का सम्बन्ध चारित्रिक गुणों से है। किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास से नही।

3. नैतिकता की स्वीकृति स्वयं समाज के द्वारा दी जाती है, इस अर्थ में नैतिकता पूर्णतया एक सामाजिक तथ्य है।

4. नैतिकता में तर्क और विवेक का महत्व अधिक होता है अर्थात नैतिक नियमों कि उपयोगिता को तर्क के द्वारा किसी भी समय समझा जा सकता है।

5. नैतिकता परिवर्तनशील होती है, क्योकि इसका सम्बन्ध एक समय विशेष की आवश्यकताओं और परिस्थितियों से होता है। इसके पश्चात भी नैतिकता परिवर्तन कि अनुमति तभी देता है जब ऐसा करना बहुत आवश्यक ही हो।

6. नैतिकता का रूढ़िवादिता से कोई सम्बन्ध नही होता, रूढ़िवादिता प्रत्येक स्थिति में व्यवहार के परम्परागत तरीकों को ही मान्यता देती है। जबकि नैतिकता इसमें कुछ परिवर्तन कर लेने की भी स्वीकृति देती है।

7. नैतिकता का पालन व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है। इस अर्थ में नैतिकता एक आन्तरिक तथ्य है, कोई बाह्य कारक नही।

बोध प्रश्न - 01

1. ''नैतिकता कर्त्तव्य की आन्तरिक भावना अर्थात उचित और अनुचित पर बल देती है'' यह कथन किसका है?

2. ''नैतिक नियम, नियमों कि वह व्यवस्था है जो अच्छे और बुरे से सम्बन्ध है, तथा जिसका अनुभव व्यक्ति को अन्तरात्मा के द्वारा होता है'' यह किसका विचार है?

8.4 धर्म तथा नैतिकता में अन्तर

ऐसा माना जाता है कि धर्म और नैतिकता का आपस में एक घनिष्ट सम्बन्धित होता है। परन्तु वास्तविक रूप में ये दोनो अवधारणाएं एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। धर्म और नैतिकता में अन्तर को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है।

1. धर्म एक ऐसी अलौकिक शक्तियों का पुंज है जिसकी अवहेलना करने का साहस व्यक्ति नही कर सकता। क्योकि ऐसा करने पर व्यक्ति समझता है कि ईश्वर उसे दण्ड देगा, जबकि नैतिकता का पालन व्यक्ति समाज में अपने को समायोजित करने के लिए करता है और नैतिक नियमों की अवहेलना से उसे सामाजिक बहिष्कार का भय बना रहता है।

2. धार्मिक नियम कभी भी परिवर्तनशील नही होते, समाज द्वारा एक बार कोई भी धार्मिक नियम स्वीकृत होने के पश्चात उनमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन नही किया जा सकता जबकि नैतिक नियम समाज तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है।

3. धर्म मुख्यतया अतार्किक होता है जबकि नैतिकता व्यक्ति के विवेक एवं तर्क पर आधारित होता है।

4. धार्मिक नियम अपरिवर्तनशील होने के कारण कभी-कभी समाज के विकास एवं प्रगति में बाधक होते है, जबकि नैतिकता में परिवर्तनशीलता का गुंण होने के कारण वह सदैव समाज हित में कार्य करता है।

5. **मैकाइवर और पेज** ने धर्म और नैतिकता के मध्य होने वाले संघर्ष को तीन कारणों के आधार पर स्पष्ट किया है।[9]

1- सर्वप्रथम धर्म की प्रकृति रूढ़िवादी है। इसमें बदलती हुई परिस्थितियों से अनुकूलन करने का गुण नही होता। यह अपने को सर्वाधिकार-सम्पन्न और सर्वोच्च सत्ता मानता है। धर्म का यह स्वरूप समय के अनुसार परिवर्तित होने वाले नये नैतिक विचारों को स्वीकार नहीं करता, जबकि बहुत से व्यक्ति व्यवहार के नये तरकों को उचित समझने लगते है। यह स्थिति धर्म और नैतिकता के बीच संघर्ष उत्पन्न कर देती है। उदाहरण के लिए, हमारे समाज में धर्म अपने रूढ़िवादी स्वभाव के कारण विवाह-विच्छेद, सन्तति-निग्रह के साधनों, यौन शिक्षा तथा विधवा पुनर्विवाह का विरोध करता है, जबकि अधिकांश व्यक्ति इसका समर्थन करते हैं क्योकि वे ऐसा करना आज के युग की नैतिकता मानते है।[10]

2- धर्म अतार्किक है और नैतिकता तार्किक। सभ्यता में प्रगति होने के साथ ही व्यक्त्यिों का जीवन तार्किक होता जा रहा है और इसलिए वे धर्म की अपेक्षा नैतिक नियमों को प्रधानता देने लगे हैं। इन दोनों के बीच संघर्ष तब होता है जब धर्म अपने प्रभाव को सिद्ध करने के लिए कर्मकाण्डों को और भी जटिल बना देता है लेकिन नैतिकता के कारण धर्म के प्रभाव में वृद्धि न होकर इसके प्रति व्यक्तियों का विरोध बढ़ता जाता है। इस स्थिति में नैतिक नियम व्यक्तियों के व्यवहारों को और अधिक प्रभावित करने लगते है।

4- धर्म के प्रभाव का क्षेत्र भी नैतिकता की अपेक्षा सीमित होता है। साधारणतया प्रत्येक आदिम समूह और छोटे-छोटे समुदायों में धर्म का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है, लेकिन नैतिकता सम्बन्धी नियम सभी समाजों में लगभग समान प्रकृति के होते है। दूसरी बात यह है कि अक्सर एक समूह हारे हुए समूह पर अपना धर्म तो लाद देता है लेकिन परम्परागत नैतिकता को नहीं बदल पाता। इससे भी नये धार्मिक विश्वासों और पुराने नैतिक मूल्यों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है

8.5 सामाजिक नियंत्रण में नैतिकता का महत्व

इस प्रकार उपरोक्त सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म की तरह नैतिकता भी सामाजिक नियंत्रण का एक मुख्य अभिकरण है । ये एक ओर जहॉ समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने का कार्य करते

है वही दूसरी ओर व्यक्ति के व्यवहार में अंकुश लगाकर समाज को एक दृढ़ता भी प्रदान करते है, सामाजिक नियंत्रण में नैतिकता के महत्व को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. नैतिकता व्यक्ति के समाजिकरण एवं मानविकरण में सहयोग प्रदान करती है। नैतिकता व्यक्ति को सही एवं गलत के मध्य भेद को स्पष्ट कर सही एवं सन्तुलित व्यवहार को बनाये रखने की प्रेरणा देती है।

2. समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाने में नैतिकता का विशेष महत्व होता है क्योकि यह व्यक्ति को समाजिक नियमों एवं मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करने को प्रेरित करता है।

3. नैतिकता सम्पूर्ण समाज की एकरूपता देने का प्रयास करता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति नियमों के अनुसार की दूसरे व्यक्तियों के साथ व्यवहार करता है तथा ऐसे ही व्यवहार की आशा वह स्वयं के लिए करता है।

4. नैतिकता समाज में निवासरत प्रत्येक व्यक्ति को मार्यादित व्यवहार करने को प्रेरित करता है जिससे व्यक्ति के उन विचारों एवं आवेगों को नियन्त्रित किया जा सके जो समाज में संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न करने का कार्य करते है।

बोध प्रश्न - 02 (सत्य/असत्य)

1. नैतिक नियम समाज द्वारा स्वीकृत नही होते।
2. नैतिकता व्यक्ति के विचार, विवेक एवं तर्क पर आधारित होते है।

8.6 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है। सामाजिक नियन्त्रण में नैतिकता का विशेष महत्व होता है। नैतिकता समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाए रखने के साथ-साथ समाज में एकता को भी स्थापित करता है। जिससे व्यक्ति समाज में शांति पूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके। इस सन्दर्भ में समाशास्त्री विधाभूषण एवं सचदेव का मानना है कि ‘‘नैतिकता का संबन्ध मानव प्रकृति की अर्न्तक्रिया से है। नैतिक नियमों के बिना समाज समाप्त हो जायेगा, नैतिक नियम ही व्यक्ति के आचरण को नियन्त्रित करते है, ताकि वह समूह द्वारा उचित समझे गये कार्यो को करता रहे। अतः सारांश रूप में कहा जा सकता है कि नैतिकता व्यक्ति को एक संतुलित एवं मर्यादित व्यवहार करने को प्रेरित करता है जिससे समाज व्यवस्थित, नियन्त्रित एवं सन्तुलित रह सके।

8.7 पारिभाषिक शब्दावली

नैतिकता - नैतिकता व्यवहार के ऐसे नियमों को कहा जाता है जो व्यक्ति को सही और गलत के मध्य अन्तर को स्पष्ट करता है। नैतिकता व्यक्ति को सामाजिक नियंमों एवं मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करने में सहायता प्रदान करता है।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01 के उत्तर

1. डेविस
2. जिस्बर्ट

बोध प्रश्न 02 के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल जी0के0, ‘‘सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन’’- 2000 साहित्य भवन आगरा पे0न0 - 160
2. विधाभूषण, सचदेव डी0आर0 ‘‘समाजशास्त्र के सिद्धान्त’’ - 2010 किताब महल इलाहाबा पे0न0- 648
3. Kingsley Davis “Human Society” Pg N0 – 73
4. P. Gisbert, “Fundamentalsof Sociology” Pg No – 183
5. George Gurvitch, “The Sociology of Law” Pg No – 55
6. अग्रवाल जी0के0, ‘‘सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन’’- 2000 साहित्य भवन आगरा पे0न0 - 161
7. उद्धत विधाभूषण, सचदेव, ‘‘समाजशास्त्र के सिद्धान्त’’- 2010 किताब महल इलहाबाद पे0न0- 649
8. अग्रवाल जी0के0, ‘‘सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन’’- 2000 साहित्य भवन आगरा पे0न0, 161-162
9. Maclver & Page, “Society” Pg No – 172 -174
10. अग्रवाल जी0के0, ‘‘सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन’’- 2000 साहित्य भवन आगरा पे0न0, 163
11. विधाभूषण, सचदेव डी0आर0 ‘‘समाजशास्त्र के सिद्धान्त’’ - 2010 किताब महल इलाहाबा पे0न0- 653

8.10 सहायक उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. डॉ बी० के० अग्रवाल सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन. 2000 साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा
2. विद्याभूषण डी० आर० सचदेव समाजशास्त्र के सिद्धान्त. 2010 किताब महल एजेन्सीज अशोक राजपथ पटना
3. डॉ० जी० के० अग्रवाल समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा

4. Gillin and Gillin, Cultural Sociology three
5. Martindale and monachesi, Elements of sociology
6. Sumner, Folkways
7. Merrill, “Society and Culture”
8. A.W. Green “Sociology”
9. E. Durkeim, “Elementary form of Religious”
10. Thomas O. Dea, “Sociology of Religion”

8.11 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नैतिकता को परिभाषित किजिए?
2. वर्तमान समाज में नैतिकता के महत्व को स्पष्ट किजिए?
3. नैतिकता की विशेषताएं समझाइये?
4. धर्म और नैतिकता में अन्तर स्पष्ट किजिए?

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नैतिकता किसे कहते है तथा नैतिकता की विशेषतायें समझाइये?
2. सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में धर्म एवं नैतिकता के महत्व को स्पष्ट किजिए?
3. नैतिकता को स्पष्ट करते हुए धर्म एवं नैतिकता के मध्य अन्तर स्पष्ट किजिए?

इकाई-09 राज्य
State

इकाई की रुपरेखा

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 राज्य
9.3 राज्य की परिभाषा
9.4 राज्य की विशेषताएँ
9.5 राज्य की उत्पत्ति
9.6 राज्य के अधिकार
9.7 राज्य के कार्य
9.7.1 राज्य के अनिवार्य कार्य
9.7.2 राज्य के ऐच्छिक कार्य
9.8 सारांश
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक संगठित और औपचारिक तंत्र या व्यवस्था है। राज्य मानव व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए कानून, पुलिस, कारावास, न्यायपालिका, सरकार, सेना और जासूसी विभाग की व्यवस्था करके करता है। यह उनकी शक्ति को नष्ट कर देता है जो इसका सम्मान नहीं करते। यह अपने सदस्यों के कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है और रोजगार के माध्यम से इनके जीवनयापन की व्यवस्था करता है। आज के मिश्रित समाज में, राज्य की सामाजिक नियन्त्रण बनाए रखने की भूमिका सर्वोत्तम है। लोग राज्य के आदेश का पालन करते है क्योंकि वे यह जाने है कि यह उनके हित में है और यदि वे उनका पालन नहीं करेंगे तो वे उस राज्य के कानून के अनुसार प्रताड़ित और दण्डित किए जाएंगे। इस वजह से लोग राज्य के आदेश का सम्मान करते जो सामाजिक नियंत्रण बनाए रखने में सहायक है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के पश्चात् आपके द्वारा यह समझना संभव होगा-

- राज्य की अवधारणा एवं परिभाषा का जान पाऐगें।

- राज्य की विशेषताएँ और राज्य की उत्पत्ति को समझ सकेगें।
- राज्य के अधिकार एवं राज्य के (अनिवार्य व ऐच्छिक) कार्य का इस इकाई में अध्ययन कर पाएगें।

9.2 राज्य

राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक बाध्यतामूलक अभिकरण तथा जन सामान्य के मौलिक हितों का संरक्षक है। मानवीय जीवन की सभी प्रक्रियाओं और व्यवहारों में राज्य का हस्तक्षेत्र तथा सहयोग है। मानव जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं हैं जहाँ व्यक्ति अपने आप को राज्य की शासन-प्रणाली से मुक्त पाता हो। बर्क के शब्दों में ''राज्य अस्थायी तथा नाश-वान प्रकृति वाले अपरिष्कृत पशु-जीवन की वस्तुओं में साझेदार नहीं है, बल्कि वह समस्त विज्ञान में, सम्पूर्ण कला में, प्रत्येक गुण में और समस्त पूर्णता में एक साझेदार है।'' किसी भी जन-प्रदेश में राज्य की स्थापना वहाँ की परम्परा, व्यवहार रीति-रिवाज तथा धार्मिक मान्यताओं के अनकूल होती है तथा इनके द्वारा निर्धारित आदर्श मानवीय लक्ष्यों की पूति करना राज्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। राज्य के पास न्याय एवं दण्ड के शक्तिशाली साधन होते है जिनके माध्यम से यह समाज को नियंत्रित करता है। राज्य का अस्तित्व विधान और सरकार की अपेक्षाकृत कहीं अधिक स्थायी होता है, क्योंकि सरकारें आती हैं और चली जाती है परन्तु सामाजिक मूल्यों पर संगठित राज्य का स्वरूप बहुत कुछ अपरिवर्तित रहता है। राज्य के इस स्थायी स्वरूप के उपरान्त भी इसकी कार्य-प्रणाली इतनी लचीली एवं तीव्र है कि आवश्यकता पड़ने पर अपने विधानों के द्वारा सम्पूर्ण सामाजिक प्रगति को अल्पतम समय में किसी भी वांछित दिशा की और उन्मुख किया जा सकता है।

प्रत्येक नागरिक के लिए राज्य की सदस्यता अनिवार्य तथा उसकी आचार-संहिता बाध्य रूप से स्वीकार्य होती है। राज्य एक अनन्त तथा स्थायी संस्था है जिसका सन्वन्ध जनता के किन्हीं विशेष हितों से न होकर जन-मानस के समस्त सामान्य हितों से होता है। मैकाइवर के विचार में, ''राज्य एक व्यवस्था स्थापित करने वाला संगठन है। इसका अभिप्राय केवल व्यवस्था के ही हेतु व्यवस्था की स्थापना नहीं है परन्तु जीवन की उन समस्त सम्भाव्यताओं को लक्ष्य मानना है जिनके लिए सुव्यवस्था का आधार आवश्यक है।

वाह्य संस्कृति के प्रभाव, विज्ञान और तकनीक की प्रगति और जीवन के प्रति परिवर्तित मानवीय दृष्टिकोण ने, एक ओर तो परम्परागत जीवन शैली पर आघात किया है और दूसरी ओर उन जड़ रूढ़ियों का बहिष्कार भी किया है जिनमें जकड़े होने के कारण मानव का विकास असम्भव है। इस बहुमुखी परिवर्तन के कारण सामाजिक विकास के साथ-साथ सामाजिक संघर्ष एवं अनैतिकता के लिए भी पर्याप्त पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ। ये सब बृहत् समाज की समस्याएँ हैं जिनके निदान और नियंत्रण के लिए बृहत् संस्था की आवश्यकता होती है। ऐसी संस्था केवल राज्य ही है जो अपने सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र की समस्त प्रक्रियाओं पर अपना सार्वभौमिक नियंत्रण एवं संचालन कर सकने में समर्थ है। इतना ही नहीं बल्कि राज्य अपने क्षेत्र से बाहर के प्रभावकारी तत्वों का भी आत्मीकरण अथवा बहिष्कार अपनी अन्त-प्रदेशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के अनुसार करता है। आवश्यकता

पड़ने पर राज्य अपने उद्देश्यों को पूति के हेतु शक्ति एवं समन्वय का सम्बल लेता है। यह अपने समस्त जन-मानस के जीवन का अभिभावक तथा प्रहरी है।

राजनैतिक, प्राकृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, धार्मिक, कलात्मक आदि सभी क्षेत्रों के संचालन एवं संरक्षण का उत्तरदायित्व राज्य पर होता है। व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक की सभी विशिष्ठ तया सामान्य शाखाओं और उपशाखाओ का गहनतम जाल राज्य की संस्था में पनपता रहता है। सामाजिक नियंत्रण करने के लिए राज्य के पास अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और परोक्ष तथा बाध्यतामूलक और स्वेच्छामूलक सावन होते हैं। सहयोग, प्रोत्साहन विधान, दण्ड, पुरस्कार, आदि अनेक साधनों से राज्य, समाज का एक आदर्श स्वरूप निर्मित करके उसे सुनियोजित शैली से संचालित एवं नियंत्रित करता है।

9.3 राज्य की परिभाषा

समाजवेत्ताओं ने राज्य को समाजशात्रीय दृष्टिकोण प्रदान करते हुए राज्य की निम्नलिखित परिभाषायें दी हैं-

अरस्तू के मतानुसार - ''राज्य एक पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन का लक्ष्य लिए हुए परिवारों और गांवों का एक संघ है।'' अरस्तू की यह परिभाषा नगर राल्यों पर ही लागू होती है। आधुनिक राज्य गांवों तक ही सीमित नहीं होते। आधुनिक विचारकों ने राज्य के चार प्रमुख लक्षण बतलाये हैं - (1) जनता, (2) निश्चित भूखण्ड, (3) शासन या सरकार और (4) सर्वोच्च प्रभुसत्ता।

बर्गेस का मत है कि ''राज्य एक संगठित इकाई के रूप में मानव जाति का एक विशिष्ठ भाग है।''

हालैण्ड का कथन है कि ''राज्य ऐसे मनुष्यों का एक बहुसंख्यक समु-दाय है जो साधारणतया एक निश्चित प्रदेश में निवास करते हों तथा जिसमें किसी एक श्रेणी अथवा बहुसंख्यकों को इच्छा उनको शक्ति के कारण उसके विरोधियों पर प्राधान्य रहती है।''

ब्लंश्ली ने पारिभाषित किया है कि ''राज्य एक निश्चित भूभाग का राजनैतिक दृष्टि से संगठित जनसमूह है।''

वुडरो विल्सन के अनुसार ''एक निश्चित प्रदेश के भीतर कानून के लिए संगठित जनता को राज्य कहते है।''

गार्नर के अनुसार, ''राज्य व्यक्तियों का एक समुदाय है, जिसका एक निश्चित भूभाग पर स्थायी अधिकार है, जो वाह्य नियंत्रण से पूर्ण या आंशिक रूप से युक्त है, जिसकी एक संगठित सरकार है और जिसके प्रति व्यक्तियों में आज्ञापालन की भावना होती है।''

रासेक के अनुसार ''सम्पूर्ण समाज से सम्बद्ध राज्य, राजनैतिक उद्देश्यों के हेतु संगठित, किसी समाज में मनुष्यों का एक साहचर्य है।''

9.4 राज्य की विशेषताएॅं

राज्य के स्वरूप को संगठित होने के लिए कुछ तत्वों का होना अनिवार्य है। राज्य, मानवीय समुदाय के कुछ समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा उसे बाह्य नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संरिचत होता है। राज्य के सदस्यों

के लिए एक स्थायी आवास की सुरक्षित व्यवस्था होती है तथा एक ऐसी सत्ता की आवश्यकता होती है जो उस क्षेत्र की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति करे एवं उसका पालन कर सके। इन उद्देश्यों के आधार पर राज्य की निम्नलिखित विशेषताओं अथवा उसके तत्वों को प्रकाशित किया जा सकता है-

(1) जनसंख्या- राज्य के लिये एक जनसंख्या का होना सबसे अधिक आवश्यक है। परन्तु किसी राज्य में राज्य कहलाने के लिये कितनी जनसंख्या होनी चाहिये इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अरस्तू ने एक लाख जनसंख्या को राज्य के लिये अत्यधिक माना है क्योंकि इससे अधिक नागरिकों का राज्य सत्ता में अधिकार कम हो जाता है। आधुनिक काल में यातायात और संदेशवहन के अभूतपूर्व विकास से यूनानी विचारकों का यह मत निरर्थक हो गया है क्योंकि आधुनिक राज्यों में करोड़ों व्यक्ति भी राज्य शासन में हाथ बंटा सकते हैं। यह ठीक है कि किसी राज्य में जितने कम व्यक्ति होंगे अथवा राज्य जितना छोटा होगा उसके सदस्य उसमें उतनी ही अच्छी तरह भाग ले सकेंगे। राज्य के बढ़ते जाने पर उसका सच्चा जनतन्त्रीय स्वरूप बना नहीं रह सकता परन्तु फिर भी आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के कारण राज्यों में करोड़ों की जनसंख्या भी भली प्रकार प्रशासित की जा सकती है। राज्य की जनसंख्या में दो तरह के लोग शामिल हैं-नागरिक और प्रजाजन, नागरिक वे हैं जिन्हें वोट देने और निर्वाचित होने का अधिकार है। दूसरी ओर प्रजाजन में वे विदेशी आते हैं जिनको नागरिकता के अधिकार नहीं मिले हुये हैं।

(2) भूमि- राज्य का दूसरा आवश्यक तत्व भूमि है। यहाँ पर भूमि में नदियाँ, झीलें, तालाब, नहरें और समुद्र आदि वे सभी प्राकृतिक तत्व शामिल हैं जो कि राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय नियम के अनुसार राज्य की सीमा के निकट बारह मील तक समुद्र राज्य की भूमि में शामिल माना जाता है और उसमें दूसरे राज्यों के जहाज राज्य की अनुमति के बिना प्रवेश नहीं कर सकते। राज्य में भूमि का विस्तार कितना होना चाहिये इसके विषय में कुछ निश्चित संख्या नहीं रखी जा सकती। आज संसार में छोटे-बड़े सभी तरह के राज्य हैं। ऐसे राज्य भी हैं जिनका भूमि क्षेत्र हमारे देश के एक जिले से बड़ा नहीं है और ऐसे राज्य भी है जिनको देश न कहकर छोटे-मोटे उप-महाद्वीप ही कहना अधिक उचित मालूम पड़ता है।

(3) प्रभुता अथवा प्रभुत्व शक्ति - किसी देश में राज्य को अन्य संगठनों से अलग करने वाला उसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण प्रभुता अथवा प्रभुत्व शक्ति है। जनसमूह और भूमि तो अन्य संगठनों के पास भी हो सकती है परन्तु सर्वोच्च प्रभुसत्ता राज्य की ही होती है। इसी कारण राज्य के बनाये हुए कानून उसकी सीमा के अन्तर्गत हर एक समूह को मानने पड़ते हैं। राज्य अपने कानूनों को और अपनी आज्ञाओं को बलपूर्वक मनवाता है और उनको भंग करने वालों को दण्ड तक देने का अधिकार रखता है। देश के बाहरी मामलों में भी राज्य के अधिकार बड़े व्यापक होते हैं। यद्यपि आधुनिक राज्य कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से भी बाध्य होता है परन्तु फिर भी किसी भी राज्य से सन्धि, व्यापारिक समझौता और युद्ध तक करने में उसको बहुत कुछ स्वतन्त्रता होती है।

(4) शासन अथवा सरकार- राज्य का चैथा मूल तत्व अथवा आवश्यक लक्षण शासन अथवा सरकार है। हर एक राज्य में एक शासन पद्धति होती है जिससे राज्य का संगठन चलता है। सीली के अनुसार यह वह व्यवस्था है जिसके द्वारा राज्य की शक्तियाँ प्रकट की जाती है। यह शासन अथवा सरकार बदलती रहती है परन्तु इसके साथ राज्य नहीं बदलते। फिर भी हर समय हर एक राज्य में किसी न किसी प्रकार की शासन पद्धति का होना आवश्यक है।

9.5 राज्य की उत्पत्ति

राज्य की उत्पत्ति कब और किस तरह हुई इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना बड़ा कठिन है क्योंकि यह एक प्रागैतिहासिक अथवा इतिहास-पूर्व घटना है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद में विभिन्न प्रकार के राज्यों का उल्लेख से स्पष्ट है कि वेदों के पहले राज्य की संस्था का काफी विकास हो चुका था। अतः राज्य की उत्पत्ति के विकास में कल्पना के आधार पर ही कुछ कहा जा सकता है। इस कारण राज्य की उत्पत्ति के विषय में विचारकों में बड़ा मतभेद दिखाई पड़ता है। इस सम्बन्ध में मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) शक्ति सिद्धान्त- कुछ विचारकों के अनुसार राज्य की उत्पत्ति शक्ति से हुई। इस मत के अनुसार राज्य के विकास का युद्ध कौशल से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्य की उत्पत्ति में शक्ति का बड़ा हाथ है और अनेक आधुनिक राज्य युद्ध से विकसित हुए हैं परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य की उत्पत्ति शक्ति के कारण हुई।

(2) दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त- भारत तथा कुछ अन्य देशों में प्राचीन विचारकों ने राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना था। जापानी लोग अपने राजा को सूर्य देव का पुत्र मानते हैं। जेम्स प्रथम ने राजा की आज्ञा को ईश्वरीय घोषित किया था। दैवी सिद्धान्त के निम्नलिखित चार मूल तत्व हैं- (1) राजा को राज्य सत्ता ईश्वर ने दी है। (2) राज्य सत्ता वंशानुगत है। (3) राजा केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। (4) राजा का विरोध करना पाप है। राज्य की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त आजकल कोई भी विचारक नहीं मानता। गिलक्राइस्ट के अनुसार इस सिद्धान्त की सफलता के तीन मुख्य कारण हैं (1) इकरार के सिद्धान्त की स्थापना, (2) ईसाई धर्म और राज्य का अलग होना, (3) जनतन्त्रवाद द्वारा स्वेच्छाचारी शासन का विरोध तथा खण्डन।

(3) सामाजिक अनुबन्ध अथवा इकरार का सिद्धान्त- कुछ विचारकों के अनुसार राज्य की स्थापना प्राचीन काल में जनता और राजा के बीच एक इकरार के द्वारा हुई। इस सिद्धान्त के सबसे प्रसिद्ध समर्थक हैं हाब्स, लाक और रूसो। इन्होंने भिन्न-भिन्न रूप से इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। सामाजिक अनुबन्ध का सिद्धान्त ऐतिहासिक और तार्किक किसी भी दृष्टिकोण से ठीक नहीं बैठता। अतः उसको राज्य की उत्पत्ति की समुचित व्याख्या नहीं माना जा सकता।

(4) पैतृक तथा मातृक सिद्धांत- कुछ विचारकों के अनुसार पितृ प्रधान और मातृ-प्रधान परिवारों के क्रमशः विकास से ही राज्य की उत्पत्ति हुई। राज्य की उत्पत्ति की यह व्याख्या अत्यधिक सरल है। इससे आधुनिक राज्य की जटिल व्यवस्था को नहीं समझाया जा सकता।

(5) विकास सिद्धान्त- कुछ विचारकों के अनुसार राज्य की उत्पत्ति मानव समाज के क्रमशः विकास में एक अवस्था है। राज्य इतिहास का फल है, इसका यह अभिप्राय है कि वह मनुष्य समाज के क्रमशः और सतत होने

वाले विकास का फल है। राज्य के विकास के सिद्धान्त में इतना सत्य जरूर है कि राज्य क्रमशः विकास का फल है परन्तु फिर इस क्रमशः विकास में राज्य किन-किन अवस्थाओं से गुजरा है इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

(6) सावयव सिद्धान्त- कुछ विचारकों के अनुसार राज्य में सावयव एकता है अर्थात् व्यक्ति और राज्य का वही सम्बन्ध है जो कि शरीर के विभिन्न अंगों का शरीर से है। राज्य का सावयव सिद्धान्त यह तो बतलाता है कि व्यक्ति और राज्य का सम्बन्ध घनिष्ठ है परन्तु यह कहना अतिश्योक्ति है कि यह सम्बन्ध वही है जो कि शरीर और उसके अंगों में है।

राज्य की उत्पत्ति के उपरोक्त सिद्धान्तों के अलावा कुछ अन्य सिद्धान्त भी उपस्थित किये गये हैं। उदाहरण के लिये कार्ल माक्र्स ने राज्य को आर्थिक प्रक्रिया का परिणाम माना है। परन्तु ये सभी मत कुछ न कुछ सत्य की अभिव्यक्ति करते हुए भी एकांगी है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है। राज्य के कुछ मूल तत्व हैं। इन मूल तत्वों के एकत्रित होने पर राज्य बना। इसमें रक्त सम्बन्ध, धर्म और राजनैतिक चेतना का महत्वपूर्ण हाथ था। इसमें शक्ति, दैवी स्वीकृति, सामाजिक समझौता और समाज के क्रमशः विकास का योगदान था। परन्तु इन सब तत्वों ने मिलकर किस तरह राज्य की उत्पति की इस विषय में उदार दृष्टिकोण रखना ही अधिक अच्छा होगा।

9.6 राज्य के अधिकार

राज्य के समाजशास्त्रीय विवेचन में उसके अधिकारों का विवेचन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। प्रश्न यह है कि राज्य को व्यक्ति पर नियन्त्रण करने का कहाँ तक अधिकार है। इस विषय में विचारकों ने भिन्न-भिन्न मत उपस्थित किये हैं।

राज्य का सर्वाधिकारवादी सिद्धान्त-

सर्वाधिकारवादियों के अनुसार राज्य का व्यक्ति पर पूर्ण अधिकार है। उसका अधिकार परिवार, धर्म, समाज सबके ऊपर है। कोई भी व्यक्ति, पिता, पुत्र, व्यापारी या वैज्ञानिक, हिन्दू या मुसलमान होने से पहले राज्य का नागरिक है और उसके राज्य के प्रति कर्तव्यों के सामने अन्य सब कर्त्तव्य नगण्य हैं। राज्य के अधिकारों की तुलना में परिवार, जाति, समाज आदि के अधिकार गौण हैं। राज्य सर्वोपरि है। वह व्यक्ति से पूर्ण आत्म-समर्पण मांगता है। वह कहता है कि ''भूल जाओ कि तुम किसान, श्रमिक, व्यापारी, वैज्ञानिक, पत्नी या माता हो और केवल यह याद रखो कि तुम एक नागरिक हो। अपने ऊपर अन्य सभी के अधिकार भूल जाओ क्योंकि किसी की भी मेरी अधिकारों से तुलना नहीं की जा सकती।'' फासिस्ट इटली तथा नाजी जर्मनी में तानाशाहों ने राज्य के इसी रूप को स्थापित करना चाहा था। जर्मनी और इटली की नृशंसता और हिटलर तथा मुसोलिनी का पतन इस तथ्य के प्रमाण है कि व्यक्ति पर राज्य के इस सर्वाधिकार की धारणा ठीक नहीं है। उपरोक्त उद्धरण राज्य की शक्ति और कार्यों की उचित अभिव्यक्ति नहीं है। कार्नवाल ल्वीस का यह कथन सर्वथा अनैतिक है कि ''प्रभुसत्ता को व्यक्ति के जीवन, अधिकारों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में पूरा अधिकार है।'' राज्य को इस प्रकार निरंकुश अधिकार देना व्यक्ति की नैतिक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करना है। विशेषतया विचारों और भावनाओं के नियन्त्रण की चेष्टा तो मनुष्य की वैयक्तिकता को ही समाप्त कर देगी। अन्ततोगत्वा सभी सामाजिक संस्थायें

मानव के सर्वांगीण विकास का साधन मात्र है और राज्य भी कोई अपवाद नहीं है। अतः ब्लैकस्टोन का यह कथन नीति की जड़ पर कुठाराघात करता है कि ''राज्य की सत्ता एक परम, निर्बाध और अनियन्त्रित सत्ता है।''

राज्य के अधिकारों की सीमायें-

वास्तव में वैधानिक दृष्टिकोण से भी राज्य के अधिकारों की कुछ निश्चित सीमायें है। राज्य के अधिकारों को सीमित करने वाले मुख्य कारक अग्रलिखित हैं-

(1) मौलिक अधिकार- प्रत्येक राज्य के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार मिले होते हैं। राज्य इन मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात नहीं कर सकता है।

(2) सामाजिक संगठन- राज्य में बहुत से सामाजिक संगठन होते हैं जिनके अपने अधिकार होते हैं और जो सामाजिक जीवन के लिये बड़े आवश्यक हैं। साधारणतया राज्य इन सामाजिक संगठनों के अधिकारों की अवहेलना नहीं करता।

(3) सामाजिक प्रथायें, रीति-रिवाज और परम्परायें- साधारणतया राज्य समाज की प्रथाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं का उल्लंघन करता है।

(4) राज्य का स्वरूप- राज्य का स्वरूप भी राज्य के अधिकारों को सीमित करता है। जनतन्त्रीय, अधिनायकवादी आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के राज्यों में राज्य के अधिकार भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ- अधिकारों का प्रयोग करने में राज्य को अन्य राज्यों तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसा न करने पर उसका अस्तित्व तक खतरे में पड़ सकता है। इसलिये अपने अधिकारों का प्रयोग करने में राज्य अपने नागरिकों और उनकी सामाजिक संस्थाओं का ही नहीं बल्कि बाहरी राज्यों का भी ध्यान रखता है।

संक्षेप में, नागरिकों के मौलिक अधिकार, सामाजिक प्रथायें, रीति-रिवाज और परम्परायें, सामाजिक संगठनों के अधिकार, राज्य का स्वरूप तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां राज्य के अधिकारों को सीमित करती है अन्यथा अपने सीमित क्षेत्र में राज्य सर्वोच्च सत्ता है। अतः वैधानिक तथा व्यावहारिक किसी भी दृष्टि से राज्य के अधिकार असीम नहीं है।

9.7 राज्य के कार्य

सर्वाधिकारवादियों के मत से ऐसा मालूम पड़ता है मानों राज्य सभी कार्य कर सकता हो परन्तु यह विचार सर्वथा भ्रामक है। वास्तव में साधन के दृष्टिकोण से भी राज्य व्यक्ति के लिये आवश्यक सभी कामों को नहीं कर सकता। अतः राज्य को साध्य तो क्या एक मात्र साधन भी नहीं माना जा सकता। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें राज्य ही कर सकता है, कुछ कार्य ऐसे हैं जिनको करने के लिये राज्य अपेक्षाकृत अधिक सुयोग्य है, परन्तु कुछ कार्य ऐसे हैं जिनको राज्य न करे तो अच्छा है और साथ ही कुछ कार्य ऐसे भी हैं जिनको राज्य नहीं कर सकता अथवा जिनकी सम्पन्न करने में राज्य अयोग्य है। इन चारों प्रकार के कार्यो को समझ लेने से यह भलीभांति स्पष्ट हो जायेगा कि राज्य को व्यक्ति पर सर्वाधिकार रखने वाला नहीं माना जा सकता। राज्य के ये विभिन्न कार्य अग्रलिखित हैं-

(1) ऐसे कार्य जिन्हें केवल राज्य ही कर सकता है (Functions Peculiar to the State)- इस प्रकार के कार्यों के विषय में पर्याप्त मतभेद है परन्तु साधारणतया न्याय, शान्ति, शिक्षा तथा सुरक्षा आदि की व्यवस्था और नाप जोख के पैमाने को तय करना तथा मुद्रा आदि का प्रबन्ध केवल राज्य ही कर सकता है, दूसरी कोई भी समिति उन्हें नहीं कर सकती।

(2) ऐसे कार्य जिन्हें करने के लिये राज्य अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल है (Functions for which the State is well Adapted) - बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जिनको राज्य अन्य समितियों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता है। इस तरह के कार्यों में जंगलों की रक्षा करना, खनिज पदार्थों की देखभाल करना, पशुओं की रक्षा करना, शिक्षा की व्यवस्था करना, क्रीड़ा क्षेत्र बनाना, सार्वजनिक बाग बगीचे आदि लगवाने के कार्य आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार प्राकृतिक सम्पत्ति का उपयोग अन्य संगठनों द्वारा भी हो सकता है, परन्तु उन पर ऐसा नियन्त्रण रखना कि उनका दुरुपयोग न हो पाये राज्य ही अच्छी तरह कर सकता है। इसी तरह सामाजिक कल्याण और सुरक्षा के कार्य राज्य अन्य समितियों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकता है। दूसरी समितियों को इन कार्यों में खर्चा भी अधिक करना पड़ेगा और फिर भी वे उनका उतना अच्छा प्रबन्ध नहीं कर सकेंगी जितना कि राज्य कर सकता है।

(3) ऐसे कार्य जिनको करने के लिए राज्य अनुकूल नहीं है (Functions for which State is ill&Adapted) - समाज के ऐसे बहुत से सांस्कृतिक धार्मिक और वर्गगत हितों के कार्य है जिनको करने के लिये राज्य अनुकूल नहीं है। ये कार्य अन्य समितियों के द्वारा ही अधिक अच्छी तरह होते हैं।

(4) ऐसे कार्य जिनको सम्पन्न करने में राज्य अयोग्य है (Functionswhich State is Incapable of Performing) - बहुत से कार्य ऐसे हैं जिनको राज्य कर ही नहीं सकता। उदाहरण के लिये राज्य जनमत पर नियन्त्रण नहीं कर सकता, वह व्यक्तियों के आचरण के विषय में नियम नहीं बना सकता, वह सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों और प्रथाओं को नहीं बदल सकता। जनमत अनेक सामाजिक तथा अन्य कारणों से बनता है, व्यक्तिर्यों का आचरण उनके चरित्र पर निर्भर रहता है, सामाजिक परम्परायें, रीति-रिवाज और प्रथायें स्वयं बनती और बिगड़ती रहती हैं।

समाज के कार्यों के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि समाज सभी कार्यों को नहीं कर सकता। राज्य को सर्वाधिकारयुक्त नहीं माना जा सकता। व्यक्ति राज्य का नागरिक होने से भी पहले परिवार और समाज का सदस्य है। समाज का सदस्य होने से भी पहले वह एक मनुष्य है, एक आत्म-चेतन (ैमसा-ब्वदेबपवने) प्राणी है। इस प्रकार एक मनुष्य होने के नाते, परिवार का सदस्य और समाज का अंग होने के नाते व्यक्ति के जो कर्तव्य और उत्तरदायित्व हैं उनमें राज्य भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वास्तव में व्यक्ति के अधिकारों के सामने राज्य के अधिकार हेय हैं। राज्य को इन्हीं के विकास के लिए अधिकार दिये गये हैं यद्यपि किसी व्यक्ति के अन्य व्यक्ति के विकास में रोड़ा अटकाने वाले काम करने पर राज्य को उसे रोकने का पूरा अधिकार होगा।

9.7.1 राज्य के अनिवार्य कार्य

राज्य के अधिकारों के साथ-साथ उसके कार्य भी बड़े व्यापक हैं। इनमें कुछ कार्य अनिवार्य (Compulsory) हैं और कुछ ऐच्छिक (Voluntary) हैं। अनिवार्य कार्यों में मुख्य निम्नलिखित हैं-

(1) बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा - राज्य का सबसे बड़ा अनिवार्य कार्य बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा करना है। इसके लिये उसे जल, थल और नभ सेना तथा अस्त्र-शस्त्रों का समुचित प्रबन्ध करना पड़ता है। उसे उन सब बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है जिनसे बाहरी राज्यों के आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो।

(2) आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा- राज्य की विदेश नीति के साथ-साथ उसकी गृह-नीति भी बड़ी महत्वपूर्ण होती है। आन्तरिक शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना राज्य का पहला कर्तव्य है। सामप्रदायिक दंगे, चोरियां, डाके और विद्रोह बढ़ने पर स्वयं राज्य का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। पुलिस तथा सेना की सहायता से राज्य शान्ति और व्यवस्था बनाये रखता है।

(3) नागरिकों के अधिकारों की रक्षा- प्रत्येक राज्य में नागरिकों के कुछ अधिकार होते हैं जैसे जीवन का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, विचारों की स्वतन्त्रता का अधिकार आदि। इन अधिकारों की रक्षा करना राज्य का अनिवार्य कार्य है। इसके लिये उसको आवश्यक कानून बनाने पड़ते हैं, समुचित शासन प्रबन्ध करना पड़ता है और न्याय की पर्याप्त व्यवस्था करनी पड़ती है।

(4) न्याय- इस प्रकार न्याय राज्य का एक अनिवार्य कार्य है। इससे राज्य में कानूनों का पालन होता है, सुव्यवस्था बनी रहती है और सबके अधिकारों की रक्षा होती है।

9.7.2 राज्य के ऐच्छिक कार्य

इन अनिवार्य कार्यों के अतिरिक्त राज्य के ऐच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं-

(1) शिक्षा- आधुनिक काल में सभी राज्य अपने नागरिकों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना अपना कर्तव्य समझते हैं। अशिक्षित नागरिकों का राज्य कभी भी प्रगति नहीं कर सकता। अतः राज्य प्रारम्भिक स्कूलों, कालिजों और विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध करता है जिससे कृषि, विज्ञान तथा कला सभी की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। इनके साथ-साथ अनुसंधानशालाओं, पुस्तकालयों, अजायबघरों, संग्रहालयों तथा कला कक्षों आदि का प्रबन्ध किया जाता है। प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क देने का प्रयास किया जाता है। राज्य की ओर से योग्य विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। परन्तु राज्य को शिक्षा केन्द्रों में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

(2) स्वास्थ्य- शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक राज्य सब कहीं स्वास्थ्य रक्षा का भी आवश्यक प्रबन्ध करते हैं। राज्य की ओर से सफाई, औषधालयों, मुफ्त दवाइयों, बीमारियों को रोकने के टीकों तथा गरीब लोगों के लिये आवश्यक पौष्टिक पदार्थों का भी प्रबन्ध किया जाता है। योग्य डॉक्टर उत्पन्न करने के लिये मैडिकल कालिज खुलवाये जाते हैय सरकारी अनुसन्धानशालायें और नर्सों की ट्रेनिंग के स्कूल खुलवाये जाते हैं।

(3) वृद्धों, निर्धनों और अपाहिजों की रक्षा- आधुनिक राज्य वृद्ध, निर्धन, बेकार और अपाहिज नागरिकों की भी व्यवस्था करने लगा है। उनको आर्थिक सहायता दी जाती है। बूढ़ों को पेंशन दी जाती है। बीमे की सुविधा से सभी की सुरक्षा का प्रबन्ध रहता है। अनाथालय और महिला आश्रम खुलवाये जाते हैं।

(4) जनहित की सेवाओं की व्यवस्था- राज्य रेलवे, डाक, तार, वायरलैस आदि का प्रबन्ध करता है। रेलों, बसों, वायुयानों तथा जहाजों आदि आवागमन के साधनों का प्रबन्ध करना राज्य का कर्तव्य है।

(5) सामाजिक और आर्थिक सुधार- सामाजिक और आर्थिक सुधार करना भी राज्य का कर्तव्य है। राज्य बुरे रीति-रिवाजों के विरुद्ध कानून बनाता है और उनकी रोकथाम का प्रबन्ध करता है।

(6) व्यापार और उद्योगों को प्रोत्साहन - राज्य का काम व्यापार और उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देना तथा उनका विकास करना भी है। संसार में लगभग सभी जगह मुद्रा और टकसाल का प्रबन्ध राज्य के हाथ में होता है। राज्य तौलने और नापने के मानदण्ड भी स्थिर करता है। आयात-निर्यात के लिये आवश्यक नियम बनाये बिना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश को लाभ नहीं हो सकता। अतः राज्य इस सम्बन्ध में नियम बनाता है। राज्य को बड़े-बड़े मूल उद्योगों (Key Industries) के कारखाने खोलने चाहियें जिससे देश में अन्य उद्योग चलाये जा सकें। राज्य को गृह उद्योगों को भी प्रोत्साहित करना चाहिए।

(7) श्रम का संचालन- राज्य को श्रमिकों की दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए और ऐसे नियम बनाने चाहियें जिससे उनका शोषण असम्भव हो जाय। बीमारी और बेकारी की दशा में मजदूरों को सहायता मिलनी चाहिए। श्रम कल्याण (Labour Welfare) के विषय में अनेक प्रकार से प्रयत्न करना राज्य का उत्तरदायित्व है।

(8) राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पत्ति (Natural Resources) का समुचित उपयोग- भूमि, जंगल, नदियाँ तथा खनिज पदार्थ और मिट्टी का तेल आदि से राष्ट्रसमृद्धिशाली बन सकता है। इनका अधिक से अधिक अच्छी तरह उपयोग होना चाहिये। इस विषय में राज्य को आवश्यक देख रेख रखनी चाहिये, अनुसन्धान कराने चाहियें, नए-नए खनिज पदार्थों की खोज करानी चाहिये और जंगलों, खानों, भूमि आदि के विषय में आवश्यक कानून बनाने चाहियें।

(9) मनोरंजन का प्रबन्ध - जनता के जीवन में नवीनता और प्रफुल्लता बनाए रखने के लिए राज्य को मनोरंजन के साधन जुटाने चाहियें। इसके लिए फिल्म उद्योग, नाट्यशालाओं आदि को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

इन अनिवार्य कार्यों के अतिरिक्त राज्य के ऐच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं-

9.8 सारांश

वास्तव में आधुनिक राज्य का कार्य शासन करना मात्र न होकर जनता का सब प्रकार से कल्याण और विकास करना है। अतः उसके कार्य बहुत बढ़ गये हैं। स्थानीय परिस्थितियों के हेर-फेर से भी इन कार्यों में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाता है। विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं से राज्य के कार्य भी अलग-अलग माने गए हैं। अतः इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो सकता है कि राज्य को वे सब कार्य करने चाहियें जिनसे जनता का कल्याण हो परन्तु जनता का कल्याण किसमें है इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। यहीं पर नीतिशास्त्र द्वारा निर्देशन की आवश्यकता है। व्यक्ति का परम लक्ष्य, उसका परम

श्रेय क्या है, यह नीतिशास्त्र निश्चित करेगा। राज्य इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए आवश्यक साधन जुटायेगा। उदाहरण के लिए व्यक्ति का परम आदर्श आत्म-साक्षात्कार या सर्वांगीण विकास है। अतः राज्य को चाहिए कि उसके भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के साधन जुटाये।

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कोह्न स्टानले (1985), विजनस ऑफ सोशल कंट्रोल, पालिटी प्रेस कैम्ब्रिज।
- डेविस (1987), किंगले ह्यूमन सोसाइटी, सुरपीत पब्लिकेशनस, दिल्ली।
- लैडिस, पी.एच. (1939) सोशल कंट्रोल, सोशल आर्गनाइजेशन एंड सोशल डिस्ऑर्गनाइजेशन इन प्रोसेस, जे.बी., लिफीनकॉट के. फिलिपियंस।
- सद्गुरु दयाल कुल एवं सुरेश चन्द्र माटे, (1968) सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन।
- डॉ. डी.एस. बघेल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन।

9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- **सद्गुरु** दयाल कुल एवं सुरेश चन्द्र माटे, (1968) सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन।
- डॉ. डी.एस. बघेल, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन।

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य की अवधारणा एवं इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. राज्य की परिभाषा को स्पष्ट कीजिए एवं राज्य के कार्यो की व्याख्या कीजिए।
3. राज्य की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए इसके अधिकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई -10 कानून

Law

इकाई की रुपरेखा

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 कानून
10.3 परिभाषाएं
10.4 कानून की उत्पत्ति तथा विकास
10.5 सामाजिक नियंत्रण में कानून के प्रकार्य
10.6 सारांश
10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.8 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

कानून सामाजिक नियंत्रण का औपचारिक और सुव्यवस्थित साधन होता है। एक कानून बाहरी कार्यों का एक सामान्य नियम होता है जो एक परम प्रभावकारी शासक द्वारा लागू किया जाता है। यह मानव व्यवहार को नियंत्रित करने वाले नियमों का उल्लेख करता है। कानून को मुख्यतः नैतिक और राजनीतिक कानूनों के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है। अगर कानून के नियम स्वयं के आंतरिक कार्यों और उद्देश्यों से सम्बद्ध है तो उन्हें नैतिक कानून कहा जाता है। जबकि दूसरे हाथ पर, अगर वे बाह्य आचरण से संबंधित हैं तो वे सामाजिक या राजनीतिक नियम या कानून कहलाते हैं। कानून अपने स्वभाव से ही जोड़ने वाले होते है। कानून के पीछे राज्य की ताकत होती है और इस वजह से लोगों या उनके समूहों को इनका पालन करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता चाहे लोगों की उसमें आस्था हो या न हो या फिर वह उनके हितों के विरूद्ध हो, फिर भी उन्हें उनका पालन करना पड़ता है। और जो उनका पालन नहीं करते वे राज्य के कानून द्वारा दण्डित होते हैं। चूँकि कानूनों का निर्माण सनाज के बड़े हिस्से के कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाता है इस वजह से लोग उन्हें पसंद करते हैं। कानून सकारात्मक रूप के साथ साथ नकारात्मक रूप में भी कार्य करता है। जब लोगों को कानून की सीमा में रह कर कुछ निश्चित कार्य करने के लिए कहा जाता है और उन कार्यों को करने पर उन्हें पुरस्कृत, सम्मानित, पदकों से अलंकृत, इज्जत दी जाती है, तब यहाँ पर कानूनी नियंत्रण का सकारात्मक पहलू काम करता है। तदापि जब लोगों को कुछ कार्य करने से मना किया जाता है, लेकिन वे फिर भी उन कार्यों को करते है तब उन्हें

दण्डित करने के लिए कैद, जुर्माना या फाँसी होती है। यह कानून का नकारात्मक कार्य है। लेकिन, चाहे कानून सकारात्मक या नकारात्मक कार्य करें यह सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता रहता है, क्योंकि यह विशेष रूप से कुछ लोगों के हितों के विरूद्ध और सामान्य रूप में सामाजिक हित के विरुद्ध लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करता है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का पढ़ने के पश्चात् आपके द्वारा यह समझना संभव होगा-

- कानून की अवधारणा का अध्ययन कर पाऐगें।
- कानून की परिभाषा का जान पाऐगें।
- कानून की उत्पत्ति तथा विकास को समझ सकेगें।
- सामाजिक नियंत्रण में कानून के प्रकार्य का इस इकाई में अध्ययन कर पाएगें।

10.2 कानून

कानून एक सामाजिक अनिवार्यता है। यह सभी समाजों में विकास एवं प्रगति के प्रत्येक स्तर पर पाया जाता है। इससे सामाजिक व्यवहारों के प्रति-मान और मापदण्ड निर्धारित होते हैं तथा व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण होता है। कानून के उद्गम के स्रोत सम्बद्ध समाज के रीति-रिवाज, परम्पराएँ, प्रथाएँ, रुढ़ियाँ, धर्म, श्रादि होते हैं। जो समाज पूर्णतयः विकसित नहीं है उनमें परम्पराएँ तथा प्रयाएँ ही कानून का स्थान ले लेती हैं। सामान्यतः कानून के जिन्हें कभी-कभी नियम भी कहा जाता है, तीन प्रकार हो सकते हैं। प्राकृतिक, सामाजिक और राजनैतिक। प्राकृतिक नियम कारण एवं प्रभाव के सम्बन्धों को प्रगट करते हैं। गुरुत्वाकर्षण तथा रसायनिक नियम प्राकृतिक होते हैं। इन नियमों का पालन करने के लिए मनुष्य बाध्य होता है। ये स्थायी और निश्चित होते हैं तथा मनुष्य इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकता है। सामाजिक नियमों का निर्माण व्यक्तियों की आवश्यकताओं और अनुभूतियों के अनुरुप होता है। यद्यपि ये नियम मनुष्य के आन्तरिक कार्यों एवं उद्देश्यों का नियन्त्रण करते हैं परन्तु मनुष्य इनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं होता है। इन नियमों में समय-समय पर संशोधन परिवर्तन भी होते रहते हैं। राजनैतिक नियम बहुतकुछ प्राकृतिक नियमों की भांति बाध्यतामूलक होते हैं। इनकी अवहेलना नहीं की जा सकती है तथा इनका उल्लंघन दण्डनीय होता है। प्रस्तुत चर्चा इन्हीं नियमों से सम्बद्ध है।

10.3 परिभाषाएं

प्रत्येक राज्य को अपने कार्यक्षेत्र की व्याख्या करने तथा मानवीय व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण के अनुसार कुछ नियम बनाने पड़ते हैं जिन्हें कानून कहते हैं। समाजशास्त्रियों एवं कानून के दाशिनिकों ने अनेक मत प्रस्तुत किए हैं जिनमें से कुछ यहां उद्धरत हैं।

मैकाइवर और पेज कहते हैं "कानून नियमों का वह रुप है जो राज्य के न्यायालयों द्वारा स्थितियों के प्रति मान्य होता है, स्पष्टीकरण देता है तथा प्रयोग में आता है। आचार सहित वह अनेक स्त्रोतों से उत्पन्न होता है और तब वह कानून बन जाता है जव राज्य, जो अपने अन्तिम कार्यरुप में न्यायालय है, अपने क्षेत्राधिकार के भीतर नागरिकों और निवासियों पर उसे नियम के रुप में लागू करता है"।

हॉबेल के अनुसार "कानून एक सामाजिक आदर्श है जो धमकी अथवा शारीरिक बल के माध्यम से उस पक्ष के द्वारा प्रयोग किया जाता है जिसे ऐसा करने की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है।"

मदन तथा मजुमदार के मतानुसार, "कानून के अन्तर्गत कुछ सिद्धान्तों का एक संग्रह होता है जो एक क्षेत्र के भीतर सामाजिक तथा राजनैतिक संगठन बनाए रखने के लिए शक्ति के प्रयोग की आज्ञा देता है।"

गुरविच का मत है कि "कानून का समाजशास्त्र मानवीय क्षमताओं के समाजशास्त्र के अध्ययन का वह अंश है जिसमें कानून के सम्पूर्ण यथार्थ का इसकी स्पर्शनीय एवं वाह्य वैषियक अनुभूतियों समेत इसके व्यवहारिक और भौतिक आधारों का अध्ययन किया जाता है।"

मैक्स रैडिन का कथन है, "अन्ततोगत्वा कानून सामाजिक प्रबंध-यंत्र का मात्र एक छोटा-सा पुर्जा होता है जिसका निकट सम्बंध राजनैतिक प्रशासन से होता है। कानून के उद्देश्य न्याय अथवा एक अच्छी समाज रचना न होकर व्यावसायिक व्यवहार की सुविधा, व्यक्तिगत झगड़ों की शान्ति तथा प्रतियोगियों के बीच सद्भावना की वृद्धि करना होते हैं।"

मैक्स वेवर की व्याख्या के अनुसार, "कानून एक व्यवस्था है। इसकी मान्यता इस सम्भावना पर संरक्षित होती है कि विचलन का सामना विशेष रुप से अधिकृत एक पदाधिकारी द्वारा शारीरिक अथवा मानसिक दृण्ड देकर किया जाएगा। इस पदाधिकारी के पास कोई ऐसी शक्ति होनी चाहिए जिससे यह सम्भावना बनी रहे कि इसका धारणकर्त्ता एक सामाजिक समूह के अन्तर्गत अपनी इच्छाओं को विरोध के बावजूद भी दूसरों पर लाद सकता है।"

10.4 कानून की उत्पत्ति तथा विकास

कानून मानवीय मूल्यों का संरक्षक है। मनुष्य ने जब से सामूहिक जीवन में रहना आरम्भ किया है तभी से वह उत्तरदायित्व एवं नैतिकता के सूत्रों में गुँथता आया है। ये नैतिक बन्धन जैसे-जैसे संगठित होते गए हैं वैसे-वैसे समाज एक आदर्शयुक्त स्वरूप ग्रहण करता रहा है। सामाजिक विकास, युद्ध, वैज्ञानिक प्रगति आदि ने सामूहिक

संगठन एवं मानवीय अन्तःसम्बन्धों को और भी जटिलतम बना दिया है। उसी के परिणामस्वरूप समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों तथा सामाजिक मूल्यों के अनुसार विभिन्न समाजों में विभिन्न कानूनों का प्रादुर्भाव हुआ है। इस विकास ने कानून के समाजशास्त्रीय चिन्तन के लिए अनेक आयामों का निर्माण किया है। कानून के विकास से सम्बन्धित. कुछ समाजशास्त्रीय सम्प्रदायों एवं विद्वानों के मतों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है-

1- **अमरीकी नव-यथार्थवादी सम्प्रदाय (The Am erican Neo&Positivist's School)-** इस सम्प्रदाय के विद्वान कानून को एक यथार्थ विज्ञान मानते हैं। इसका विधायक अथवा न्यायाधीश मनुष्य ही होता है जो आर्थिक राजनैतिक तथा पूर्वाग्रहों से प्रभावित हो सकता है। न्यायाधीश अपने निर्णय पर पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता है इसलिए एक प्रकार के मामले से सम्बद्ध न्यायाधीश के विभिन्न फैसलों में अन्तर हुआ करता है। कानून पर अपने तत्कालीन युग तथा स्थान का बन्धन होता है और समाज की परिवर्तनशील प्रकृति की भाँति कानून भी परिवर्तनशील और अस्थिर होता है। उसका उद्देश्य न्याय अथवा एक आदर्श सामाजिक संगठन न होकर, व्यावसायिक व्यवहार की सुविधा, व्यक्तिगत फसादों की शान्ति तथा प्रतियोगियों के बीच सद्भावना की स्थापना करना होता है। इस सम्प्रदाय में जिरोम फैक, कार्ल लेवेलिन और मैक्स रैडिन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
2- **उप्सला सम्प्रदाय (The Upsala School**)- यह सम्प्रदाय अधिकार तथा कर्त्तव्य की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करता है क्योंकि इसके अनुसार ये दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं हैं। इस सम्प्रदाय के समर्थकों के मत में जो व्यवहार सामाजिक मान्यताओं के विपरीत होते हैं वे अवैध कहलाते हैं। वैध व्यवहारों के पीछे सामान्य नियमों का महत्व, कर्त्तव्य की अनुभूति, तथा वाह्य और दैवी शक्तियों का भय होता है। कानून स्वयं में कोई शक्ति नहीं है वरन् यह सामाजिक शक्तियों का प्रतीक है। इस शक्ति की सर्वोच्च संरचना राज्य है जो समाज के सदस्यों के व्यवहारों की सामुच्यता होती है। इस सम्प्रदाय के समर्थक हेगरस्ट्राम, आलिवेकोना, जीजर आदि हैं।
3- **दार्शनिक सम्प्रदाय (Philosophical School)-** इस सम्प्रदाय के अनुसार कानून की व्यवस्था का आधार राजनैतिक शक्ति है जो केवल आदर्शों पर ही निर्भर न होकर तथ्यों पर भी निर्भर होती है। दार्शनिक हॉर्वाथ का विचार है कि उद्देश्यपूर्ण शक्ति कानून के लिए यांत्रिकी है। कानून सामाजिक शक्ति की एक आवश्यकता है। इससे एक मनुष्य का व्यवहार दूसरे मनुष्य की क्रियाओं का कारक बन जाता है। शिंडलर का मत है कि मानव प्रकृति का अस्तित्व संसार के द्वन्द्वात्मक आदर्शों द्वारा छिन्न-भिन्न होकर समान नियमों को प्रभावित करता है। सिद्धान्ततः इनके निर्णायक कारक वैध घिचार ही होते हैं परन्तु व्यवहारिक रूप से अन्तिम निर्णय राज्य से सम्बद्ध होता है। इस सम्प्रदाय में अनेक विचारधाराएँ हैं तथा शिण्डलर और हॉर्वाथ के अतिरिक्त हण्टिगटन, केल्सन, हेसर्ट जीन, रास्को पाउण्ड आदि भी हैं।

4- **मानवशास्त्रीय सम्प्रदाय (Anthropological School)-** इस सम्प्रदाय के समर्थक, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रगति के प्रत्येक स्तर पर कानून का प्रादुर्भाव मानते हैं। धार्मिक धारणाओं के आधार पर विभिन्न समाजों में कुछ नियमों का प्रचलन रहा है जिनसे मानवीय व्यवहार संचालित होते रहे हैं। ये प्रचलन विचारों द्वारा सम्प्रेषित होकर संस्कृति बन जाते हैं। यह संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होकर तथा प्रणालियों का स्वरूप लेकर व्यक्ति और समूह के व्यवहारों को निर्धारित करती है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहारों में कानून के मूल्य स्वतः समाहित हो जाते हैं और फिर ये मनुष्य की आदत बन जाते हैं। कानून से कर्त्तव्यों की प्रेरणा तथा मौलिक अधिकारों की प्राप्ति होती है। इस सम्प्रदाय के समर्थक मैलिनोवस्की, लिण्टन, पेट्राजिस्की, टीमाशेफ आदि हैं।

उपरोक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त कानून के समाजशास्त्र में कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी रही हैं जिनके प्रवर्तकों को उल्लेख इस सन्दर्भ में कर देना उचित होगा।

1- **दुर्खीम (Durkheim)-** इमाइल दुर्खीम ने सामाजिक एकता के आधार पर कानून के दो प्रकार प्रस्तुत किये हैं- एक तो यांत्रिक एकता में दमनकारी कानून और दूसरा सांवयवी एकता में व्यवस्थापक कानून (Repre&ssive Law in Mechanical Solidarity and Resti&tutive Law in Organic Solidarity): यांत्रिक एकता में कानून सामूहिक आदर्शों एवं चेतनाओं से प्रेरित होता है। इसमें व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों अथवा विशेषताओं का कोई मूल्य भी नहीं होता है। समाज के सभी सदस्यों के लिए कानून की व्यापक धाराएँ होती हैं जिनके अनुसार प्रत्येक अपराधी को एक समाने दण्ड भोगना पड़ता है। कोई भी व्यक्ति कानून की अवहेलना नहीं कर सकता है। यह कानून दमनकारी कहा जाता है। इसके विपरीत सावयवी एकता के व्यवस्थापक कानून में, मनुष्य अपनी विशेषताओं और परिस्थितियों के लिए स्थान बना सकता है। ऐसा कानून न्याय पर आधारित होते हुए भी व्यक्तिगत परिस्थितियों का. व्यवस्थापन करता है। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में पारिवारिक, व्यापारिक, सहकारी आदि अनेक कानून देखने को मिलते हैं।

2- **मैक्स वेबर (Max Weber)** - कानून की समाजशास्त्रीय प्रवृत्तियों में मैक्स वेबर का योगदान विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मैक्स बेंबर ने कानून को सत्ता अथवा प्रधिकार (।नजीवतपजल) का आधार माना है। इस सत्ता के तीन प्रकार होते हैं- परम्परागत, कारिश्मायुक्त एवं वैधानिक। मैक्स वेबर के अनुसार जब किसी क्रिया को किसी भी आदर्श के अनुरूप किया जाता है तो उसमें स्वतः एक व्यवस्था आ जाती है। इस व्यवस्था के दो अंग होते हैं-रूढ़ियां एवं कानून। रुढ़ियों की व्यवस्थानुसार विचलन को सामान्य तथा व्यवहारिक अस्वीकृत प्राप्त होने की प्रक्रिया हो सकता है। इसके विपरीत

कानून की व्यवस्थानुसार, विचलन को शक्ति के बल पर दबाया जा सकता है। मैक्स वेबर के विचार में न्यायालयों में प्रचलित कानून का वर्तमान स्वरूप पाश्चात्य सभ्यता की देन है।

3- **गुरबिच (Gurvitch) -** गुरविच के अनुसार कानून, दर्शन तथा समाजशास्त्र के अन्तःसम्बन्धों पर आधारित समाजशास्त्रीय अध्ययन है। सामाजिकता के प्रत्येक स्तर में एक यथार्थ अथवा नैतिक तथ्य होता है जिसके आधार पर कानून का निर्माण होता है। और इन नैतिक तथ्यों का आधार समाज की ऐतिहासिक स्थिति, सांस्कृतिक प्रतिमान, सामाजिक प्रतीक, सामूहिक मूल्य होते हैं। इस प्रकार गुरविच का सामाजशास्त्र सामाजिक यथार्थ में आदर्शात्मकता का अध्ययन करता है। सामाजिक स्वीकृति में जिस प्रकार नैतिक अनुभव, तार्किक विचारधाराएँ एवं आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होंगी, उन्हीं के अनुसार कानून निर्मित किये जाते हैं। गुरविच ने कानून का समाजशास्त्रीय विवेचन वृहद्-विश्लेषण और सूक्ष्म-विश्लेषण द्वारा भी किया है।

10.5 सामाजिक नियंत्रण में कानून के प्रकार्य (Functions of Law in Social Control)

कानून का संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृति में समाज की नैतिकता, तथा सौन्दर्य बोध का समावेश रहता है। इन्हीं सब मूल्यों पर कानून की नींव पड़ती है तथा निर्मित हो जाने के पश्चात् कानून इनकी रक्षा करता है। कानून के व्याख्याता जिन्हें न्यायाधीश कहते हैं, वैधानिक क्षेत्र में उसी प्रकार महत्वपूर्ण होते हैं, जैसे विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक होते हैं। सामाजिक संगठन, नियंत्रण, परिवर्तन और अभियोजन में कानून का बहुत बड़ा योगदान है। इस संदर्भ में कानून के महत्व एवं प्रकार्यों पर नीचे कुछ बिन्दु प्रकाशित किये गये हैं-

(1) सामाजिक स्थिरिता (Social Stability)- परम्पराएँ एवं प्रथाएँ दीर्घकाल तक प्रचलित रहने के पश्चात कानून का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। यह कानून लिखित होता है तथा इसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त होती है। यह जटिल तथा विकसित समाज की विशेषता है। अविकसित एवं लघु समाजों में परम्पराएँ ही कानून हुआ करतीं हैं। कानून की अवहेलना के पीछे दण्ड का आतंक समाज में विचलनकारी प्रवृत्तियों को नहीं पनपने देता है। फलस्वरूप समाज के सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्य सुरक्षित एवं स्थिर रहते हैं। यह स्थिरीकरण इतना रूढ़ नहीं होता है कि विकास में बाधक बन जाये। नैतिक-सामाजिक आवश्यकता पड़ने पर कानून संशोधित भी हो जाया करता है।

(2) सामाजिक उत्थान (Social Upliftment) - सामाजिक उत्थान के लिए, सामाजिक संस्थानों द्वारा चलाये गये अभियान जब अपेक्षित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर पाते हैं तो कानून उनके हेतु वैधानिक धाराओं का सृजन करके उत्थान में अपना सक्रिय योगदान करता है। इसके अभाव में समाज में फैले रुढ़िग्रस्त एवं अहितकारी व्यवहारों और प्रचलनों को उखाड़ फेफना सामान्य सामाजिक नियमों की क्षमता के परे है। समाज सुधारकों को भी इसमें सफलता मिलना कठिन हो जाता है। कानून का संरक्षण पाकर उत्थान की योजनाएँ बाध्यतामूलक

बनकर समाज का मार्गदर्शन करने लगती है। भारत में सती प्रथा, बालविवाह, आदि का उन्मूलन कानून के कल्याणकारी-उत्थान के प्रकायों का उदाहरण हैं।

(3) बहुर्मुखी नियंत्रण (Omni Directional Control) - कानून मानवीय-जीवन तथा प्राकृतिक स्रोतों के समस्त पक्षों को एक साथ नियंत्रित करता है- चाहें वे व्यक्तिगत हों अथवा सार्वजनिक। कानून में हर प्रश्न का समाधान होता है। बहुर्मुखी सामाजिक नियंत्रण का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि सभी प्रकार के नियंत्रण एक ही केन्द्र से संचालित होने के कारण विभिन्न पक्षों के बीच समंजन बना रहता है। कानून के संविधानों द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाती है कि एक क्षेत्र में रोके गये विचलन दूसरे क्षेत्र में पारिलक्षित न होने पाएँ। इसलिए पारिवारिक, सामूहिक, व्यापारिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित संहिताएँ पारस्परिक समायोजन के दृष्टिकोण से निर्मित की जाती हैं।

(4) सामाजिकरण (Socialization) - कानून के माध्यम से एक विशेष प्रकार का सामाजीकरण अथवा सामाजिक प्रशिक्षण होता है जो सामाजिक नियंत्रण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। कानून सामाजीकरण का अन्तिम बाध्यतामूलक चरण है। सामान्यतः व्यक्ति का सामाजीकरण सर्व-प्रथम अपने परिवार, सखा-सहेली, पड़ोसी आदि जैसे प्राथमिक समूहों में होता है। तदोपरान्त विद्यालय तथा अन्य सभा-संस्थानों जैसे द्वतीयक समूहों में, जीवन का दूसरा भाग सामाजीकृत होता है। इसके अतिरिक्त समाज में बहुत से ऐसे व्यक्ति रह जाते हैं जो इन दोनों चरणों के पश्चात भी सामाजिक आदर्शों से संमजित नहीं हो पाते हैं तथा विचलनकारी व्यवहार किया करते हैं। इन व्यक्तियों का सामाजीकरण राज्य और कानून की व्यवस्था से होता है। अनैतिक और विचलनकारी व्यवहार करने वालों को कानून कारावास, दण्ड तथा मानसिक उपचारों के द्वारा नियन्त्रित तथा सामाजीकृत करता है। अतएव कानून भी एक प्रकार की प्रक्रिया है जिसे सामाजीकरण का तृतीय समूह कहा जा सकता है।

(5) मौलिक अधिकारों की सुरक्षा (Security of Basic Rights)- सामाजिक स्तरीकरण और विभेदीकरण के विकास से अनेक सन्दर्भों में प्रगति होने के साथ-साथ कुछ नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर भी प्रहार होता है। वैभव एवं वर्गीय उच्चता को लेकर प्रायः समाज में द्वन्द होता रहता है। पूँजीपतियों, धार्मिक महन्तों तथा राजनैतिक स्वाथियों के द्वारा निम्न और श्रमिक वर्ग का शोषण हुआ करता है। एक ओर तो समर्थ समुदाय अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों से विमुख होता है दूसरी ओर शोषित व्यक्ति अपनी सम्पत्ति और मौलिक अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। कानून की संहिताएँ जनता के इन मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करती हैं। न्याय के द्वार प्रत्येक नागरिक के लिए खुले रहते हैं जहाँ उसे वह सब मिलता है जो उसके लिए अपेक्षित है। कानून सामाजिक अन्तर्द्वन्दों और संघर्षों को शान्त करके समाज में एकता का प्रसार करता है।

1.6 सारांश

इस इकाई में, कानून की अवधारणा एवं परिभाषा दी है। कानून की उत्पत्ति तथा विकास को स्पष्ट किया गया है। साथ ही सामाजिक नियंत्रण में कानून के प्रकार्य की भी चर्चा की गयी है। कानून सामाजिक नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण औपचारिक साधन है। प्रारंभिक समाज सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों पर निर्भर थे, लेकिन जब समाज का आकार और जटिलता बढ़ी तो उन्हें नियम और विनियम बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा, जो आवश्यक प्रकार के व्यवहार को परिभाषित करते हैं और उनका उल्लंघन करने वालों पर लगाए जाने वाले दंड को निर्दिष्ट करते हैं। कानून कानूनी रूप से अधिकृत निकायों द्वारा बनाए गए नियमों का एक समूह है और अधिकृत एजेंसियों द्वारा लागू किया जाता है। यह अधिकारों, कर्तव्यों के साथ-साथ उनके उल्लंघन के लिए दंड को भी स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। आधुनिक समाज आकार में बड़े हैं। उनकी संरचना जटिल है जिसमें कई समूह, संगठन, संस्थाएँ और निहित स्वार्थ शामिल हैं। सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधन अब सामाजिक व्यवस्था और सद्भाव बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। मजबूरन आधुनिक समाजों को सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक साधनों का सहारा लेना पड़ा।

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कोह्न स्टानले (1985), ए विजनस ऑफ सोशल कंट्रोल, पालिटी प्रेस कैम्ब्रिज।

2. डेविस (1987), ए किंगले ह्यूमन सो ःसाइटी, सुरपीत पब्लिकेशनस, दिल्ली।

3. लैडिस, पी.एच. (1939), ए सोशल कंट्रोल, सोशल आर्गनाइजेशन एंड सोशल डिसूऑर्गनाइजेशन इन प्रोसेस, जे.बी., लिफीनकॉट के. फिलिपियंस।

4. मैक्लेवर, आर.एम. ;1992द्धए एंड पेजे सी.एच. सोसाइटी, इन इंट्रोडक्शन अनालिशिस दि मैकमिलन एंड कं. लिमिटेड लन्दन।

5. रोज. ई.ए. ;1901द्धए सोशल कंट्रोल, दि मैकमिलन कं. न्यू यार्क।

6. रोसेक जोसेफ एस. ;1955द्धए सोशल कंट्रोल, यूनिवर्सिटी ऑफ विद पोर्ट, ब्रिफ पोर्ट, कोनन।

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. कानून की परिभाषा दीजिये। कानून किस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है?

2. कानून से आप क्या समझते हैं। सामाजिक नियन्त्रण के सन्दर्भ में कानून की उत्पत्ति तथा विकास का विवेचन कीजिये?

3. सामाजिक नियन्त्रण में कानून के प्रकार्य बताइये?

इकाई- 11 शिक्षा

Education

इकाई की रूपरेखाः

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 शिक्षा का परिचय

11.2.1 व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में शिक्षा का महत्व

11.2.2 दुनिया भर में शिक्षा प्रणालियों का संक्षिप्त इतिहास

11.3 शिक्षा के प्रकार

11.3.1 औपचारिक शिक्षा (स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय)

11.3.2 अनौपचारिक शिक्षा (जीवन के अनुभव, सांस्कृतिक ज्ञान)

11.3.3 अनौपचारिक शिक्षा (कार्यशालाएँ, सामुदायिक शिक्षा)

11.4 शिक्षा के मुख्य घटक

11.4.1 शिक्षकों और शिक्षकों की भूमिका

11.4.2 पाठ्यक्रम और उसका विकास

11.4.3 शिक्षण संसाधनों और बुनियादी ढाँचे का महत्व

11.5 शिक्षा का महत्व

11.5.1 व्यक्तिगत विकास और कैरियर के अवसरों पर प्रभाव

11.5.2 सामाजिक समानता के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा

11.5.3 शिक्षा के माध्यम से वैश्विक समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देना

11.6 शिक्षा में चुनौतियाँ

11.6.1 पहुँच और संसाधनों में असमानताएँ

11.6.2 पुरानी प्रणालियाँ और पाठ्यक्रम

11.6.3 डिजिटल विभाजन और तकनीकी सीमाएँ

11.7 नवाचार और समाधान

11.7.1 शिक्षा में तकनीकी उन्नति (ई-लर्निंग, एआई, आदि)

11.7.2 समावेशी शिक्षा के लिए नीतियाँ और सुधार

11.7.3 शिक्षा के विकास में समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की भूमिका

11.8 सारांश
11.9 पारिभाषिक शब्दावली
11.10 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर
11.11 सन्दर्भ सूची
11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.13 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्तिगत विकास और सामाजिक प्रगति की आधारशिला है। यह व्यक्तियों को ज्ञान, कौशल और आलोचनात्मक सोच क्षमताओं से लैस करके उन्हें सशक्त बनाती है, जिससे वे उचित निर्णय ले पाते हैं और अपने समुदायों में सार्थक योगदान दे पाते हैं। इसके मूल में, शिक्षा बौद्धिक जिज्ञासा और रचनात्मकता को बढ़ावा देती है, प्रत्येक शिक्षार्थी की जन्मजात क्षमता का पोषण करती है। यह विभिन्न संस्कृतियों के बीच पुल बनाती है, सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देती है, जो एक परस्पर जुड़ी दुनिया में आवश्यक हैं। शिक्षाविदों से परे, शिक्षा सहानुभूति, अखंडता और लचीलापन जैसे मूल्यों को स्थापित करती है, जो एक ऐसे व्यक्ति को आकार देती है जो आत्मविश्वास के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना कर सकता है।

इसके अलावा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच एक मौलिक मानव अधिकार है, जो असमानताओं को कम करने और गरीबी के चक्र को तोड़ने के लिए अभिन्न है। यह एक कुशल कार्यबल तैयार करके और नवाचार को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास की नींव रखता है। शैक्षणिक संस्थान - चाहे वह स्कूल हों, कॉलेज हों या व्यावसायिक केंद्र - समाजीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, ऐसे स्थान बनाते हैं जहाँ व्यक्ति सहयोग करना, संवाद करना और स्थायी संबंध बनाना सीखते हैं। डिजिटल युग में, शिक्षा पारंपरिक सीमाओं से आगे निकल गई है, जिससे सीखने को अधिक सुलभ और समावेशी बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाया जा रहा है।

हालांकि, सभी के लिए, विशेष रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए शिक्षा तक समान पहुँच सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ बनी हुई हैं। अपर्याप्त संसाधन, पुराने पाठ्यक्रम और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी जैसे मुद्दों पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा में निवेश करना भविष्य में निवेश करना है, क्योंकि यह न केवल व्यक्तिगत जीवन को बदलता है बल्कि राष्ट्रों की दिशा भी तय करता है। शिक्षा की शक्ति केवल ज्ञान प्रदान करने में ही नहीं बल्कि आशा को प्रेरित करने और एक उज्जवल कल के लिए अनंत संभावनाओं को खोलने में भी निहित है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप समझ सकेंगे कि-

- शिक्षा के प्रकार कितने प्रकार होते हैं।
- शिक्षा के मुख्य घटकों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शिक्षा का महत्व को समझ सकेंगे।
- शिक्षा में चुनौतियाँ के विषय में समझ सकेंगे।
- नवाचार और समाधान के विषय में समझ सकेंगे।

11.2 शिक्षा का परिचय

शिक्षा ज्ञान, कौशल, मूल्य और दृष्टिकोण प्राप्त करने की प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक रूप से विकसित होने में सक्षम बनाती है। इसमें औपचारिक प्रणाली, जैसे स्कूल और विश्वविद्यालय, और अनौपचारिक अनुभव दोनों शामिल हैं जो आजीवन सीखने में योगदान करते हैं। शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य लोगों को आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और समस्या-समाधान क्षमताओं का पोषण करके अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने के लिए सशक्त बनाना है। यह उन सर्वांगीण व्यक्तियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो अपने समुदायों में सार्थक योगदान दे सकते हैं, सामाजिक समानता को बढ़ावा दे सकते हैं और आधुनिक दुनिया की लगातार विकसित होने वाली चुनौतियों के अनुकूल हो सकते हैं। अपने मूल में, शिक्षा सांस्कृतिक और सामाजिक विभाजन को पाटने, व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर समझ और प्रगति को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।

11.2.1 व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में शिक्षा का महत्व

शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए एक आधारशिला है, जो व्यक्ति को न केवल ज्ञान और कौशल अर्जित करने में मदद करती है, बल्कि उसे नैतिक और सामाजिक मूल्यों का भी बोध कराती है। यह व्यक्ति को सोचने, समझने और समस्याओं को हल करने की क्षमता प्रदान करती है, जिससे वे अपने जीवन को संवार सकें और समाज के विकास में अपना योगदान दे सकें। शिक्षा समानता को बढ़ावा देती है, सांस्कृतिक और सामाजिक विभाजनों को पाटने का काम करती है, और समाज में सद्भावना और सामंजस्य लाने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करती है और रोजगार के अवसर प्रदान करती है, जिससे परिवार और समाज की आर्थिक और सामाजिक स्थिति मजबूत होती है। इस प्रकार, शिक्षा एक व्यक्ति को आत्मविकसित करने और समाज को सशक्त बनाने का माध्यम बनती है।

11.2.2 दुनिया भर में शिक्षा प्रणालियों का संक्षिप्त इतिहास

दुनिया भर में शिक्षा प्रणालियों का इतिहास मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है और यह विभिन्न कालखंडों में समाज की आवश्यकताओं और मूल्यों को दर्शाता है। इसे विस्तार से समझने के लिए इसे कालखंडों में बांटा जा सकता है:

1. प्राचीन काल

- **प्राचीन भारत:** शिक्षा का उद्देश्य जीवन मूल्यों, धर्म, और नैतिकता का ज्ञान देना था। गुरुकुल प्रणाली के तहत छात्र शिक्षकों के साथ रहकर वेदों, शास्त्रों और कला का अध्ययन करते थे। तक्षशिला और नालंदा जैसे विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के केंद्र थे।

- **प्राचीन ग्रीस:** ग्रीस में शिक्षा का जोर दर्शन, गणित और साहित्य पर था। सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे विचारकों ने शिक्षा के आधुनिक दृष्टिकोण को जन्म दिया।

- **मिस्र और मेसोपोटामिया:** इन क्षेत्रों में शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक और प्रशासनिक कौशल विकसित करना था। चित्रलिपि और गणित जैसे विषयों पर जोर दिया जाता था।

2. मध्यकाल

- इस काल में शिक्षा मुख्य रूप से धार्मिक संस्थानों जैसे चर्च और मदरसों के माध्यम से संचालित होती थी। यूरोप में ईसाई मठों ने शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जबकि इस्लामी दुनिया में विज्ञान, गणित और चिकित्सा में अद्भुत प्रगति हुई।

- भारत में भी इस्लामी शासन के दौरान मदरसों और मकतबों के माध्यम से धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी।

3. पुनर्जागरण और आधुनिक युग की शुरुआत

- **पुनर्जागरण काल (14वीं-17वीं शताब्दी):** इस युग में यूरोप में शिक्षा पर वैज्ञानिक सोच, कला और तर्क आधारित दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ा। गैलीलियो, कोपर्निकस, और लियोनार्डो द विंची जैसे वैज्ञानिकों ने शिक्षा की सीमाओं को विस्तार दिया।

- **औद्योगिक क्रांति (18वीं-19वीं शताब्दी):** इस युग में शिक्षा को तकनीकी और व्यावसायिक कौशल के विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया। स्कूली शिक्षा का विस्तार हुआ और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की शुरुआत हुई।

4. आधुनिक युग

- 20वीं और 21वीं शताब्दी में शिक्षा ने तकनीकी प्रगति और वैश्विक सहयोग का लाभ उठाया। संयुक्त राष्ट्र ने शिक्षा को सार्वभौमिक अधिकार के रूप में मान्यता दी। स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक में सुधार लाने के लिए नीतियां बनाई गईं।

- डिजिटल युग में, ई-लर्निंग, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, और तकनीकी नवाचारों ने शिक्षा को अधिक सुलभ और समावेशी बना दिया है।

5. आज की स्थिति और भविष्य

- वर्तमान में, शिक्षा प्रणालियां व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के साथ-साथ वैश्विक चुनौतियों, जैसे पर्यावरणीय समस्याओं और सामाजिक न्याय को संबोधित करने के लिए बदल रही हैं। शिक्षा को हर व्यक्ति की पहुंच में लाने और इसे सतत विकास का माध्यम बनाने के लिए निरंतर प्रयास जारी हैं।

11.3 शिक्षा के प्रकार

शिक्षा मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती है—औपचारिक, अनौपचारिक, और गैर-औपचारिक। औपचारिक शिक्षा वह है जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, और विश्वविद्यालयों जैसे संगठित संस्थानों में दी जाती है। यह एक संरचित पाठ्यक्रम और सुसंगठित शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से संचालित होती है और इसमें निर्धारित डिग्री या प्रमाणपत्र प्रदान किए जाते हैं। अनौपचारिक शिक्षा वह है जो जीवन के अनुभवों, पारिवारिक परंपराओं, और सांस्कृतिक मान्यताओं के माध्यम से अर्जित होती है। यह शिक्षा व्यक्ति को व्यावहारिक ज्ञान और जीवन की नैतिकता को समझने में मदद करती है। गैर-औपचारिक शिक्षा योजनाबद्ध और लक्षित होती है, लेकिन यह पारंपरिक स्कूलिंग से अलग होती है। यह शिक्षा वयस्क शिक्षा कार्यक्रमों, कौशल विकास कार्यशालाओं, और सामुदायिक शिक्षण केंद्रों के माध्यम से दी जाती है। इन तीनों प्रकार की शिक्षा का समन्वय व्यक्तियों के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है।

11.3.1 औपचारिक शिक्षा (स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय)

औपचारिक शिक्षा एक संरचित और सुसंगठित प्रणाली है, जो स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के माध्यम से प्रदान की जाती है। इसमें निर्धारित पाठ्यक्रम, समयबद्ध कक्षाएं, और प्रमाणपत्र या डिग्री प्राप्त करने की प्रक्रिया शामिल होती है।

- **स्कूल**: प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय शिक्षा के आरंभिक चरण होते हैं, जहां छात्रों को बुनियादी ज्ञान और कौशल जैसे पढ़ाई, गणित, विज्ञान, और सामाजिक अध्ययन सिखाए जाते हैं। स्कूल शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के समग्र विकास के साथ-साथ उनकी नैतिकता और मूल्यों को भी सुदृढ़ करना होता है।

- **कॉलेज**: कॉलेज माध्यमिक शिक्षा के बाद का स्तर है, जहां छात्र विशिष्ट विषयों में अध्ययन करते हैं और विभिन्न डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करते हैं। यह शिक्षा व्यावसायिक और व्यक्तिगत विकास के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है।

- **विश्वविद्यालय**: विश्वविद्यालय शिक्षा का उच्चतम स्तर है, जो अनुसंधान और विश्लेषणात्मक कौशल को विकसित करने में मदद करता है। यहां छात्र अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र में गहराई से अध्ययन करते हैं और स्नातक, स्नातकोत्तर या डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त कर सकते हैं।

औपचारिक शिक्षा व्यक्ति को न केवल व्यक्तिगत सफलता प्राप्त करने में मदद करती है, बल्कि समाज में योगदान देने के लिए भी प्रेरित करती है। यह शिक्षा का सबसे प्रभावशाली और व्यवस्थित रूप है।

11.3.2 अनौपचारिक शिक्षा (जीवन के अनुभव, सांस्कृतिक ज्ञान)

अनौपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो किसी संरचित या औपचारिक ढांचे के बाहर प्राप्त होती है। यह हमारे दैनिक जीवन के अनुभवों, सामाजिक परिवेश, पारिवारिक परंपराओं और सांस्कृतिक मान्यताओं के माध्यम से अर्जित होती है। यह शिक्षा व्यक्ति को व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करती है, जिससे वह विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने और समस्याओं को हल करने में सक्षम बनता है।

जीवन के अनुभव, जैसे किसी व्यवसाय को सीखना, संघर्षों से सबक लेना, या व्यक्तिगत गलतियों से कुछ नया सीखना, अनौपचारिक शिक्षा का हिस्सा हैं। इसी प्रकार, सांस्कृतिक ज्ञान—जैसे त्योहारों, रीति-रिवाजों, और पारंपरिक कलाओं का अनुभव—भी इस शिक्षा का महत्वपूर्ण आयाम है।

यह प्रकार की शिक्षा व्यक्ति की सोच, सामाजिक जागरूकता और नैतिक मूल्यों को विकसित करने में सहायक होती है। अनौपचारिक शिक्षा जीवनभर चलने वाली प्रक्रिया है, जो औपचारिक शिक्षा के पूरक के रूप में कार्य करती है और व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

11.3.3 अनौपचारिक शिक्षा (कार्यशालाएँ, सामुदायिक शिक्षा)

गैर-औपचारिक शिक्षा ऐसी शिक्षा है जो संरचित और औपचारिक संस्थानों से अलग होती है, लेकिन योजनाबद्ध और उद्देश्यपूर्ण होती है। इसमें कार्यशालाएँ और सामुदायिक शिक्षा कार्यक्रम प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

- **कार्यशालाएँ (Workshops):** कार्यशालाएँ व्यावहारिक ज्ञान और कौशल को बढ़ावा देने का एक सशक्त माध्यम हैं। इनमें विभिन्न विषयों, जैसे हस्तकला, तकनीकी कौशल, नेतृत्व विकास, या भाषा प्रशिक्षण पर केंद्रित प्रशिक्षण सत्र होते हैं। कार्यशालाएँ लचीलापन प्रदान करती हैं और समयबद्ध होती हैं, जिससे प्रतिभागी अपने कौशल को निखार सकते हैं।

- **सामुदायिक शिक्षा (Community Education):** सामुदायिक शिक्षा स्थानीय समुदायों में ज्ञान और जागरूकता का प्रसार करती है। इसके माध्यम से साक्षरता, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, और नागरिक अधिकार जैसे विषयों पर ज्ञान दिया जाता है। सामुदायिक शिक्षा केंद्र आमतौर पर उन लोगों के लिए होते हैं, जो औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा सके।

गैर-औपचारिक शिक्षा से व्यक्ति अपने व्यावहारिक जीवन में आवश्यक कौशल और जागरूकता प्राप्त कर सकते हैं। यह शिक्षा जीवनभर सीखने की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करती है और समाज के समग्र विकास में योगदान देती है।

11.4 शिक्षा के मुख्य घटक

शिक्षा के मुख्य घटक वे आवश्यक तत्व हैं जो शिक्षा को प्रभावी और समग्र बनाते हैं। इनमें शिक्षक, जो ज्ञान के स्रोत और मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं, और छात्र, जिनकी जिज्ञासा और सीखने की रुचि से शिक्षा का उद्देश्य पूरा होता है, सबसे महत्वपूर्ण हैं। पाठ्यक्रम शिक्षा का आधारभूत ढांचा है, जो विषय-वस्तु, कौशल और मूल्यों को निर्धारित करता है। शिक्षण विधियाँ, जैसे व्याख्यान और समूह चर्चा, प्रभावी शिक्षण सुनिश्चित करती हैं, जबकि शिक्षण संसाधन, जैसे पाठ्यपुस्तकें और तकनीकी उपकरण, सीखने की प्रक्रिया को रोचक और आसान बनाते हैं। मूल्यांकन प्रणाली छात्रों की प्रगति का आकलन करती है, और शिक्षा प्रेरणा तथा नैतिक मूल्यों, जैसे सहनशीलता और सामाजिक जिम्मेदारी, को भी प्रोत्साहित करती है। ये सभी घटक मिलकर शिक्षा प्रक्रिया को सफल बनाते हैं।

11.4.1 शिक्षकों और शिक्षकों की भूमिका

शिक्षकों की भूमिका शिक्षा प्रणाली के केंद्र में होती है, जहाँ वे केवल ज्ञान प्रदान करने वाले नहीं, बल्कि छात्रों के मार्गदर्शक, प्रेरक और मित्र भी होते हैं। वे नैतिकता, अनुशासन और जिम्मेदारी जैसे जीवन मूल्यों को विकसित करने के साथ-साथ छात्रों की रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करते हैं। शिक्षकों का उद्देश्य छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझते हुए उनकी पूरी क्षमता का विकास करना है। तकनीकी नवाचारों को अपनाकर वे शिक्षा को आधुनिक और सुलभ बनाते हैं तथा समावेशी और सकारात्मक शिक्षण वातावरण तैयार करते हैं। संवेदनशील और योग्य शिक्षक छात्रों के साथ-साथ समाज के समग्र विकास और राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं।

11.4.2 पाठ्यक्रम और उसका विकास

पाठ्यक्रम और उसका विकास शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो छात्रों की शैक्षिक यात्रा को संरचित और प्रभावी बनाता है। पाठ्यक्रम वह संरचना है जिसमें शिक्षण और सीखने की सामग्री, उद्देश्यों और गतिविधियों को संगठित किया जाता है। इसका विकास सामाजिक, सांस्कृतिक, और तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप होना चाहिए।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

1. छात्रों में ज्ञान, कौशल और मूल्यों का समग्र विकास करना।
2. सामाजिक आवश्यकताओं और व्यक्तियों की व्यक्तिगत क्षमताओं के बीच संतुलन बनाना।
3. छात्रों को आधुनिक युग की चुनौतियों और अवसरों के लिए तैयार करना।

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया:

1. **आवश्यकताओं का विश्लेषण**: समाज और छात्रों की वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

2. **सामग्री का चयन**: प्रासंगिक, रोचक और व्यावहारिक सामग्री का चयन किया जाता है, जो छात्रों के स्तर और शिक्षा के उद्देश्यों से मेल खाती हो।
3. **पाठ्यचर्या का डिजाइन**: इसमें शिक्षण विधियाँ, मूल्यांकन प्रणाली और सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों को शामिल किया जाता है।
4. **पुनरीक्षण और सुधार**: समय-समय पर पाठ्यक्रम का मूल्यांकन और सुधार किया जाता है, ताकि यह बदलती परिस्थितियों के अनुरूप बना रहे।

आधुनिक पाठ्यक्रम में सुधार:

- तकनीकी कौशल और डिजिटल साक्षरता को प्राथमिकता दी जाए।
- रटने की बजाय व्यावहारिक और कौशल-आधारित शिक्षण को बढ़ावा दिया जाए।
- नैतिक और सामाजिक मूल्यों को शामिल किया जाए।
- बहुभाषी और सांस्कृतिक विविधता को समावेशित किया जाए।

बोध प्रश्न

1. शिक्षा का आधारभूत ढांचा क्या है?

…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………
…………………………………………………………………………………………

11.4.3 शिक्षण संसाधनों और बुनियादी ढाँचे का महत्व

शिक्षण संसाधन और बुनियादी ढाँचा शिक्षा की गुणवत्ता और सुलभता सुनिश्चित करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। संसाधन, जैसे पाठ्यपुस्तकें, डिजिटल उपकरण, और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, ज्ञान बढ़ाने और सीखने की रुचि विकसित करने में सहायक होते हैं, जबकि शिक्षकों को विषयों को अधिक रोचक तरीके से प्रस्तुत करने में मदद करते हैं। बुनियादी ढाँचा, जैसे स्कूल भवन, स्वच्छ शौचालय, और तकनीकी सुविधाएँ, शिक्षा तक पहुँच, सुरक्षा, और समावेशी वातावरण प्रदान करता है। यह छात्रों की उपस्थिति, प्रदर्शन, और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देकर शिक्षा को अधिक समावेशी और प्रभावी बनाता है।

11.5 शिक्षा का महत्व (importance of education)

शिक्षा मानव जीवन में गहरा प्रभाव डालती है, यह केवल ज्ञान का स्रोत नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व के समग्र विकास, आत्मनिर्भरता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देती है। शिक्षित व्यक्ति समाज की प्रगति में

योगदान करते हैं और गरीबी उन्मूलन व रोजगार के अवसर बढ़ाने में सहायक होते हैं। शिक्षा नैतिकता, सहिष्णुता और सांस्कृतिक समझ विकसित करती है, जबकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण और समस्याओं के समाधान में मदद करती है। यह सतत विकास और पर्यावरणीय जागरूकता को प्रेरित करती है, जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक सशक्तिकरण संभव होता है।

11.5.1 व्यक्तिगत विकास और कैरियर के अवसरों पर प्रभाव

शिक्षा और अनुभव के समागम से व्यक्तिगत विकास और कैरियर के अवसर सशक्त बनते हैं। यह आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, आलोचनात्मक सोच, और रचनात्मकता को बढ़ावा देता है, साथ ही नैतिकता, सामाजिक कौशल और जिम्मेदारी जैसे मूल्यों का विकास करता है। रोजगार योग्य कौशल, व्यावसायिक प्रशिक्षण, और डिजिटल साक्षरता बेहतर करियर अवसरों और वैश्विक संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करते हैं। शिक्षण संस्थानों और कार्यस्थलों से मजबूत नेटवर्किंग करियर में उन्नति के लिए सहायक होती है, जिससे व्यक्ति आत्मनिर्भर और सामाजिक रूप से सशक्त बनता है।

11.5.2 सामाजिक समानता के लिए एक उपकरण के रूप में शिक्षा

शिक्षा सामाजिक समानता को बढ़ावा देने का एक शक्तिशाली माध्यम है, जो आर्थिक असमानता को कम करके गरीबी चक्र तोड़ने, लड़कियों और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर लैंगिक भेदभाव मिटाने, और हाशिए पर मौजूद समूहों को समान अवसर प्रदान करने में सहायक है। यह विभिन्न संस्कृतियों के प्रति सहिष्णुता और सामाजिक बंधनों को मजबूत करते हुए व्यक्तियों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाती है, जिससे वे अन्याय का विरोध कर सकें और समाज को अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी बना सकें।

11.5.3 शिक्षा के माध्यम से वैश्विक समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देना

शिक्षा समाजों और संस्कृतियों के बीच एकता और शांति को सुदृढ़ करने के लिए सहिष्णुता, सम्मान और समावेशिता को बढ़ावा देती है। यह सांस्कृतिक जागरूकता, सहिष्णुता, और विविध जीवनशैली के प्रति सम्मान सिखाती है। शिक्षा वैश्विक मुद्दों, जैसे पर्यावरण संरक्षण और मानव अधिकारों, पर जागरूकता पैदा करती है और अंतरराष्ट्रीय संवाद और सहयोग को प्रोत्साहित करती है। यह भेदभाव और हिंसा की प्रवृत्ति को कम करके समानता और शांति की भावना विकसित करने में मदद करती है।

बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करें...

2. रोजगार योग्य कौशल, व्यावसायिक प्रशिक्षण, और डिजिटल साक्षरता बेहतर करियर अवसरों और वैश्विक संभावनाओं का मार्ग..करते हैं।

11.6 शिक्षा में चुनौतियाँ

शिक्षा के क्षेत्र में कई चुनौतियाँ इसे प्रभावी और सभी के लिए सुलभ बनाने में बाधा उत्पन्न करती हैं। सबसे बड़ी समस्या समान पहुंच और अवसरों की कमी है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, लड़कियों, और विकलांग बच्चों के लिए। गुणवत्ता की कमी, पुराने पाठ्यक्रम, अपर्याप्त संसाधन, और प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करते हैं। साथ ही, अवसंरचना, जैसे विद्यालय भवन, बिजली, और तकनीकी सुविधाओं की कमी, और डिजिटल विभाजन भी बड़ी बाधाएँ हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान न देना, परीक्षा का दबाव, और सामाजिक परिस्थितियाँ छात्रों के कल्याण को प्रभावित करती हैं। इन सभी मुद्दों का समाधान शिक्षा को अधिक समावेशी और प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है।

11.6.1 पहुँच और संसाधनों में असमानताएँ

शिक्षा प्रणाली में पहुँच और संसाधनों में असमानताएँ बड़ी चुनौती हैं, जो विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों, कमजोर वर्गों और हाशिए पर मौजूद समुदायों को प्रभावित करती हैं। बुनियादी अवसंरचना जैसे स्कूल भवन, बिजली, पानी, शौचालय, और शिक्षण सामग्री की कमी गुणवत्ता शिक्षा में बाधा बनती है। यह असमानता लड़कियों, विकलांग बच्चों, और अल्पसंख्यकों को सबसे अधिक प्रभावित करती है, जो सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं का सामना करते हैं। डिजिटल विभाजन के कारण ई-लर्निंग और ऑनलाइन शिक्षा तक इन समुदायों की पहुँच सीमित हो जाती है। इन चुनौतियों का समाधान नीतिगत सुधार, संसाधनों के समान वितरण, और डिजिटल बुनियादी ढांचे के विकास के माध्यम से संभव है, ताकि शिक्षा को सभी के लिए समावेशी और सुलभ बनाया जा सके।

11.6.2 पुरानी प्रणालियाँ और पाठ्यक्रम

पुरानी प्रणालियाँ और पाठ्यक्रम शिक्षा के क्षेत्र में एक गंभीर समस्या हैं, जो इसे आधुनिक समय की मांगों के अनुकूल बनने से रोकती हैं। सैद्धांतिक और रटने पर आधारित पद्धतियाँ छात्रों की रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच को बाधित करती हैं, जबकि जटिल और अप्रासंगिक पाठ्यक्रम आधुनिक कार्यक्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहते हैं। इन प्रणालियों में विविधता और समावेशिता की कमी भी समाज के विभिन्न समूहों की जरूरतों को अनदेखा करती है। इस समस्या के समाधान के लिए शिक्षा में नवाचार, व्यावहारिक पाठ्यक्रम, डिजिटल उपकरणों का उपयोग, और 21वीं सदी के कौशल को शामिल करना अनिवार्य है, ताकि शिक्षा अधिक प्रभावी और प्रासंगिक बन सके।

11.6.3 डिजिटल विभाजन और तकनीकी सीमाएँ

डिजिटल विभाजन और तकनीकी सीमाएँ शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ी चुनौती हैं, जो विशेष रूप से कमजोर वर्गों और ग्रामीण क्षेत्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित करती हैं। आधुनिक तकनीकी साधनों तक असमान पहुँच, जैसे कंप्यूटर, स्मार्टफोन और इंटरनेट, ग्रामीण-शहरी और आर्थिक वर्गों के बीच खाई को गहरा करती है।

तकनीकी संसाधनों और डिजिटल साक्षरता की कमी के साथ-साथ अवसंरचना की समस्याएँ, जैसे धीमा इंटरनेट और बिजली का अभाव, ऑनलाइन शिक्षा के प्रभाव को सीमित कर देती हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सभी के लिए डिजिटल उपकरण और इंटरनेट की उपलब्धता, मुफ्त वाई-फाई सेवाएँ, और डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों को बढ़ावा देना आवश्यक है, ताकि शिक्षा को समावेशी और प्रभावी बनाया जा सके।

बोध प्रश्न

3. शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ी चुनौती क्या हैं?

……………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………
……………………………………………………………………………………………

11.7 शिक्षा में नवाचार और समाधान (Innovations and Solutions in Education)

शिक्षा में नवाचार और समाधान इसे अधिक प्रभावी, समावेशी और प्रासंगिक बनाने के लिए आवश्यक हैं। तकनीकी नवाचार, जैसे ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सीखने की प्रक्रिया को सुलभ और रोचक बनाते हैं, जबकि व्यावहारिक और कौशल-आधारित पाठ्यक्रम छात्रों को रोजगार योग्य कौशल प्रदान करते हैं। कमजोर समुदायों के लिए मुफ्त शिक्षा और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता असमानताओं को कम करती है। शिक्षकों के प्रशिक्षण और सामुदायिक सहभागिता से शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है। साथ ही, छात्रों की मानसिक भलाई के लिए परामर्श सेवाएँ और जागरूकता कार्यक्रम आवश्यक हैं, जिससे शिक्षा प्रणाली आधुनिक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सके।

11.7.1 शिक्षा में तकनीकी उन्नति (ई-लर्निंग, एआई, आदि)

शिक्षा में तकनीकी उन्नति ने इसे अधिक सुलभ, प्रभावी और व्यक्तिगत बना दिया है, पारंपरिक कक्षाओं की सीमाओं को तोड़ते हुए वैश्विक स्तर पर फैलाया है। ई-लर्निंग ने छात्रों को स्व-गति और व्यक्तिगत रूप से सीखने का अवसर प्रदान किया है, जबकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) ने व्यक्तिगत और इंटरैक्टिव शिक्षण सामग्री विकसित करने में मदद की है। इंटरनेट और डिजिटल प्रौद्योगिकी ने छात्रों को विश्वभर की शिक्षण सामग्री तक पहुँच प्रदान की है। गेमिफिकेशन ने शिक्षण को रोचक बनाया है, और वर्चुअल/ऑगमेंटेड रियलिटी (VR/AR) ने व्यावहारिक और वास्तविक जीवन जैसे अनुभव प्रदान किए हैं। डेटा एनालिटिक्स शिक्षकों को छात्रों की प्रगति को मापने और उनके प्रदर्शन का विश्लेषण करने में सहायक है। ये उन्नतियाँ शिक्षा को आधुनिक और समावेशी बना रही हैं।

11.7.2 समावेशी शिक्षा के लिए नीतियाँ और सुधार

समावेशी शिक्षा नीतियाँ और सुधार शिक्षा प्रणाली को सभी के लिए समान और सुलभ बनाने का प्रयास करती हैं, विशेष रूप से विकलांग बच्चों, हाशिए पर मौजूद समुदायों और लैंगिक अल्पसंख्यकों के लिए। इसमें ऐसी

नीतियाँ शामिल हैं जो भेदभाव रहित शिक्षा सुनिश्चित करती हैं, जैसे भारत का "द राइट टू एज़ुकेशन एक्ट"। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए सहायक उपकरण और प्रशिक्षकों की उपलब्धता, लड़कियों के लिए छात्रवृत्ति और सुरक्षित शिक्षा तक पहुंच, और मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना प्रमुख कदम हैं। साथ ही, डिजिटल समावेशन के तहत वंचित छात्रों को डिजिटल उपकरण और इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध कराना अनिवार्य है। ये उपाय शिक्षा को सभी के लिए समावेशी और गुणवत्तापूर्ण बनाने में सहायक हैं।

समावेशी शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए कई सुधारों की आवश्यकता है, जैसे संवेदनशील शिक्षकों की नियुक्ति, जिन्हें समावेशी शिक्षा के लिए प्रशिक्षित किया जाए। स्कूलों में रैंप, ऑडियो-विजुअल साधन और विशेष लर्निंग उपकरण जैसी आवश्यक अवसंरचना उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। सामुदायिक भागीदारी और जागरूकता कार्यक्रम समुदाय और माता-पिता को इस प्रक्रिया का हिस्सा बनाते हैं। समावेशी खेल और सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ छात्रों के बीच समानता और दोस्ती को बढ़ावा देती हैं। एक कुशल मॉनिटरिंग सिस्टम समावेशी शिक्षा की प्रगति को मापने और इसे और बेहतर बनाने में मदद करता है। ये सुधार न केवल समानता को बढ़ावा देते हैं, बल्कि समाज के हर वर्ग को सशक्त बनाते हैं और समग्र विकास की ओर अग्रसर करते हैं।

11.7.3 शिक्षा के विकास में समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की भूमिका

शिक्षा के विकास में समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। समुदाय शिक्षा प्रणाली के आधार स्तंभ के रूप में कार्य करता है, जहाँ स्थानीय संगठन, माता-पिता, और सामुदायिक नेता छात्रों की शैक्षिक यात्रा को सहयोग और प्रोत्साहन प्रदान करते हैं। समुदाय स्कूलों में बुनियादी ढाँचा सुधार, बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन, और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा से जोड़ने में मदद करता है।

दूसरी ओर, अंतर्राष्ट्रीय प्रयास शिक्षा को वैश्विक प्राथमिकता बनाने में मदद करते हैं। संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठनों के शिक्षा पहल, जैसे सतत विकास लक्ष्य 4 (SDG 4), सभी के लिए गुणवत्ता शिक्षा सुनिश्चित करने पर केंद्रित हैं। विश्व बैंक और यूनिसेफ जैसे संस्थान वित्तीय सहायता, अध्ययनों, और परियोजनाओं के माध्यम से शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करते हैं।

इसके अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा देने, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू करने, और संकटग्रस्त क्षेत्रों में शिक्षा को पुनर्जीवित करने में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों का सामूहिक प्रभाव समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और सुलभ शिक्षा की ओर शिक्षा प्रणाली को अग्रसर करता है, जिससे समग्र विकास और वैश्विक सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलता है।

बोध प्रश्न

3. डिजिटल समावेशन के तहत वंचित छात्रों को कौन सी सुविधा उपलब्ध कराना अनिवार्य है।

....

....

11.8 सारांश

शिक्षा का विकास समानता, समावेशिता, और आधुनिक तकनीकी आवश्यकताओं पर आधारित है। इसमें सामुदायिक सहभागिता, जैसे बुनियादी ढाँचे का सुधार और जागरूकता, और अंतर्राष्ट्रीय प्रयास, जैसे सतत विकास लक्ष्य (SDG 4) का समर्थन, शामिल हैं। तकनीकी उन्नति, जैसे ई-लर्निंग और एआई, शिक्षा को सुलभ और व्यक्तिगत बना रही है। सुधार के लिए संवेदनशील शिक्षक, समावेशी कक्षाएँ, और डिजिटल समावेशन को बढ़ावा देना आवश्यक है। समावेशी नीतियाँ और समाधान विकलांग बच्चों, हाशिए पर मौजूद समुदायों, और लैंगिक अल्पसंख्यकों को समान अवसर सुनिश्चित करते हैं। शिक्षा में नवाचार, समुदाय और अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी इसे सशक्त और समावेशी बनाते हैं।

11.9 पारिभाषिक शब्दावली

1. SDG 4- जिसका अर्थ है "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा", संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में से एक है, जिसका उद्देश्य सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना और सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देना है।

2. समुदाय शिक्षा- समुदाय को शिक्षा से जोड़ना यह एक प्रक्रिया है जो शिक्षा को समुदाय से जोड़ती है ताकि विद्यार्थी समुदाय की समस्याओं को समझ सकें और उनमें सुधार करने में सक्रिय भूमिका निभा सकें।

3. औपचारिक शिक्षा- एक शिक्षा प्रणाली जो स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में है और संरचित और संगठित है।

4. अनौपचारिक शिक्षा- बिना किसी औपचारिक, संरचित प्रणाली या कक्षा के वातावरण से सीखना

5. गैर-औपचारिक शिक्षा- एक ऐसी शिक्षा है जो औपचारिक शिक्षा प्रणाली से बाहर दी जाती है, लेकिन संगठित रूप से दी जाती है और उद्देश्य से दी जाती है।

11.10 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

1. पाठ्यक्रम
2. प्रशस्त
3. डिजिटल विभाजन और तकनीकी सीमाएँ
4. डिजिटल उपकरण और इंटरनेट

11.11 सन्दर्भ सूची

1. मिश्रा मंजू- भारतीय शिक्षा पद्धति और उसकी समस्याएं, वर्ष- 2007, ओमेगा पब्लिकेशन।

2. पचौरी, डॉ. गिरीश- शिक्षा और समाज, वर्ष- 2007, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ उत्तर प्रदेश।

3. फर्स्वान, डी. एस. – अ रिव्यु ऑफ़ दी डिफरेंट प्रोब्लेम्स इन बी. एड. स्पेशल एजुकेशन जर्नल ऑफ़ एडवांस एजुकेशन एंड साइंसेज, वर्ष- 2023।

4. नेशनल एजुकेशन पालिसी- 2020, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया न्यू डेल्ही।

5. वर्ल्ड बैंक ग्रुप एजुकेशन स्ट्रैटिजी 2020 (2011)- लर्निंग फॉर आल: इन्वेस्टिंग इन पीपुल्स नॉलेज एंड स्किल्स तो प्रोमोट डेवलपमेंट, रिट्राइव्ड सेप्टेम्बर- 2015 ।

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भट्टाचार्य एवं श्रीनिवास- सोसाइटी एंड एजुकेशन, वर्ष- 1977, अकादमिया पब्लिकेशन कलकत्ता ।

2. दुर्खीम, इमाइल- एजुकेशन एंड सोशियोलॉजी, फ्री प्रेस, न्यूयार्क ।

3. जॉन डीवी- एजुकेशन एंड सोशल चेंज, सोशल फ्रंटियरस ।

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के कितने प्रकार होते हैं? व्याख्या कीजिए।
2. शिक्षा के महत्व को विस्तार से समझाइये।
3. शिक्षा में कौन-कौन सी चुनौतियाँ हैं? वर्णन कीजिए।
4. शिक्षा में नवाचार और समाधान के संदर्भ में बताइये।

इकाई 12 प्रेस
Press

इकाई की रूपरेखा:

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं विकास: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

12.3 प्रेस की स्वतंत्रता का महत्व एवं भूमिका

12.4 प्रेस के प्रकार

12.4.1 प्रिंट मीडिया (समाचार पत्र, पत्रिकाएं)

12.4.1 प्रसारण मीडिया (टेलीविजन और रेडियो)

12.4.1 डिजिटल और ऑनलाइन पत्रकारिता

12.5 लोकतंत्र में प्रेस की भूमिका

12.5.1 लोकतंत्र का चौथा स्तंभ प्रेस

12.5.2 खोजी पत्रकारिता और जवाबदेही

12.5.3 जनमत और नीतियों पर प्रभाव

12.6 प्रेस के समक्ष चुनौतियाँ

12.6.1 फर्जी खबरें और गलत सूचना

12.6.2 सेंसरशिप और कानूनी चुनौतियाँ

12.6.3 डिजिटलीकरण का प्रभाव और पाठकों की घटती संख्या

12.7 प्रेस में भविष्य के रुझान

12.7.1 पत्रकारिता में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

12.7.2 नागरिक पत्रकारिता और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म

12.7.3 डिजिटल युग में पारंपरिक मीडिया की स्थिरता

12.8 प्रेस से संबंधित कुछ प्रमुख कानून

12.9 सारांश

12.10 पारिभाषिक शब्दावली

12.11 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

12.12 सन्दर्भ सूची

12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना (Introduction)

प्रेस, जिसे अक्सर चौथा स्तंभ कहा जाता है, जनता और उन्हें नियंत्रित करने वाली संस्थाओं के बीच एक सेतु का काम करके समाजों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक प्रहरी के रूप में कार्य करता है, जो सत्ता में बैठे लोगों को जवाबदेह ठहराता है, जबकि सार्वजनिक चर्चा और बहस के लिए एक मंच प्रदान करता है। पारंपरिक रूप से समाचार पत्रों और पत्रिकाओं जैसे प्रिंट मीडिया से बना प्रेस समय के साथ रेडियो, टेलीविजन और अब डिजिटल प्लेटफॉर्म को शामिल करने के लिए विकसित हुआ है। इसके प्राथमिक कार्यों में नागरिकों को वर्तमान घटनाओं के बारे में सूचित करना, उन्हें जटिल मुद्दों पर शिक्षित करना, दर्शकों का मनोरंजन करना और सामाजिक कारणों की वकालत करना शामिल है। डिजिटल युग के आगमन ने प्रेस के दायरे और पहुंच का विस्तार किया है, जिससे समाचारों का तेजी से प्रसार और पाठकों के साथ अधिक इंटरैक्टिव जुड़ाव संभव हुआ है। हालांकि, इसने नई चुनौतियां भी पेश की हैं, जैसे गलत सूचना का प्रसार, मीडिया में विश्वास में कमी ऐसी दुनिया में जहां सूचना ही शक्ति है, प्रेस एक महत्वपूर्ण संस्था बनी हुई है, जो सत्य और जवाबदेही के अपने मिशन को कायम रखने के लिए तकनीकी प्रगति और सामाजिक बदलावों के साथ तालमेल बिठाती रहती है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- प्रेस के विषय में समझ पायेंगे
- प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं प्रेस की भूमिका के विषय में जान पायेंगे।
- प्रेस की स्वतंत्रता एवं भूमिका के संबंध में जान सकेंगे।
- प्रेस के प्रकार, लोकतंत्र में प्रेस की भूमिका के संबंध में जान सकेंगे।
- प्रेस के समक्ष चुनौतियों, भविष्य के रूझानों एवं प्रेस से संबंधित प्रमुख कानूनों के विषय में जान सकेंगे।

12.2 प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं विकास: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को ऐतिहासिक रूप से सत्ता बनाए रखने के लिए उत्सुक अधिकारियों द्वारा दमन का सामना करना पड़ा है। प्लेटो, मैकियावेली और हेगेल जैसे दार्शनिकों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोध करते हुए आम व्यक्तियों पर शासकों की श्रेष्ठता पर जोर दिया। प्लेटो ने द रिपब्लिक में शासकों द्वारा संस्कृति, लेखन और कलाओं को नियंत्रित करने की वकालत की। हालाँकि, 16वीं शताब्दी में दृष्टिकोण बदलने लगे, जब जॉन मिल्टन के एरियोपैगिटिका ने व्यक्तिगत अधिकारों और सत्य की अमर प्रकृति पर जोर दिया। 18वीं शताब्दी तक, जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस विचारधारा को और आगे बढ़ाया, हालाँकि बाद में कुछ संशोधन किए गए। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 19 से 22 के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया, साथ ही सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और बहुत कुछ के लिए सात प्रतिबंध भी लगाए। भारत ने 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम लागू करके इस अधिकार को और मजबूत किया, पारदर्शिता को बढ़ावा दिया और सार्वजनिक विमर्श को सशक्त बनाया।

प्रेस का ऐतिहासिक विकास संचार, प्रौद्योगिकी और समाज में मानवता की प्रगति का प्रतिबिंब है। प्रेस की शुरुआत प्राचीन काल में हस्तलिखित पांडुलिपियों और सार्वजनिक उद्घोषणाओं के माध्यम से सूचना के प्रसार के साथ हुई थी। 15वीं शताब्दी में जोहान्स गुटेनबर्ग द्वारा प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार एक क्रांतिकारी मील का पत्थर साबित हुआ, जिसने समाचार पत्रों और पैम्फलेट जैसी मुद्रित सामग्रियों के बड़े पैमाने पर उत्पादन को सक्षम किया। इस नवाचार ने सूचना को अधिक सुलभ बनाया, ज्ञान का प्रसार करके और सार्वजनिक प्रवचन को सशक्त बनाकर सुधार और ज्ञानोदय जैसे आंदोलनों को बढ़ावा दिया। 17वीं और 18वीं शताब्दी में यूरोप और अमेरिका में नियमित समाचार पत्रों का उदय हुआ, जिसने अमेरिकी क्रांति और फ्रांसीसी क्रांति जैसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क्षणों के दौरान जनमत को आकार दिया। 19वीं शताब्दी तक, मुद्रण प्रौद्योगिकी और परिवहन में प्रगति, जैसे कि भाप से चलने वाले प्रेस और रेलवे, ने प्रेस की पहुंच और सामर्थ्य को और बढ़ा दिया। इस अवधि में खोजी पत्रकारिता का उदय भी हुआ, जिसने सामाजिक अन्याय को उजागर किया और सुधारों की वकालत की। 20वीं सदी में रेडियो, टेलीविज़न और अंततः इंटरनेट का आगमन हुआ, जिसने समाचारों को वितरित करने और उपभोग करने के तरीके को बदल दिया। डिजिटल युग ने ऑनलाइन समाचार प्लेटफ़ॉर्म, सोशल मीडिया और रीयल-टाइम रिपोर्टिंग की शुरुआत की, जिससे प्रेस अधिक तात्कालिक और इंटरैक्टिव बन गया। अपने विकास के दौरान, प्रेस ने जनता को सूचित करने, सत्ता को जवाबदेह बनाने और समाज को आकार देने, तकनीकी और सांस्कृतिक बदलावों के अनुकूल होने और सच्चाई और जवाबदेही के अपने मिशन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

12.3 प्रेस की स्वतंत्रता का महत्व एवं भूमिका

प्रेस की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आधारशिला है और एक सूचित, सशक्त और जवाबदेह समाज के लिए एक आवश्यक सुरक्षा है। यह पत्रकारों और मीडिया संगठनों को सेंसरशिप, जबरदस्ती या प्रतिशोध के डर के बिना जांच और रिपोर्ट करने की अनुमति देता है, यह सुनिश्चित करता है कि जनता के पास सटीक और निष्पक्ष जानकारी तक पहुँच हो। यह स्वतंत्रता प्रेस को एक प्रहरी के रूप में काम करने में सक्षम बनाती है, भ्रष्टाचार, दुर्भावना और सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करती है, जबकि शासन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में पारदर्शिता को बढ़ावा देती है। यह मानवाधिकारों की रक्षा करने, हाशिए पर पड़ी आवाज़ों को बढ़ाने और महत्वपूर्ण मुद्दों पर सार्वजनिक चर्चा को प्रोत्साहित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संकट के समय में, समय पर सूचना प्रसारित करने, गलत सूचनाओं का मुकाबला करने और विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में एक अप्रतिबंधित प्रेस महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, एक स्वतंत्र प्रेस नागरिकों को नेताओं को जवाबदेह ठहराने, सूचित निर्णय लेने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने का अधिकार देता है। हालाँकि, प्रेस की स्वतंत्रता के लिए खतरे - राजनीतिक हस्तक्षेप और सेंसरशिप से लेकर पत्रकारों के खिलाफ हिंसा तक - इन आवश्यक कार्यों को करने की इसकी क्षमता को कमजोर कर सकते हैं। इस प्रकार, प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करना और उसे कायम रखना न केवल एक कानूनी दायित्व है, बल्कि न्याय, सत्य और लोकतंत्र के मूल्यों को संरक्षित करने के लिए एक नैतिक अनिवार्यता भी है।

प्रेस मीडिया संगठनों और व्यक्तियों के सामूहिक निकाय को संदर्भित करता है जो समाचार और सूचना को एकत्रित करने, रिपोर्ट करने और जनता तक पहुँचाने के लिए जिम्मेदार होते हैं। परंपरागत रूप से, प्रेस में समाचार पत्र और पत्रिकाएँ जैसे- प्रिंट आउटलेट शामिल थे, लेकिन अब इसमें प्रसारण मीडिया, डिजिटल समाचार प्लेटफ़ॉर्म और स्वतंत्र पत्रकारिता शामिल हैं। इसकी भूमिका केवल घटनाओं की रिपोर्टिंग से आगे तक फैली हुई है - यह लोकतंत्र और समाज के एक महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में कार्य करता है। प्रेस एक प्रहरी के रूप में कार्य करता है, सरकारों, निगमों और अन्य संस्थानों को उनके कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराता है। यह नागरिकों को सूचित करने में एक आवश्यक भूमिका निभाता है, जिससे वे राजनीति और अर्थशास्त्र से लेकर स्वास्थ्य और शिक्षा तक के मामलों पर अच्छी तरह से सूचित निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रेस विविध दृष्टिकोण प्रदान करके और बहस के लिए एक मंच प्रदान करके सार्वजनिक संवाद को बढ़ावा देता है। यह अन्याय को उजागर करके, सुधारों की वकालत करके और कम प्रतिनिधित्व वाली आवाज़ों को बढ़ाकर सामाजिक प्रगति की वकालत भी करता है। आधुनिक समय में, प्रेस को गलत सूचनाओं का मुकाबला करने, सेंसरशिप को नेविगेट करने और व्यापक संदेह के युग में विश्वसनीयता बनाए रखने जैसी उभरती चुनौतियों का

सामना करना पड़ता है। इन बाधाओं के बावजूद, सत्य और पारदर्शिता के प्रति इसकी प्रतिबद्धता महत्वपूर्ण बनी हुई है, तथा यह सुनिश्चित करती है कि सटीक सूचना का मुक्त प्रवाह एक सूचित और सशक्त समाज के मूल्यों को कायम रखे।

12.4 प्रेस के प्रकार

प्रेस को प्रारूप, पहुंच और उद्देश्य के आधार पर कई प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक विविध दर्शकों और उद्देश्यों को पूरा करता है। प्रिंट मीडिया पारंपरिक रूपों में से एक है, जिसमें समाचार पत्र, पत्रिकाएं और जर्नल शामिल हैं, जो समाचार, राय और विश्लेषणों का विस्तृत कवरेज प्रदान करते हैं। प्रसारण मीडिया, जैसे रेडियो और टेलीविजन, वास्तविक समय के अपडेट और दृश्य या ऑडियो-आधारित समाचार प्रदान करते हैं, जिससे यह व्यापक दर्शकों के लिए सुलभ हो जाता है। डिजिटल मीडिया, सबसे हालिया विकास है, जिसमें ऑनलाइन समाचार वेबसाइट, ब्लॉग और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म शामिल हैं, जो व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के अनुरूप त्वरित और इंटरैक्टिव सामग्री प्रदान करते हैं। एक अन्य वर्गीकरण फोकस पर आधारित है, जैसे मुख्यधारा का प्रेस, जो व्यापक दर्शकों को आकर्षित करने वाले सामान्य समाचारों को कवर करता है इसके अतिरिक्त, टैब्लॉयड प्रेस और ब्रॉडशीट प्रेस प्रारूप और संपादकीय शैली के आधार पर भिन्न होते हैं, टैब्लॉयड अक्सर सनसनीखेज कहानियों और मनोरंजन को तरजीह देते हैं, जबकि ब्रॉडशीट पत्रकारिता के प्रति गंभीर और गहन दृष्टिकोण रखते हैं। ये विभिन्न प्रकार के प्रेस सामूहिक रूप से सूचना प्रसार के समृद्ध और गतिशील परिदृश्य में योगदान करते हैं, जो समाज की उभरती जरूरतों के अनुकूल होते हैं और जनता को सूचित करने, शिक्षित करने और उन्हें जोड़ने की भूमिका निभाते हैं।

12.4.1 प्रिंट मीडिया (समाचार पत्र, पत्रिकाएं)

प्रिंट मीडिया से तात्पर्य पारंपरिक मुद्रित प्रारूपों जैसे समाचार पत्रों और पत्रिकाओं से है, जो सूचना, मनोरंजन और शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह माध्यम पाठकों को वर्तमान घटनाओं के बारे में सूचित करने, गहन विश्लेषण प्रदान करने और विविध हितों और जनसांख्यिकी को पूरा करने का काम करता है। डिजिटल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के बावजूद, प्रिंट मीडिया हमारे संचार परिदृश्य का एक अनिवार्य हिस्सा बना हुआ है।

अख़बार, प्रिंट मीडिया का एक प्राथमिक रूप, दैनिक या साप्ताहिक रूप से प्रकाशित होते हैं और राजनीति, व्यवसाय, खेल और मनोरंजन सहित कई विषयों को कवर करते हैं। वे आम तौर पर ब्रेकिंग न्यूज़, खोजी रिपोर्ट, संपादकीय, मानवीय रुचि की कहानियाँ और नौकरी लिस्टिंग, रियल एस्टेट और बहुत कुछ के लिए वर्गीकृत विज्ञापन पेश करते हैं। समाचार पत्र गहन कवरेज और अपने मुद्रित प्रारूप की ठोस विश्वसनीयता का लाभ देते

हैं, स्वतंत्र रिपोर्टिंग को बढ़ावा देते हैं जो लोकतंत्र और जवाबदेही को मजबूत करता है। हालाँकि, समाचार पत्रों को महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म से प्रतिस्पर्धा के कारण पाठकों की संख्या में गिरावट और विज्ञापन राजस्व में भारी कमी, जो ऐतिहासिक रूप से उनकी आय का प्राथमिक स्रोत रहा है।

पत्रिकाएँ, प्रिंट मीडिया का एक अन्य प्रमुख घटक, फैशन, स्वास्थ्य, यात्रा या विज्ञान जैसे विशिष्ट हितों के अनुरूप केंद्रित सामग्री में विशेषज्ञ हैं। वे विशिष्ट दर्शकों को ध्यान में रखते हैं और साप्ताहिक, मासिक या त्रैमासिक आधार पर प्रकाशित होते हैं। पत्रिकाएँ अपने आकर्षक डिज़ाइन, उच्च-गुणवत्ता वाली छवियों और लंबे-फ़ॉर्म लेखों के लिए जानी जाती हैं। उन्हें सामान्य-रुचि वाली पत्रिकाओं, विशेष उद्योग-केंद्रित प्रकाशनों और व्यापार या पेशेवर पत्रिकाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। पत्रिकाएँ विशिष्ट विषयों में विस्तृत जानकारी देने और अपने सौंदर्य अपील और विषयगत गहराई के माध्यम से अपने दर्शकों को आकर्षित करने में उत्कृष्ट हैं। हालाँकि, उन्हें उच्च उत्पादन और वितरण लागत और ऑनलाइन ब्लॉग, सोशल मीडिया और डिजिटल पत्रिकाओं से कड़ी प्रतिस्पर्धा जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

ऐतिहासिक रूप से, प्रिंट मीडिया का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। 15वीं शताब्दी में गुटेनबर्ग प्रेस के आविष्कार ने सूचना साझा करने में क्रांति ला दी, और तब से समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने क्रांतिकारी विचारों को फैलाने और सामाजिक सुधारों की वकालत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे नागरिक अधिकारों, पर्यावरण संरक्षण और अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में जागरूकता बढ़ाने में सहायक रहे हैं, जिससे इतिहास के पाठ्यक्रम को आकार देने में मदद मिली है।

प्रिंट मीडिया शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देने, सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और नागरिक भागीदारी को प्रोत्साहित करके समाज में महत्वपूर्ण योगदान देता है। समाचार पत्र और पत्रिकाएँ ऐतिहासिक और सामाजिक परिवर्तनों का दस्तावेजीकरण करती हैं, जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए सूचना का एक विश्वसनीय संग्रह प्रदान करती हैं। वे सार्वजनिक चर्चा के लिए मंच के रूप में भी काम करते हैं, जिससे महत्वपूर्ण मुद्दों पर सूचित बहस संभव होती है।

पाठकों की घटती संख्या के मद्देनजर, प्रिंट मीडिया खुद को बनाए रखने के लिए हाइब्रिड मॉडल अपना रहा है। डिजिटल संस्करण अब पारंपरिक प्रिंट प्रारूपों के पूरक हैं, और स्थिरता को बढ़ाने के लिए पर्यावरण के अनुकूल प्रथाओं को अपनाया जा रहा है। इसके अलावा, सदस्यता-आधारित मॉडल के माध्यम से वैयक्तिकरण प्रिंट मीडिया को प्रभावी रूप से विशिष्ट दर्शकों को लक्षित करने की अनुमति देता है। जबकि प्रिंट मीडिया को डिजिटल युग में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, इसका ऐतिहासिक महत्व और स्थायी प्रासंगिकता इसे समाज में सूचना और संचार का आधार बनाती है।

12.4.2 प्रसारण मीडिया (टेलीविजन और रेडियो)

प्रसारण मीडिया, जिसमें टेलीविजन और रेडियो शामिल हैं, सूचना प्रसारित करने, मनोरंजन प्रदान करने और सार्वजनिक जुड़ाव को बढ़ावा देने में एक अभिन्न भूमिका निभाता है। जन संचार उपकरण के रूप में, वे

उल्लेखनीय तात्कालिकता और दक्षता के साथ बड़े और विविध दर्शकों तक पहुँचते हैं। टेलीविजन, दृश्य, ऑडियो और गति के अपने संयोजन के साथ, समाचार, कहानी और विज्ञापन प्रस्तुत करने में विशेष रूप से प्रभावी है। इसकी इमर्सिव प्रकृति दर्शकों को भावनात्मक रूप से सामग्री से जुड़ने की अनुमति देती है, जिससे यह जनमत, सांस्कृतिक रुझान और उपभोक्ता व्यवहार को आकार देने में एक प्रभावशाली माध्यम बन जाता है। इसी तरह, रेडियो, अपनी पहुँच और पोर्टेबिलिटी के साथ, संचार का एक महत्वपूर्ण चैनल बना हुआ है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ इंटरनेट या टेलीविज़न की पहुँच सीमित है। यह लाखों लोगों के लिए एक साथी के रूप में कार्य करता है, संगीत, समाचार और टॉक शो प्रदान करता है, जो अक्सर विशिष्ट स्थानीय या क्षेत्रीय हितों को पूरा करता है।

प्रसारण मीडिया शिक्षा और जागरूकता में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। टेलीविजन और सूचनात्मक रेडियो खंडों पर शैक्षिक कार्यक्रम स्वास्थ्य और प्रौद्योगिकी से लेकर सामाजिक मुद्दों तक विभिन्न विषयों पर ज्ञान फैलाने में मदद करते हैं। प्राकृतिक आपदाओं या आपात स्थितियों जैसे संकटों के दौरान, दोनों माध्यम जनता को वास्तविक समय के अपडेट और निर्देश देने में अमूल्य साबित होते हैं। इसके अलावा, वे बहस और चर्चा के लिए मंच के रूप में कार्य करते हैं, समुदाय और नागरिक भागीदारी की भावना को बढ़ावा देते हैं।

हालांकि, डिजिटल युग में प्रसारण मीडिया को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ऑनलाइन स्ट्रीमिंग प्लेटफ़ॉर्म और पॉडकास्ट के उदय ने दर्शकों और श्रोताओं के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है। गलत सूचना, सनसनीखेजता और नियामक निगरानी की कमी जैसे मुद्दे उनकी विश्वसनीयता को कम कर सकते हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, टेलीविजन और रेडियो लगातार विकसित हो रहे हैं, सामग्री वितरण और दर्शकों की बातचीत को बढ़ाने के लिए डिजिटल तकनीकों को एकीकृत कर रहे हैं। वे अपरिहार्य माध्यम बने हुए हैं, जो संचार के पारंपरिक और आधुनिक तरीकों के बीच की खाई को पाटते हैं और व्यक्तिगत स्तर पर दर्शकों से जुड़ने की अपनी अनूठी क्षमता को बनाए रखते हैं।

12.4.3 डिजिटल और ऑनलाइन पत्रकारिता

डिजिटल और ऑनलाइन पत्रकारिता ने आधुनिक दुनिया में समाचार और सूचना के निर्माण, वितरण और उपभोग के तरीके में क्रांति ला दी है। पारंपरिक पत्रकारिता के विपरीत, जो मुद्रित प्रकाशनों या प्रसारण मीडिया पर निर्भर करती है, डिजिटल पत्रकारिता वास्तविक समय के अपडेट और इंटरैक्टिव सामग्री देने के लिए इंटरनेट का लाभ उठाती है। पत्रकारिता के इस नए रूप की विशेषता इसकी पहुँच, गति और वैश्विक पहुँच है, जिससे पाठकों के लिए कहीं भी और कभी भी सूचित रहना संभव हो जाता है। वीडियो, इन्फोग्राफ़िक्स और हाइपरलिंक जैसे मल्टीमीडिया तत्वों का उपयोग कहानियों को समृद्ध करता है, जो एक गतिशील और आकर्षक उपयोगकर्ता अनुभव प्रदान करता है। समाचार वेबसाइट, ब्लॉग और सोशल मीडिया चैनलों जैसे प्लेटफ़ॉर्म ने

सूचना को लोकतांत्रिक बनाया है, नागरिक पत्रकारों को वैश्विक दर्शकों के साथ सीधे योगदान करने और कहानियाँ साझा करने का अधिकार दिया है।

डिजिटल पत्रकारिता के प्रमुख लाभों में से एक इसकी तत्काल समाचार कवरेज और अपडेट प्रदान करने की क्षमता है, जो इसे संकट या ब्रेकिंग न्यूज़ घटनाओं के दौरान सूचना का प्राथमिक स्रोत बनाती है। यह टिप्पणियों, शेयर और लाइक के माध्यम से दर्शकों की बातचीत को भी सक्षम बनाता है, जिससे एक सक्रिय और सहभागी समाचार संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल प्रकाशन की लागत-प्रभावशीलता स्वतंत्र पत्रकारों और छोटे मीडिया आउटलेट्स को मुद्रण और वितरण के वित्तीय बोझ के बिना पनपने की अनुमति देती है। हालाँकि, ऑनलाइन पत्रकारिता को भी महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि फर्जी खबरों का प्रसार, क्लिकबेट प्रथाएँ, और उच्च जुड़ाव मीट्रिक की खोज में पत्रकारिता के मानकों का क्षरण। विज्ञापन राजस्व पर डिजिटल माध्यम की निर्भरता कभी-कभी सामग्री की गुणवत्ता और अखंडता से समझौता कर सकती है।

इन चुनौतियों के बावजूद, डिजिटल पत्रकारिता विकसित और अनुकूलन जारी रखती है। सदस्यता मॉडल, क्राउड-फ़ंडिंग द्वारा समर्थित खोजी रिपोर्टिंग, और सामग्री क्यूरेशन और तथ्य-जाँच के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के एकीकरण जैसे नवाचार इसकी विश्वसनीयता और स्थिरता को बढ़ा रहे हैं। ऐसे युग में जहाँ सूचना निर्णय लेने को प्रेरित करती है, डिजिटल पत्रकारिता आधुनिक मीडिया की आधारशिला बनी हुई है, जो अंतराल को पाटती है, समुदायों को जोड़ती है, और यह सुनिश्चित करती है कि समाचार का प्रवाह हमारी तेज़ी से बदलती दुनिया के साथ तालमेल बनाए रखे।

बोध प्रश्न-

1. प्रेस के प्रमुख प्रकारों के नाम बताइये।

....
....
....
....

12.5 लोकतंत्र में प्रेस की भूमिका

प्रेस लोकतंत्र को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसके चौथे स्तंभ के रूप में कार्य करता है और सरकार और लोगों के बीच सेतु का काम करता है। सत्ता के प्रहरी के रूप में, यह भ्रष्टाचार, सत्ता के दुरुपयोग और अन्याय की जांच और उजागर करके अधिकारियों को जवाबदेह बनाता है, शासन में पारदर्शिता सुनिश्चित करता है। प्रेस नागरिकों को सटीक और समय पर जानकारी प्रदान करके सशक्त बनाता है, जिससे वे सूचित निर्णय लेने में सक्षम होते हैं, खासकर चुनावों के दौरान या उनके जीवन को प्रभावित करने वाली नीतियों पर। विविध दृष्टिकोणों और जोरदार बहसों के माध्यम से, यह एक समावेशी सार्वजनिक प्रवचन को बढ़ावा देता है, हाशिए के समुदायों की आवाज़ को बढ़ाता है और यह सुनिश्चित करता है कि समाज का कोई भी वर्ग अनसुना

न रहे। इसके अतिरिक्त, प्रेस जनता को उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों के बारे में शिक्षित करता है, नागरिक जागरूकता और भागीदारी का पोषण करता है।

एक लोकतांत्रिक समाज में, प्रेस दुष्प्रचार को चुनौती देकर, सेंसरशिप का विरोध करके और मुक्त भाषण के सिद्धांत की रक्षा करके सत्तावाद के खिलाफ सुरक्षा के रूप में कार्य करता है। यह उन मुद्दों पर प्रकाश डालता है जो ध्यान देने की मांग करते हैं, चाहे वह सामाजिक असमानता हो, जलवायु परिवर्तन हो या आर्थिक चुनौतियाँ हों, इस प्रकार जनमत को आकार देता है और नीति-निर्माण को प्रभावित करता है। हालाँकि, प्रेस की यह भी जिम्मेदारी है कि वह पत्रकारिता की अखंडता को बनाए रखे, सनसनीखेज, पक्षपातपूर्ण या गलत सूचना से दूर रहे जो लोकतंत्र को कमजोर कर सकती है। राजनीतिक दबावों और वित्तीय बाधाओं जैसी चुनौतियों के बावजूद, प्रेस एक अपरिहार्य संस्था बनी हुई है जो स्वतंत्रता, समानता और न्याय के आदर्शों की हिमायत करती है, जो इसे किसी भी संपन्न लोकतंत्र की आधारशिला बनाती है।

12.5.1 लोकतंत्र का चौथा स्तंभ प्रेस

प्रेस, जिसे अक्सर लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है, लोकतांत्रिक मूल्यों को संरक्षित करने और बढ़ावा देने में एक मौलिक भूमिका निभाता है। इसकी प्राथमिक जिम्मेदारी एक निगरानीकर्ता के रूप में कार्य करना है, जो भ्रष्टाचार, अन्याय और सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करके सत्ता में बैठे लोगों को जवाबदेह ठहराता है। सटीक और निष्पक्ष जानकारी प्रदान करके, प्रेस यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को अच्छी तरह से सूचित किया जाए, जिससे वे शिक्षित निर्णय लेने में सक्षम हों, खासकर शासन और चुनाव के मामलों में। यह विविध विचारों के लिए एक मंच के रूप में कार्य करता है और सार्वजनिक चर्चा को बढ़ावा देता है, जो एक जीवंत लोकतंत्र के कामकाज के लिए महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, प्रेस हाशिए पर पड़े समुदायों को आवाज़ देता है, उन मुद्दों को उजागर करता है जिन्हें अन्यथा अनदेखा किया जा सकता है। सेंसरशिप का विरोध करके, दुष्प्रचार पर सवाल उठाकर और मुक्त भाषण के सिद्धांत को कायम रखते हुए, प्रेस व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करता है। राजनीतिक दबाव और वित्तीय बाधाओं जैसी चुनौतियों के बावजूद, प्रेस लोकतंत्र की आधारशिला बनी हुई है, जो पारदर्शिता, जवाबदेही और न्याय के मूल्यों की वकालत करती है जो एक निष्पक्ष और समतापूर्ण समाज के लिए आवश्यक हैं।

12.5.2 खोजी पत्रकारिता और जवाबदेही

खोजी पत्रकारिता जवाबदेही की आधारशिला है, क्योंकि यह छिपी हुई सच्चाइयों को उजागर करने और भ्रष्टाचार, कदाचार और प्रणालीगत अन्याय को उजागर करने का प्रयास करती है जो अन्यथा छिपे रह सकते

हैं। सावधानीपूर्वक शोध, तथ्य-जांच और साक्षात्कारों के माध्यम से मुद्दों में गहराई से उतरकर, खोजी पत्रकार ऐसी जानकारी सामने लाते हैं जो व्यक्तियों, निगमों और सरकारों को उनके कार्यों के लिए जवाबदेह बनाती है। पत्रकारिता का यह रूप एक लोकतांत्रिक समाज के भीतर पारदर्शिता और विश्वास को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह सुनिश्चित करता है कि सत्ता का अनियंत्रित रूप से उपयोग न किया जाए। अपनी निडर रिपोर्टिंग के माध्यम से, खोजी पत्रकार अक्सर यथास्थिति को चुनौती देते हैं, असमानता या शोषण से प्रभावित लोगों को आवाज़ देते हैं। हालाँकि, सत्य की यह खोज जोखिमों के साथ आती है, जैसे कानूनी या राजनीतिक दबावों का सामना करना, व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए खतरा या सीमित संसाधन। इन चुनौतियों के बावजूद, खोजी पत्रकारिता सुधारों को आगे बढ़ाने, न्याय को बनाए रखने और यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि संस्थान अपने कार्यों के लिए जवाबदेह हों, इस प्रकार एक निष्पक्ष और समतावादी समाज के स्तंभों को मजबूत करते हैं।

12.5.3 जनमत और नीतियों पर प्रभाव

प्रेस में जनता की राय को आकार देने और दर्शकों को सूचित करने, शिक्षित करने और उनसे जुड़ने की अपनी क्षमता के माध्यम से नीतियों को प्रभावित करने की अपार शक्ति होती है। समाचार, विश्लेषण और टिप्पणी प्रस्तुत करके, प्रेस सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को उजागर कर सकता है, जिससे घटनाओं के बारे में जनता की समझ और धारणा बनती है। खोजी रिपोर्टिंग और फीचर कहानियों के माध्यम से, यह अक्सर अनदेखी या महत्वपूर्ण मामलों को सुर्खियों में लाता है, नागरिकों से रुख अपनाने या बदलाव की मांग करने का आग्रह करता है। यह बदले में, नीति निर्माताओं पर जनता की चिंताओं को दूर करने, सुधारों को लागू करने या सामाजिक जरूरतों का जवाब देने का दबाव डालता है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण के मुद्दों, मानवाधिकारों के उल्लंघन या सार्वजनिक स्वास्थ्य संकटों के मीडिया कवरेज ने कई मामलों में विधायी कार्रवाई और नीतिगत बदलावों को प्रेरित किया है। हालाँकि, प्रेस हेरफेर या गलत सूचना को रोकने के लिए संतुलित और निष्पक्ष रिपोर्टिंग सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी उठाता है। जब नैतिक रूप से निष्पादित किया जाता है, तो प्रेस परिवर्तन के एक शक्तिशाली एजेंट के रूप में कार्य करता है, जो लोगों और सत्ता में बैठे लोगों के बीच की खाई को पाटता है और एक अधिक सूचित और सहभागी समाज को बढ़ावा देता है।

बोध प्रश्न-

1. लोकतंत्र में मीडिया का क्या स्थान है?

....
....
....
....

12.6 प्रेस के समक्ष चुनौतियाँ

आज के तेजी से विकसित हो रहे मीडिया परिदृश्य में प्रेस को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। एक महत्वपूर्ण मुद्दा राजस्व धाराओं में गिरावट है, विशेष रूप से पारंपरिक मीडिया आउटलेट्स के लिए, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म की ओर बदलाव और मुफ़्त ऑनलाइन सामग्री की उपलब्धता के कारण। इसके कारण कई समाचार संगठनों का आकार छोटा हो गया है और यहाँ तक कि उन्हें बंद भी करना पड़ा है, जिससे पत्रकारिता की गुणवत्ता और विविधता प्रभावित हुई है। गलत सूचना और फर्जी खबरें एक और बड़ी चुनौती पेश करती हैं, क्योंकि सोशल मीडिया पर असत्यापित सूचनाओं का तेजी से प्रसार विश्वसनीय स्रोतों में जनता के भरोसे को कम करता है। दुनिया के कई हिस्सों में प्रेस की स्वतंत्रता भी खतरे में है, जहाँ सरकारें और शक्तिशाली संस्थाएँ सेंसरशिप, कानूनी प्रतिबंध लगा रही हैं या यहाँ तक कि पत्रकारों के खिलाफ़ धमकी और हिंसा का सहारा ले रही हैं। इसके अतिरिक्त, प्रेस को प्रौद्योगिकी में प्रगति द्वारा उत्पन्न नैतिक दुविधाओं से निपटना होगा, जैसे कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग और समाचार उपभोग को प्रभावित करने में एल्गोरिदम की भूमिका। रिपोर्टिंग में गति और सटीकता की मांग को संतुलित करना एक निरंतर संघर्ष है, जबकि दर्शकों के ध्रुवीकरण और पूर्वाग्रह को संबोधित करना एक खंडित मीडिया वातावरण में तेजी से जटिल होता जा रहा है। इन बाधाओं के बावजूद, प्रेस जनता को सूचित करने और उन्हें सशक्त बनाने के अपने मिशन में सच्चाई, जवाबदेही और ईमानदारी के लिए प्रयास करना जारी रखता है।

12.6.1 फर्जी खबरें और गलत सूचना

आज हम जिस सूचना-संचालित समाज में रह रहे हैं, उसमें फर्जी खबरें और गलत सूचनाएँ चिंता का विषय बन गई हैं। फर्जी खबरों से तात्पर्य जानबूझकर गढ़ी गई कहानियों या विकृत तथ्यों से है, जिन्हें अक्सर धोखा देने, जनमत में हेरफेर करने या सनसनीखेज तरीके से राजस्व उत्पन्न करने के इरादे से बनाया जाता है। दूसरी ओर, गलत सूचना में अक्सर सत्यापन या आलोचनात्मक विश्लेषण की कमी के कारण गलत या भ्रामक जानकारी का अनजाने में प्रसार शामिल होता है। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म और डिजिटल संचार चैनलों के तेज़ी से प्रसार ने इस तरह के झूठ की पहुँच को काफ़ी हद तक बढ़ा दिया है। इससे ऐसा माहौल बनता है जहाँ असत्यापित

दावे वायरल हो सकते हैं, लोगों के विश्वासों, निर्णयों और कार्यों को प्रभावित कर सकते हैं। इसके परिणाम दूरगामी हैं - गलत सूचना संस्थानों में विश्वास को कम कर सकती है, झूठे आख्यानों के माध्यम से चुनावों को बाधित कर सकती है, षड्यंत्र के सिद्धांतों को फैला सकती है, सामाजिक विभाजन को बढ़ा सकती है और यहाँ तक कि जीवन को भी खतरे में डाल सकती है, जैसा कि COVID-19 महामारी जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य संकटों के दौरान देखा गया है। फर्जी खबरों और गलत सूचनाओं का मुकाबला करने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। इसमें मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना शामिल है ताकि व्यक्ति स्रोतों की विश्वसनीयता का गंभीरता से मूल्यांकन कर सकें, जिम्मेदार साझाकरण प्रथाओं को प्रोत्साहित कर सकें और विश्वसनीय तथ्य-जांच संगठनों पर भरोसा कर सकें। प्रौद्योगिकी प्लेटफार्मों को एल्गोरिदम के माध्यम से गलत सूचना के प्रसार को सीमित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जबकि सरकारों और नीति निर्माताओं को इसके हानिकारक प्रभावों से बचाने के लिए नियम स्थापित करने की आवश्यकता है। अंततः, इस मुद्दे से निपटने के लिए सूचना प्रसार में सटीकता, सत्यता और अखंडता को बनाए रखने के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है।

12.6.2 सेंसरशिप और कानूनी चुनौतियाँ

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, गोपनीयता और सामाजिक मानदंडों के इर्द-गिर्द चल रही बहस में सेंसरशिप और कानूनी चुनौतियाँ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। सेंसरशिप से तात्पर्य ऐसी सूचना, विचार या सामग्री के दमन या प्रतिबंध से है जिसे आपत्तिजनक, हानिकारक या विवादास्पद माना जाता है। इसे अक्सर सरकारों, संगठनों या प्लेटफार्मों द्वारा सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, राष्ट्रीय सुरक्षा की रक्षा करने या सांस्कृतिक और नैतिक मानकों का पालन करने के लिए लागू किया जाता है। हालाँकि, सेंसरशिप अक्सर व्यक्तिगत अधिकारों के उल्लंघन, विशेष रूप से मुक्त भाषण और सूचना तक पहुँच के अधिकार के बारे में चिंताएँ जगाती है। कानूनी चुनौतियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब सामग्री को विनियमित या सेंसर करने के प्रयास संवैधानिक सुरक्षा या अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार सिद्धांतों के साथ टकराते हैं। उदाहरण के लिए, जबकि कुछ देशों में मुक्त भाषण की सुरक्षा के लिए मजबूत कानून हैं, अन्य मीडिया, इंटरनेट के उपयोग और सार्वजनिक प्रवचन पर सख्त नियंत्रण लगाते हैं। डिजिटल युग ने इन चुनौतियों को बढ़ा दिया है, क्योंकि ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म सामग्री मॉडरेशन को संतुलित करने और अभद्र भाषा, फर्जी समाचार और हिंसा भड़काने जैसी हानिकारक सामग्री का मुकाबला करने के साथ-साथ अनुचित सेंसरशिप से बचने के लिए संघर्ष करते हैं। इंटरनेट की वैश्विक प्रकृति के कारण जटिलता और भी बढ़ जाती है, जहाँ अलग-अलग कानूनी ढाँचे, सांस्कृतिक मानदंड और अधिकार क्षेत्र की सीमाएँ काम आती हैं। कानूनी विवादों में अक्सर इस बात के सवाल शामिल होते हैं कि मुक्त भाषण पर स्वीकार्य

सीमाएँ क्या हैं और ऐसे निर्णय लेने का अधिकार किसके पास है। मौलिक स्वतंत्रता की रक्षा और गलत सूचना, भेदभाव और सुरक्षा खतरों जैसी वैध चिंताओं को संबोधित करने के बीच संतुलन बनाना नीति और व्यवहार दोनों में एक दबावपूर्ण और सूक्ष्म दुविधा बनी हुई है।

12.6.3 डिजिटलीकरण का प्रभाव और पाठकों की घटती संख्या

डिजिटलीकरण ने सूचना के उत्पादन, साझाकरण और उपभोग के तरीके को गहराई से बदल दिया है, जिससे पारंपरिक पाठक पैटर्न में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। डिजिटल मीडिया के आगमन के साथ, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों जैसे प्रिंट प्रकाशनों ने पाठकों की संख्या में लगातार गिरावट का अनुभव किया है क्योंकि अधिक लोग सूचना तक तेज़ और अधिक सुविधाजनक पहुँच के लिए ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म की ओर रुख कर रहे हैं। डिजिटल सामग्री इंटरैक्टिव सुविधाएँ, मल्टीमीडिया एकीकरण और वास्तविक समय के अपडेट प्रदान करती है, जिससे यह विशेष रूप से युवा दर्शकों के लिए अधिक आकर्षक बन रही है।

हालाँकि, यह परिवर्तन कई चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। कई पारंपरिक मीडिया आउटलेट सदस्यता राजस्व में गिरावट और विज्ञापन आय में कमी के कारण वित्तीय तनाव का सामना करते हैं, जिसके कारण अक्सर आकार में कमी या यहाँ तक कि बंद भी हो जाते हैं। इसके अलावा, मुफ़्त ऑनलाइन सामग्री की प्रचुरता ने सतही जुड़ाव की संस्कृति को बढ़ावा दिया है, जहाँ उपयोगकर्ता गहराई से लेख या पुस्तकों को पढ़े बिना सुर्खियों या सोशल मीडिया स्निपेट को सरसरी तौर पर देखते हैं। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म को चलाने वाले एल्गोरिदम अक्सर व्यापक या उच्च-गुणवत्ता वाली पत्रकारिता की कीमत पर क्लिक उत्पन्न करने वाली सामग्री को प्राथमिकता देकर समस्या को और बढ़ा देते हैं। डिजिटलीकरण ने सूचना तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया है और कहानी कहने में नवाचार को बढ़ावा दिया है, लेकिन इसने गलत सूचना, ध्यान अवधि में कमी और स्थानीय और विशिष्ट पत्रकारिता के क्षरण के बारे में चिंताएँ भी पैदा की हैं। अनुकूलन के लिए, पारंपरिक प्रकाशकों को डिजिटल परिवर्तन को अपनाना चाहिए, टिकाऊ व्यवसाय मॉडल तलाशने चाहिए और पाठकों को विकसित हो रहे मीडिया परिदृश्य में सार्थक रूप से जोड़ने के लिए रणनीतियाँ विकसित करनी चाहिए।

12.7 प्रेस में भविष्य के रुझान

प्रेस का भविष्य तेजी से हो रही तकनीकी प्रगति, उपभोक्ता की बदलती आदतों और विकसित होते व्यावसायिक मॉडल द्वारा आकार लेता है। एक प्रमुख प्रवृत्ति डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर बढ़ती निर्भरता है, जहाँ समाचार आउटलेट विविध दर्शकों को ध्यान में रखते हुए मल्टीमीडिया स्टोरीटेलिंग, रीयल-टाइम अपडेट और व्यक्तिगत सामग्री को अपनाते हैं। रिपोर्टिंग की सटीकता बढ़ाने, वर्कफ़्लो को सुव्यवस्थित करने और दर्शकों की

प्राथमिकताओं का विश्लेषण करने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा एनालिटिक्स का लाभ उठाया जा रहा है। घटती विज्ञापन आय के बीच मीडिया संगठनों द्वारा स्थायी राजस्व स्रोतों की तलाश के कारण सदस्यता-आधारित और पेवॉल मॉडल लोकप्रिय हो रहे हैं। इसके अलावा, समाधान पत्रकारिता और हाइपर-लोकल रिपोर्टिंग बढ़ रही है, जो विशिष्ट सामुदायिक आवश्यकताओं को संबोधित करती है और मुख्यधारा के मीडिया के प्रति संदेह के युग में विश्वास का पुनर्निर्माण करती है। सहयोगी पत्रकारिता, जहाँ कई संगठन बड़े पैमाने पर खोजी परियोजनाओं से निपटने के लिए संसाधनों को एक साथ लाते हैं, भी प्रमुखता प्राप्त कर रही है। आभासी वास्तविकता (VR) और संवर्धित वास्तविकता (AR) का एकीकरण अधिक इमर्सिव स्टोरीटेलिंग अनुभवों का वादा करता है, जबकि पॉडकास्ट और न्यूज़लेटर्स विशिष्ट सामग्री वितरण के लिए लोकप्रियता में विस्तार करना जारी रखते हैं। हालाँकि, व्यावसायिक दबावों के साथ पत्रकारिता की अखंडता को संतुलित करना, गलत सूचना से निपटना और नियामक चुनौतियों का सामना करना महत्वपूर्ण रहेगा क्योंकि प्रेस डिजिटल युग में प्रासंगिक बने रहने के लिए विकसित हो रहा है।

12.7.1 पत्रकारिता में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांति ला रहा है, समाचार एकत्र करने, उत्पादन करने और वितरित करने के तरीके को बदल रहा है। डेटा विश्लेषण, नियमित रिपोर्टिंग को स्वचालित करने और तथ्य-जांच जैसे कार्यों के लिए AI-संचालित टूल का उपयोग तेजी से किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, एल्गोरिदम बड़े डेटासेट का विश्लेषण करके रुझानों को उजागर कर सकते हैं, रिपोर्ट तैयार कर सकते हैं या खेल और वित्तीय अपडेट जैसे विषयों पर समाचार लेख भी लिख सकते हैं, जिससे पत्रकारों को अधिक गहन खोजी कार्य पर ध्यान केंद्रित करने के लिए स्वतंत्र किया जा सकता है। AI सोशल मीडिया गतिविधि और अन्य स्रोतों का विश्लेषण करके ब्रेकिंग न्यूज़ की निगरानी करने में भी सहायता करता है, जिससे तेज़ और अधिक सटीक रिपोर्टिंग संभव होती है।

वैयक्तिकरण एक प्रमुख लाभ बन गया है, जिसमें AI एल्गोरिदम पढ़ने की आदतों और रुचियों के आधार पर समाचार सामग्री को व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के अनुसार तैयार करते हैं। इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) जैसे उपकरण स्वचालित अनुवाद प्रदान करके या लेखों को भाषण में परिवर्तित करके सामग्री की पहुँच को बढ़ाते हैं। AI गलत सूचनाओं का मुकाबला करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसमें तथ्य-जांच प्रणाली वास्तविक समय में दावों की पुष्टि करती है। यह छवि और वीडियो सत्यापन में भी सहायता करता है, डीपफेक और हेरफेर किए गए मीडिया के बारे में चिंताओं को दूर करता है। हालाँकि, पत्रकारिता में एआई का एकीकरण नैतिक विचारों को भी जन्म देता है, जैसे कि एआई द्वारा उत्पन्न सामग्री में पारदर्शिता

सुनिश्चित करना, एल्गोरिदम में पक्षपात से बचना और कहानी कहने में मानवीय स्पर्श बनाए रखना। जबकि एआई दक्षता और नवाचार को बढ़ाता है, समाचार रिपोर्टिंग में अखंडता, संदर्भ और सहानुभूति को बनाए रखने में कुशल पत्रकारों की भूमिका अपूरणीय बनी हुई है। मानवीय रचनात्मकता और एआई क्षमताओं के बीच तालमेल पत्रकारिता के लिए अधिक गतिशील और उत्तरदायी भविष्य को आकार देने का वादा करता है।

12.7.2 नागरिक पत्रकारिता और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म

नागरिक पत्रकारिता और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म ने समाचार और सूचना के प्रसार के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे आम लोगों को वास्तविक समय में घटनाओं को दस्तावेज़ित करने और साझा करने की शक्ति मिली है। नागरिक पत्रकारिता गैर-पेशेवर पत्रकारों द्वारा समाचारों को कैप्चर करने और वितरित करने की प्रथा को संदर्भित करती है, जो अक्सर पारंपरिक मीडिया द्वारा छोड़े गए अंतराल को भरती है। स्मार्टफ़ोन से लैस और Twitter, Facebook और YouTube जैसे प्लेटफ़ॉर्म तक पहुँच के साथ, नागरिक ज़मीनी दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं, खासकर संकट, विरोध या प्राकृतिक आपदाओं के दौरान जहाँ मुख्यधारा के मीडिया की सीमित उपस्थिति हो सकती है।

सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म ने नागरिक पत्रकारिता की पहुँच को बढ़ाया है, जिससे हाशिए पर पड़े समुदायों की आवाज़ें अपनी कहानियाँ साझा करने और विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की अनुमति मिलती है जो अन्यथा किसी का ध्यान नहीं जा सकता। ये प्लेटफ़ॉर्म इंटरैक्टिव जुड़ाव को भी बढ़ावा देते हैं, जिससे उपयोगकर्ता टिप्पणी करने, साझा करने और समाचारों पर चर्चा करने में सक्षम होते हैं, जिससे एक गतिशील और सहभागी मीडिया परिदृश्य बनता है। हालाँकि, समाचार उत्पादन का यह लोकतंत्रीकरण चुनौतियों के साथ आता है। संपादकीय निगरानी की कमी से गलत सूचना, पक्षपातपूर्ण रिपोर्टिंग या सनसनीखेजता फैल सकती है। तथ्यों का सत्यापन और विश्वसनीयता बनाए रखना इस संदर्भ में महत्वपूर्ण चिंताएँ हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, नागरिक पत्रकारिता पारदर्शिता, जवाबदेही और जमीनी स्तर पर सक्रियता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह कहानी कहने में तात्कालिकता और प्रामाणिकता लाकर पारंपरिक पत्रकारिता का पूरक है। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म द्वारा प्रस्तुत अवसरों और जोखिमों के बीच संतुलन बनाना अधिक सूचित और जिम्मेदार सार्वजनिक चर्चा को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है

12.7.3 डिजिटल युग में पारंपरिक मीडिया की स्थिरता

डिजिटल युग में पारंपरिक मीडिया की स्थिरता उपभोक्ता की आदतों और तकनीकी प्रगति के तेजी से परिवर्तन के कारण महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना कर रही है। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के प्रसार और प्रिंट सर्कुलेशन में

गिरावट के साथ, पारंपरिक मीडिया आउटलेट जैसे कि समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और प्रसारण टेलीविज़न प्रासंगिकता और वित्तीय व्यवहार्यता बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। विज्ञापन राजस्व में कमी और मुफ़्त ऑनलाइन सामग्री की उपलब्धता ने इन चुनौतियों को और बढ़ा दिया है। खुद को बनाए रखने के लिए, पारंपरिक मीडिया संगठन तेजी से डिजिटल रणनीतियों को अपना रहे हैं। कई ने आधुनिक दर्शकों को आकर्षित करने के लिए मल्टीमीडिया सामग्री और इंटरैक्टिव सुविधाओं को एकीकृत करते हुए अपनी खुद की वेबसाइट, ऐप और स्ट्रीमिंग सेवाएँ शुरू की हैं। सब्सक्रिप्शन-आधारित और पेवॉल मॉडल लोकप्रिय हो रहे हैं, क्योंकि पाठक और दर्शक उच्च-गुणवत्ता वाली, भरोसेमंद पत्रकारिता के लिए भुगतान करने को तैयार हैं। कुछ आउटलेट अपनी पहुँच को व्यापक बनाने और अपने दर्शकों से सीधे जुड़ने के लिए सोशल मीडिया को भी अपना रहे हैं। साथ ही, पारंपरिक और डिजिटल-प्रथम मीडिया संगठनों के बीच साझेदारी और सहयोग अधिक आम होते जा रहे हैं, जिससे संसाधन साझाकरण और नवाचार की अनुमति मिलती है। विशिष्ट पत्रकारिता, अति-स्थानीय रिपोर्टिंग और खोजी पत्रकारिता पर ध्यान केंद्रित करने से पारंपरिक मीडिया को भी अति-संतृप्त बाजार में एक अद्वितीय स्थान बनाने में मदद मिली है। हालाँकि, गलत सूचना, घटते सार्वजनिक विश्वास और एल्गोरिदम-संचालित प्लेटफ़ॉर्म से प्रतिस्पर्धा जैसे मुद्दों को संबोधित करना इस निरंतर विकसित हो रहे डिजिटल परिदृश्य में पारंपरिक मीडिया की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण बना हुआ है।

12.8 प्रेस से संबंधित कुछ प्रमुख कानून

1. प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867- इस अधिनियम को भारतीय पत्रकारिता को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए बनाया गया एक महत्त्वपूर्ण कानून है। यह अधिनियम सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक समाचार पत्र, पत्रिका या पुस्तक में मुद्रक, प्रकाशक, संपादक और मुद्रण व प्रकाशन स्थल के नाम का उल्लेख हो। यह किसी प्रकाशित सामग्री की ज़िम्मेदारी तय करता है और अवांछित सामग्री पर कार्यवाही की अनुमति देता है। इसके तहत फौजदारी कानून की विभिन्न धाराओं के तहत कार्यवाही की जा सकती है, जैसे राजद्रोह (धारा 124A), अश्लीलता (धारा 292), और मानहानि (धारा 499 व 500)। अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में जिलाधिकारी की अनुमति, समाचार पत्र के नाम में अनूठापन, संपादकीय परिवर्तन की सूचना, और समाचार पत्र की प्रतियों का पंजीकरण शामिल हैं। रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स इन इंडिया (RNI) इस प्रक्रिया को नियंत्रित करता है, और वर्षभर में प्रकाशित समाचार पत्र का विवरण पंजीयन हेतु प्रस्तुत करना अनिवार्य है। यह कानून प्रेस की स्वतंत्रता को संरक्षित करने के साथ-साथ सूचना के रिकॉर्ड को भी सुनिश्चित करता है।

2. शासकीय गुप्त बात अधिनियम 1923- इस अधिनियम का उद्देश्य देश की एकता और अखंडता की सुरक्षा के लिए संवेदनशील सूचनाओं को गोपनीय रखना सुनिश्चित करना है। इस अधिनियम में गुप्त जानकारी

के प्रसार, जासूसी, और सुरक्षा के उल्लंघन से संबंधित प्रावधान शामिल हैं। अधिनियम के तहत, प्रतिबंधित स्थानों या दस्तावेजों से संबंधित जानकारी का प्रकाशन या प्रसार, जो शत्रु के लिए उपयोगी हो या राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डाल सके, दंडनीय है। धारा 3 और धारा 5 जैसे प्रावधान इन गतिविधियों को रोकने पर बल देते हैं। इसके अतिरिक्त, सरकारी कर्मचारियों की वर्दी का दुरुपयोग, झूठी जानकारी प्रदान करना, सरकारी दस्तावेजों की हेरफेर, और विदेशी एजेंटों के साथ संपर्क जैसे कार्यों को अधिनियम के तहत निषिद्ध और दंडनीय घोषित किया गया है। अपराध की गंभीरता के आधार पर 3 से 14 वर्षों तक की सजा या जुर्माने का प्रावधान है। यह अधिनियम सरकारी गोपनीयता को सुरक्षित रखते हुए देश की सुरक्षा के हितों की रक्षा करता है।

3. औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम, 1954 इसका उद्देश्य झूठे और भ्रामक विज्ञापनों पर रोक लगाना है, जो औषधियों या चमत्कारिक उपचार के दावों के माध्यम से लोगों को गुमराह कर सकते हैं। यह अधिनियम ऐसे विज्ञापनों को दंडनीय अपराध मानता है जो तंत्र-मंत्र, ताबीज, या अन्य अवैज्ञानिक उपायों द्वारा रोगों के उपचार या निदान का दावा करते हैं। इसके तहत गर्भपात, यौन सुख, महिलाओं की समस्याओं, कोढ़, पागलपन, मिर्गी जैसे 54 बीमारियों के इलाज से संबंधित विज्ञापन भी प्रतिबंधित हैं। पहली बार उल्लंघन पर छह माह के कारावास या जुर्माना और पुनरावृत्ति पर एक वर्ष का कारावास या जुर्माने का प्रावधान है। यदि किसी विज्ञापन को प्रकाशित करने के लिए सरकार की अनुमति प्राप्त की जाती है या सामाजिक और वैज्ञानिक उद्देश्य से कोई जानकारी दी जाती है, तो यह कानून लागू नहीं होता है। अधिनियम जनता को भ्रमित करने वाले और गैर-सत्यापित विज्ञापनों से सुरक्षा प्रदान करता है।

4. युवक व्यक्ति (अपहानिकर प्रकाशन) अधिनियम, 1956- इस अधिनियम का उद्देश्य 20 वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओं को हानिकारक और अवांछित सामग्री से बचाना है, जो अपराध, हिंसा, क्रूरता, या घृणित कृत्यों की ओर प्रेरित कर सकती है। इस अधिनियम के तहत ऐसी सामग्री का लेखन, मुद्रण, वितरण, सार्वजनिक प्रदर्शन, बिक्री, किराये पर देना या विज्ञापन करना प्रतिबंधित है। यह कानून पुस्तकों, पत्रिकाओं, पैम्फलेट, या अन्य प्रकाशनों के माध्यम से भ्रामक और आपत्तिजनक जानकारी फैलाने वालों के लिए छह माह के कारावास या जुर्माने अथवा दोनों का प्रावधान करता है। ये अपराध संज्ञेय की श्रेणी में आते हैं, जिनमें बिना वारंट के गिरफ्तारी हो सकती है। यह अधिनियम युवा व्यक्तियों के मानसिक और चारित्रिक विकास को संरक्षित करने हेतु बनाया गया है।

5. प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957- प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957 का उद्देश्य रचनाकारों की मौलिक कृतियों, जैसे साहित्य, संगीत, कला, नाटक, फिल्म, मूर्ति आदि की सुरक्षा करना है। यह अधिनियम रचयिता को उनकी कृति पर जीवनकाल के दौरान और मृत्यु के बाद 60 वर्षों तक कॉपीराइट का अधिकार देता है। कॉपीराइट के तहत, बिना स्वीकृति के किसी कृति की नकल, व्यावसायिक उपयोग, वितरण या दावा करना अवैध है। अधिनियम में भाषणों, पुस्तकों की चोरी, तस्करी और जालसाजी पर विशेष प्रावधान किए गए हैं।

इन अपराधों के लिए 6 माह से 3 साल तक की सजा और 50,000 से 3 लाख रुपये तक जुर्माने का प्रावधान है। रचयिता सिविलवाद दायर कर मुआवजा भी मांग सकते हैं। कॉपीराइट संरक्षण के लिए रचना का पंजीकरण आवश्यक है। यह अधिनियम रचनाकारों के अधिकारों की रक्षा करते हुए उनकी श्रम और सृजनशीलता को कानूनी संरक्षण प्रदान करता है।

6. महिलाओं का अशिष्ट रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986- महिलाओं का अशिष्ट रूपण प्रतिषेध अधिनियम, 1986 का उद्देश्य विज्ञापनों और अन्य माध्यमों में महिलाओं के अश्लील प्रदर्शन को रोकना है। यह अधिनियम किसी भी प्रकार के विज्ञापन, नोटिस, लेबल, रैपर, रोशनी, आवाज, धुएँ या गैस के माध्यम से बनाए गए अश्लील दृश्य या सामग्री को गैरकानूनी घोषित करता है। इसमें महिलाओं के अश्लील चित्रण का अर्थ है ऐसा प्रस्तुतीकरण जो अभद्र हो, महिलाओं की छवि को धूमिल करे, या नैतिकता और मूल्यों को नुकसान पहुँचाए। इस अधिनियम के तहत, कोई भी व्यक्ति ऐसा विज्ञापन प्रकाशित, प्रदर्शित या प्रसारित नहीं कर सकता जो महिलाओं का अश्लील चित्रण करता हो। यह कानून महिलाओं की गरिमा और समाज में नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए बनाया गया है।

7. मानहानि- भारतीय दण्ड संहिता की धारा 499 के तहत मानहानि का तात्पर्य किसी व्यक्ति के सम्मान को हानि पहुँचाने वाले शब्दों, संकेतों, या दृश्य प्रस्तुतियों के माध्यम से प्रकाशित आरोपों से है। पत्रकारिता के संदर्भ में मानहानि से बचने के लिए पत्रकारों को भारतीय प्रेस परिषद और विधि संस्थान के प्रावधानों का पालन करना चाहिए। इनमें संसद या उसकी समिति की गरिमा को ठेस पहुँचाने, सदन की कार्यवाही पर अमर्यादित टिप्पणी, किसी सदस्य के भाषण को गलत तरीके से प्रस्तुत करना, गोपनीय कार्यवाही को प्रकाशित करना, या जाली दस्तावेजों का प्रकाशन जैसे कार्य शामिल हैं। संविधान के अनुच्छेद 105(3) और 194(3) के अनुसार संसद या विधानमंडल की अवमानना पर चेतावनी, कारावास, प्रेस गैलरी से निष्कासन, या क्षमादान का प्रावधान है। आपत्तिजनक टिप्पणी को वापस लेने और खेद व्यक्त करने पर माफी दी जा सकती है। गंभीर मामलों में दोषियों को 15 दिन तक कारावास या अन्य दंड दिया जा सकता है। यह अधिनियम मानहानि की रोकथाम के लिए विस्तृत नियम और दंड प्रावधानों को लागू करता है।

12.9 सारांश

उपरोक्त विवरण के आधार पर प्रेस के सम्बन्ध में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेस अपने अतीत से लेकर अद्यतन न केवल लोकतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ के रूप में कार्य कर रहा है बल्कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था वाले समाज में जनता के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। प्रेस को एक मात्र ऐसा मंच मना जाता है जो जनता और समाज के लिए सुरक्षा वोल्व की तरह कार्य करते हुए उनकी अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने हेतु सुदृढ़ मंच प्रदान

करता है। किसी भी देश में राजनीतिक जवाबदेही तय करने में, मुक्त स्वर को जीवंत रखने में, सार्वजानिक बहस हेतु स्वतंत्र मंच प्रदान करने में, जनता के समक्ष निर्भीकता से तथ्यों को उजागर करने में प्रेस के परंपरागत और आधुनिक दोनों स्वरूपों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इन सभी के साथ प्रेस संस्था के लिए यह आवश्यक है कि बिना किसी स्वार्थ और राजनीतिक दबाव के अपनी भूमिका का जवाबदेही के साथ निर्वहन करे, जिससे वह मुद्दे जो मुख्य धारा से दूर हैं, वह सत्य जिसे जानबूझ कर दबाने और छुपाने का स्वार्थ के चलते प्रयास होता है, वह वर्ग जो वंचित और अभावग्रस्त है उन सभी समस्याओं का समाधान हो सके और सामाजिक व्यवस्था में वृद्धि हो सके।

12.10 पारिभाषिक शब्दावली (Glossary of Terms)

चमत्कारिक उपचार: ऐसी उपचार पद्धति जिसका ठोस आधार न हो, जो भ्रामक हो अवैज्ञानिक हो।

विज्ञापन: किसी वस्तु के प्रचार के लिए नोटिस, लेबल, रैपर, फिल्म तथा लेखन आदि माध्यमों का उपयोग। विज्ञापनों पर भी अश्लीलता विरोधी एक्ट लागू होता है।

अवमानना: संवैधानिक नियमों अथवा संवैधानिक उपक्रमों के विपरीत आचरण करना। संवैधानिक संस्थायें अवमानना करने वाले को दण्ड भी दे सकती है।

कॉपीराईट एक्ट: किसी मौलिक रचना अथवा कृति पर रचनाकार के अधिकार की सुरक्षा सुनिश्चित करने वाला अधिनियम।

12.10 सन्दर्भ सूची

1. पाण्डेय, डॉ. पवीनाथ, (2004), पकारिता: परिवेश एवं प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. अब्राहम, आर, मीडिया एंड नेशनल सेक्युरिटी, वर्ष- 2011, न्यू डेल्ही: सेण्टर फॉर एयर स्टडीज।

3. सावंत, पी., मास मीडिया इन कंटेम्पररी सोसाइटी, वर्ष-1998, कैपिटल फाउंडेशन सोसाइटी।

4. राजन, एम., मीडिया एंड मॉडर्न इंडिया, वर्ष- 2014, दीप एंड दीप पब्लिकेशन।

5. माथुर, पी. के., सोशल मीडिया एंड नेटवर्किंग: कॉन्सेप्ट्स, ट्रेंड्स एंड डाइमेंशन्स, वर्ष-2012, कनिष्का पब्लिशर्स, न्यू डेल्ही।

6. मिश्र, डॉ. कृष्ण बिहारी, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

7. मंत्री, गणेश, पत्रकारिता की चुनौतियां, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

8. कुमार, बिजेंद्र, हिंदी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली।

9. मैकवेल, डी., मास कम्युनिकेशन थ्योरी, सेज पब्लिकेशन लन्दन।

10. जैन, रमेश, जनसंचार एवं पत्रकारिता, मंगलदीप प्रकाशन, जयपुर।

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मीडिया कानून और नैतिकता, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
2. मीडिया के विविध आयाम, योगेश कुमार गुप्ता, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर।
3. प्रेस विधि, संजीव भानावत, यूनिवर्सि टी पब्लिकेशन्स, जयपुर।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रेस से संबंधित प्रमुख कानूनों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. प्रेस के कितने प्रकार हैं? व्याख्या कीजिए।
3. प्रेस के भविष्य के रूझानों के संदर्भ में विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई-13 रेडियो
radio

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 रेडियो शब्द की उत्पत्ति एवं विशेषताएं

13.3 भारत में रेडियो का इतिहास

13.4 भारत में रेडियो के प्रकार

13.4.1 सार्वजनिक रेडियो

13.4.2 निजी रेडियो

13.4.3 सामुदायिक रेडियो

13.5 रेडियो व समाज

13.6 सारांश

13.7 बोध प्रश्न-

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

13.9 बोध प्रश्न

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना-

रेडियो एक सशक्त जनसंचार का माध्यम है। रेडियो को 'आवाज' की दुनिया कहा जाता है, क्योंकि यह संचार माध्यम केवल श्रव्य होता है फिर भी मात्र आवाज के द्वारा श्रोता स्वयं शब्द चित्र रचना का रसास्वादन करता है। वर्तमान में अनेक सूचना संचार माध्यम समाज में प्रचलित हैं, प्रत्येक माध्यम की अपनी उपयोगिता व सीमायें हैं। इसलिए आज भी कोई संचार माध्यम अपने आप में परिपूर्ण नहीं है। जो सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति व कठिनाईयों को दूर कर सके। अतः परिस्थिति के अनुरूप संचार माध्यम की उपयोगिता को सिद्ध किया जा सकता है। मानव विकास के चरणों में रेडियो संचार जगत में एक आश्चर्य चकित करने वाला आविष्कार था। रेडियो ने संचार जगत में मानवीय कल्पनाओं को साकार किया जो नगाड़ों, मुनादी कबूतर सन्देश, घण्टे घड़ियाल जैसे परम्परागत संचार साधनों का परिवर्तित तकनीकी स्वरूप व वैज्ञानिक युग का प्रतिनिधित्व कर रहा था।

इस संचार साधन ने पूर्ण विश्व को एक मैजिक बॉक्स में समेटने का कार्य किया। प्रत्येक मानव इसकी लालसा करने लगे व ज्ञान मनोरंजन का मुख्य आधार बना।

रेडियो संचार माध्यमों में से एक है जो दुरुह भौगोलिक परिस्थितियों में भी सुलभ व टिकाऊ होने के साथ-साथ सस्ता व विश्वसनीय संचार माध्यम हैं। सामाजिक परिवेश निरन्तर परिवर्तनशील है ऐसे बदलते परिवेश में सामाजिक दूरियाँ बढ़ रही है किन्तु सूचनायें तीव्र गति से विस्तारित हो रही है। ऐसे विपरीत परिस्थितियों में एक ऐसे संचार माध्यम की आवश्यता आ गई जो सामाजिक दूरियों को कम करे व सूचनायें पहुँचा कर समाज व समुदाय को एक सूत्र में बांध सके।

13.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप रेडियो का अर्थ एवं विशेषताएं जान सकेंगे.
- इस इकाई से जानेंगे रेडियो का इतिहास.
- इस इकाई से आप जनसंचार माध्यम के रूप में रेडियो की भूमिका समझ सकेंगे.
- इस इकाई के माध्यम से रेडियो के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे.
- समाज में रेडियो की भूमिका से परिचित होंगे.

13. 2 रेडियो शब्द की उत्पत्ति एवं विशेषताएं

रेडियो शब्द की उत्पत्ति – रेडियो शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'रेडियस' (Radius) से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'किरण' अथवा रेडियो तरंग। रेडियो एक इलैक्टॉनिक ध्वनि यन्त्र है, जो रेडियो तरंगों के माध्यम से प्रसारित होने वाला ध्वनि संवेग को एक स्थान से दूसरे स्थान तक उसी रूप में प्रसारित करता है। यद्पि रेडियो शब्द एक अंग्रेजी भाषा का प्रचलित शब्द है। रेडियो का आविष्कार एक ऐतिहासिक घटना है, जिसने विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति लाने का काम किया। इन्हीं रेडियो तरंगो के विकास के परिणाम स्वरूप अनेक तकनीक विकास आधारित हुआ।

रेडियो की विशेषताएं- रेडियो को आवाज की दुनिया कहा जाता है जहां आवाज के माध्यम से श्रोता, वक्ता के बीच एक अद्भुत रुश्ता वनता है, जो श्रोता को मनोरंजन, शिक्षा, समाचार, संगीत, खेल, धर्म, वार्तालाप आदि के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ते है। रेडियो की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है-

(a) **रेडियो की पहुंच व्यापक है-** रेडियो एक ऐसा संचार माध्यम है जिसकी पहुंच अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक है। दुर्गम भौगोलिक संरचना हो या रेगिस्तान या पठार रेडियो की पहुंच व्यापक है, जबकि टीवी समाचार पत्रों की पहुंच सीमित हो सकती है। रेडियो का प्रारम्भ ही जमीन से समुद्र तक संकेत भेजने से हुआ व देखते ही देखते युद्ध के मैदान से लेकर आकाश तक इस सूचना माध्यम का प्रयोग होने लगा और इसका दायरा व्यापक होता चला गया। इसकी ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य संचार माध्यम की अपेक्षा

अधिक पहुंच है। साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों के बीच जैसे युवा, महिला व बुजर्गों आदि विभिन्न आयु वर्ग, विभिन्न आर्थिक पहुंच व विभिन्न रूचि रखने वालों के बीच रेडियो प्रचलित है।

(b) **सस्ता संचार माध्यम-** रेडियो को सर्वाधिक सस्ता संचार माध्यम कहा जाता है। जिसका प्रयोग गरीब, अमीर सभी वर्गों द्वारा किया जाता है। वर्तमान में दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो का चलन आज भी इसलिए है, क्योंकि इसके लिए उन्हें कोई बिल नही देना पड़ता है। जबकि टीवी, अखबार के लिए बिल अदा करना पड़ता है। यद्‌पि सुविधानुसार डिजिटल प्लेटफार्म पर रेडियो को सुनने की कीमत अदा करनी होती है। इसी श्रेणी का आधुनिक संचार के प्रकार में पॉडकास्ट का भी चलन बढ़ गया है जो डिजिटल प्लेटफार्म में प्रचलित है। रेडियो उपकरण एक सस्ता माध्यम इसलिए भी हैं क्योंकि टेलीविजन या प्रिंट मीडिया की तुलना में सस्ता उपकरण होता है जिसमें रेडियो सेट, माइक्रोफोन इत्यादि आते है।

(c) **रेडियो मनोरंजन का सशक्त माध्यम-** मानव स्वभाव से कला के प्रति आकर्षित होता है। ललित कला हो या मानव सृजनशीलता इस क्षेत्र में निरन्तर विकास होता जा रहा है। रेडियो का आविष्कार अपने आप में मानव विकास के इतिहास की एक बड़ी घटना है। साथ ही इसका उपयोग एक रोमांचित करने वाला अनुभव है। जो सदियों से सूचना और मनोरंजन के लिए प्रयोग में लाया जाता है और महानगरों से ग्रामीण क्षेत्रों तक फैला है। रेडियो में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की जाती है। जिसमें समाचार, संगीत नाटक, कहानियां, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, मौसम में रेडियो जीवनभर सीखने की राह पर ले जाता है व भावात्मक अनुभूमि देता है।

(d) **आपातकाल में महत्व-** सभी प्रकार के संचार माध्यमों की अपनी विशेषताएं होती है, किन्तु रेडियो अपेक्षाकृत अधिक महत्व इसलिए रखता है, जब अन्य संचार माध्यम काम करना बंद कर दे, ऐसे में रेडियो अपना काम करता रहता है। इसलिए इसे अधिक विश्वसनीय संचार माध्यम माना जाता है। प्राकृतिक आपदा में जब सड़क टूट जाए, विद्युत आपूर्ति ठप्प हो जाए या तूफान बाढ़ अन्य प्रकार की आपदा आ जाये तो ऐसे में रेडियो एक विश्वसनीय संचार माध्यम के रूप में अपनी भूमिका निभाता है। साथ ही आपातकाल में लोगों को सचेत करने का कार्य करता है।

(e) **रेडियो के प्रयोग हेतु अक्षरज्ञान की आवश्यकता नही-** रेडियो समाज के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा आसानी से प्रयोग में लाया जा सकता है। इसके लिए किसी विशेष ज्ञान की आवश्यकता नही होती है। इसलिए इसे "आवाज का जादू" कहा जाता है। साथ ही लोगों की वरीयता के आधार पर इसका क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रसारण किया जाता है। यह दृष्टिबाधित लोगों के लिए एक वरदान है, जिससे लोग संगीत, बातचीत, शिक्षा इत्यादि का लाभ उठा सकते है।

(f) **रेडियो में भावनात्मक प्रभाव अधिक होता है-** किसी विषयवस्तु का ज्ञान प्राप्त करने में किस संचार के साधन को सर्वाधिक प्रभावशाली माना गया है, तो उत्तर हैः जिसमें सर्वाधिक ज्ञान इन्द्रियों का प्रयोग

हो रहा है। ऐसे में टेलीविजन अधिक प्रभावशाली माना जाता है। किन्तु रेडियो एक ज्ञानेन्द्री के प्रयोग के बावजूद सर्वाधिक भावनात्मक प्रभाव डालता है। जो वक्ता व श्रोता के बीच भावनात्मक संबंध बनाता है और वक्ता/उद्घोषक के बीच काल्पनिक दृश्य बनने लगते है, साथ ही एक व्यक्तिगत जुड़ाव भी पैदा होने लगते है। रेडियो के कार्यक्रमों में भी भावनात्मक गहराई होती है, आवाज के उतार चढ़ाव के साथ कल्पनाशीलता उत्तेजित होने की क्षमता रेडियो प्रसारण में होती है।

13.2 रेडियो का इतिहास

रेडियो का आविष्कार 1896 में इटली के 27 वर्षीय वैज्ञानिक गुग्लिल्मो मारकोनी द्वारा किया गया। इसलिए गुग्लिल्मो मारकोनी (Gulielmo Marconi) को रेडियो का जनक कहा जाता है। जबकि रेडियो तरंगो का प्रयोग 1887 में भौतिकशास्त्री हेनरिच द्वारा प्रयोगशाला प्रयोगशाला प्रयोग में किया गया। सन् 1901 में गुग्लिल्मो मारकोनी पहला ट्रांसाटलांटिक रेडियो सिग्नल भेजा था। 1906 में भौतिकशास्त्री रेजिनाल्ड फेसेंडेन ने गायन संगीत को सबसे लम्बी दूरी का रेडियो प्रसारण भेजा जो एक जहाज पर "क्रिसमस कार्यक्रम" का प्रसारण था। विश्व में पहला रेडियो खोलने का प्रयास इंग्लैण्ड में मारकोनी कम्पनी द्वारा 23 फरवरी 1920 को चेम्स फोर्ड नामक स्थान पर किया था।

सन् 1917 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के बाद किसी भी गैर फौजी के लिए रेडियो का प्रयोग निषिद्ध कर दिया। पहला रेडियो स्टेशन 1918 में ली द फारेस्ट ने न्यूयार्क हाईब्रिज इलाके में दुनिया का पहला रेडियो स्टेशन शुरु किया पर कुछ दिनों बाद ही पुलिस को खबर लग गई की तो इसे बन्द कर दिया गया (पहले रेडियो चलाने की अनुमति प्राप्त नहीं थी)। 1920 में नौसेना के रेडियो विभाग में कार्य कर चुके फ्रैक कानार्ड ने पहला कानूनी तौर (अनुमति प्राप्त कर) रेडियो स्टेशन शुरु किया। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में रेडियो क्रान्ति के रूप में विस्तारित होने लगी। भारत सन् 1970 से 94 तक रेडियो के श्रोताओं की संख्या 5 गुना तक बढ़ गई थी। शुरुआत में श्रोताओं का ये आँकड़ों 14 लाख था। लेकिन बाद में ये आँकड़ा 65 लाख हो गया।

भारत में रेडियो की विधिवत स्थापना 31 मार्च 1926 को कंपनी एक्ट के तहत इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी की स्थापना हुई और 23 जुलाई 1927 को लाई इरविन ने इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी के मुम्बई केन्द्र से पहला प्रसारण शुरु करवाया। इस कम्पनी का स्वामित्व भी निजी था और राजा साहब धनराज गिरी 2.64 लाख लगाकर इसके सबसे बड़े हिस्सेदार बने। दूसरे स्थान पर इण्डियन रेडियो टेलीग्राफ कम्पनी थी जिसने 2.63 लाख रुपये लगाए थे। शेष 73,000 रुपये अन्य छोटे हिस्सेदारों के थे। यह समय आजादी की लड़ाई का था। सरकार निजी रेडियो पर लगाम लगाने की नीति बना रही थी। इसके तहत 15 जून 1927 को वायसराय के निर्देशानुसार केवल उन खबरों का प्रसारण किया जायेगा, जो राइटर्स और एसोसिएटेड प्रेस नामक समाचार एजेंसियों द्वारा जारी किए गए हों। जबकि स्वतन्त्र स्रोत से प्राप्त समाचारों के प्रसारण पर पाबन्दी थी। आजादी के 50 वर्षों बाद रेडियो सम्पूर्ण भारत पर अपना प्रभुत्व बनाने में सफल रहा। 1999 में एफ.एम. रेडियो निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया व निजी कम्पनियों को भी स्वामित्व मिलने लगा।

भारत में रेडियो के प्रसार के क्षेत्र में नरीमन प्रिंटर को एक साहसी अग्रदूत के रूप में आज भी याद किया जाता है। सरकार द्वारा रेडियो लाइसेन्स रद्द कर दिये गये थे। तब नरीमन ने रेडियो के पुर्जो को खोलकर कही छुपा दिया व बाद में आजादी की लड़ाई के लिए उन्होंने 10 कि.मी. क्षमता के स्थान पर 100 कि.मी. क्षमता का ट्रांसमीटर तैयार किया व भारत छोड़ों आन्दोलन को गति प्रदान की व जन सामान्य को सूचनाओं से जोड़कर स्थितियाँ साफ करने का प्रयास किया यद्यपि उन्हें जेल जाना पड़ा।

बोध प्रश्न-

1. रेडियो शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई?
2. रेडियो का आपातकाल में क्या महत्व है?
3. रेडियो के जनक कौन थे?
4. भारत में विधिवत तरीके से रेडियो कब स्थापित हुआ?

13. 4 भारत में रेडियो के प्रकार

भारत में रेडियो के तीन प्रकार से प्रचलित है, जो निम्नलिखित है।

1 सार्वजनिक रेडियो –

सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत प्रसारण सेवायें सरकारी अर्थात् सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुये किया जाता है। जिस पर सरकार का नियंत्रण होता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से है- विविध भारती के अन्तर्गत आकाशवाणी। बाद में एफ.एम. की प्रतिस्पर्धा हेतु एफ.एम. गोल्ड व रेनबो चैनल शुरु किये। इसमें रेडियो, टेलीविजन और अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आउटलेट शामिल हैं जिनका प्राथमिक मिशन सार्वजनिक सेवा है। सार्वजनिक प्रसारकों को लाइसेंस शुल्क, व्यक्तिगत योगदान, सार्वजनिक वित्तपोषण और वाणिज्यिक वित्तपोषण सहित विभिन्न स्रोतों से धन प्राप्त होता है, और वे राजनीतिक हस्तक्षेप और वाणिज्यिक प्रभाव दोनों से बचने का दावा करते हैं। आम मीडिया में एएम, एफएम और शॉर्टवेव रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट शामिल हैं। देश और स्टेशन के आधार पर सार्वजनिक प्रसारण राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर पर संचालित हो सकता है। कुछ देशों में एक ही संगठन सार्वजनिक प्रसारण चलाता है। अन्य देशों में कई सार्वजनिक.प्रसारण संगठन हैं जो क्षेत्रीय रूप से या विभिन्न भाषाओं में काम करते हैं। ऐतिहासिक रूप से सार्वजनिक प्रसारण कभी कई देशों में प्रसारण का प्रमुख या एकमात्र रूप था ;संयुक्त राज्य अमेरिकाए मैक्सिको और ब्राजील के उल्लेखनीय अपवादों के साथद्ध। इनमें से अधिकांश देशों में अब वाणिज्यिक प्रसारण भी मौजूद है। 20वीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान केवल सार्वजनिक प्रसारण वाले देशों की संख्या में काफी गिरावट आई। सार्वजनिक प्रसारण का प्राथमिक मिशन सार्वजनिक सेवा एक नागरिक के रूप में बात करना और उससे जुड़ना है।

2 निजी रेडियो-

सन् 2000 के बाद से भारत में निजी स्वामित्व के अन्तर्गत प्रसारण सेवायें निजी संस्था द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य हेतु प्रसारित करने की अनुमति प्रदान की गयी है। इसके अन्तर्गत संस्थागत नियंत्रण रेडियो मालिक

संस्था द्वारा स्थापित होता है, जैसे- एफ.एम. रेडियो। इसको वाणिज्यिक व सार्वजनिक सेवा की सीमा में रखा गया है। एक निजी रेडियो सेवा एक ऐसी प्रणाली है जो व्यक्तियों को न्यूनतम या बिना किसी विशेष लाइसेंस या व्यक्तिगत प्राधिकरण के निजी उद्देश्यों के लिए रेडियो ट्रांसमीटर और रिसीवर संचालित करने की अनुमति देती है। निजी रेडियो सेवाएं दुनिया भर में मौजूद हैं और आम तौर पर हल्के वजन वाले वॉकी टॉकी पोर्टेबल रेडियो का इस्तेमाल करती हैं। उपकरण का पावर आउटपुट, एंटीना आकार और तकनीकी विशेषताएं प्रत्येक देश में नियमों द्वारा निर्धारित की जाती हैं। कई क्षेत्रों उदाहरण के लिए यूरोपीय संघ ने एक देश के यात्रियों को दूसरे देश में अपने उपकरण का उपयोग करने की अनुमति देने के लिए निजी रेडियो सेवा नियमों को मानकीकृत किया है।

मानकीकृत सेवाओं के उदाहरणों में यूरोपीय संघ और कई अन्य देशों में पीएमआर MHz मेगाहर्ट्ज और एफएम सिटिज़न्स बैंड रेडियो (सीबी) शामिल हैं। 26.27 MHz मेगाहर्ट्ज एक व्यक्तिगत रेडियो सेवा हैंडहेल्ड रेडियो यह यूरोपीय **PMR 446** सेवा के साथ उपयोग के लिए है। चूँकि रेडियो स्पेक्ट्रम आवंटन दुनिया भर में अलग-अलग होता है, इसलिए व्यक्तिगत रेडियो सेवा उपकरण खरीद के अपने मूल क्षेत्र के बाहर उपयोग करने योग्य नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए विशिष्ट फैमिली रेडियो सर्विस रेडियो उन आवृत्तियों पर काम करते हैं जो यूरोप में अग्नि और आपातकालीन सेवाओं को आवंटित की जाती हैं। किसी व्यक्तिगत रेडियो उपकरण के संचालन से अन्य सेवाओं में व्यवधान उत्पन्न होने पर मुकदमा चलाया जा सकता है। कुछ व्यक्तिगत रेडियो सेवा आवृत्ति योजनाएँ क्षेत्रीय रूप से स्वीकार की जाती हैं, उदाहरण के लिए- यूरोपीय पीएमआर MHz प्रणाली कई देशों में उपलब्ध है, और अमेरिकी **FRS/GMRS** प्रणाली की चैनल योजनाओं को कनाडा, मैक्सिको और दक्षिण अमेरिका के कुछ देशों द्वारा अपनाया गया है।

13.4.3 सामुदायिक रेडियो-

सामुदायिक रेडियो, रेडियो सेवा का एक प्रकार है। जो वाणिज्यिक सार्वजनिक सेवा से परे रेडियो का एक तीसरा मॉडल प्रदान करता है। सामुदायिक रेडियो अन्य दो की तुलना में भिन्न है। उपरोक्त दो प्रकार के रेडियो का प्रचलन रेडियो के प्रारम्भिक समय से रहा है जबकि तीसरा मॉडल सामुदायिक रेडियो का चलन अधिक प्राचीन नहीं है। रेडियो की दूरियों को कम करने का यह श्रेष्ठ मार्ग है। जो समय की मांग के अनुरूप है। जो अन्य की ही भांति द्विपक्षीय संचार माध्यम है। किन्तु इस का प्रसारण विशेष समुदाय के लोगों तक सीमित होता है। 2002 में भारत सरकार ने प्रत्यावेदन स्वीकारते हुए शिक्षण संस्थानों में सामुदायिक संस्थाओं के लिए सामुदायिक रेडियो केन्द्र खोलने की स्वीकृति दी। सन् 2004 में अन्नामलाई यूनिवर्सिटी चेन्नई में भारत का पहला सामुदायिक रेडियो केन्द्र खोला। सामुदायिक रेडियो आधुनिक संचार माध्यम का एक सशक्त मार्डल है जो स्थानीय विशिष्ट श्रोताओं के बीच अधिक लोकप्रिय है। सामुदायिक रेडियो का प्रसारण आर्थिक लाभ के उद्देश्य से नहीं किया जाता है। बल्कि संस्था, समूह, व्यक्ति विशेष द्वारा कम्पनी अपनी विविध किस्से कहानियाँ व वैचारिक आदान-प्रदान व समूह मनोरंजन हेतु किया जाता है। इसका स्वामित्व भी व्यक्ति समूह, संस्था, समुदाय

के हाथों में होता है। यह एक बेहतर सुलभ, आसान संचार माध्यम के रूप में दुनियां में प्रचलित हो रहा है। जो समुदाय, समूह को मानसिक, वैचारिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक रूप से एकत्र व एक सूत्र में पिरोने का महत्वपूर्ण साधन बन रहा है। जो अन्य संचार साधनों में उपलब्ध नहीं है। विभिन्न देशों ने सामुदायिक रेडियो को अपने उद्देश्यों के अनुरूप परिभाषित किया है, सामान्यतः सामाजिक लाभ, सामाजिक उद्देश्य, सामाजिक प्राप्ति जैसे शब्दों को शामिल किया गया है। यूनाइटेड किंगडम, आयरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा और आस्ट्रेलिया में इसका अर्थ अलग है। ब्रिटेन में सामुदाय आधारित सेवाओं के विचार के चिह्न कम से कम ब्रिटेन में, सामुदाय-आधारित सेवाओं के विचार के चिह्न कम से कम 1960 के दशक के आरंभ में बीबीसी (BBC) स्थानीय रेडियो की मूल अवधारणा के समय में पाए जा सकते हैं। इसके बाद भूमि स्थित विभिन्न गैर-लाइसेंसी चोर रेडियो स्टेशनों (जैसे कि ईस्ट लंदन रेडियो और रेडियो एएमवाईः ऑल्टरनेटिव मीडिया फॉर यू) ने इस विचार को और विकसित किया। जैसे-जैसे ये चोर रेडियो 1970 के दशक के अंत में और 1980 के दशक के आरम्भ में बड़ी तादाद में पैदा होने लगे, तब खासकर लंदन, बर्मिंघम, ब्रिस्टल और मैनचेस्टर जैसे शहरों में इन स्टेशनों के साथ अल्पसंख्यक आप्रवासी समुदायों (अफ्रीकी-कैरिबियाई और एशियाई आदि) के प्रसारण जुड़ने लगे, हालांकि ब्रिटेन में कुछ लोगों के लिए 'सामुदायिक रेडियो'' ''चोर रेडियो'' का पर्यायवाची बना रहा, अधिकांश आप्रवासी स्टेशन शुद्ध रूप से विशिष्ट संगीत शैलियों पर केन्द्रित रहे और (कम से कम सैद्धांतिक रूप से) लाभ के आधार पर संचालित होते रहे। अपनी संरचना के निर्माण के अंतर्गत समुदाय के स्वामित्व और नियंत्रण के साथ ब्रिटेन की समुदाय रेडियो सेवाएं अलाभकारी आधार पर संचालित होती हैं। ब्रिटेन के पूर्व प्रसारण नियामक द रेडियो ऑथोरिटी द्वारा एक प्रयोग के तहत 2001 में शुरू किया गाय। सन् 2005 तक यूके ब्रॉडकास्टिंग रेगुलेटर ऑफऑम द्वारा कोई 200 ऐसे स्टेशनों को लाइसेंस दिया गया। इस तरह के ज्यादातर स्टेशन आम तौर पर लगभग 25 वॉट (प्रति प्लेन) के विकिरण शक्ति स्तर पर, एफएम पर प्रसारण करते हैं, यद्पि विशेषकर अधिक ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ एएम (मीडियम वेव) पर भी संचालित होते है।

बोध प्रश्न-

1. सार्वजनिक रेडियो के वित्तीय स्रोत क्या है?
2. आपातकालीन रेडियो प्रसारण में निजी रेडियो कैसे व्यवधान पैदा करते है?
3. सामुदायिक रेडियो सार्वजनिक एवं निजी रेडियो से कैसे भिन्न है?
4. रेडियो ने संस्कृति व परंपरा को कैसे प्रभावित किया है?

13.5 रेडियो और समाज

रेडियो का समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली भूमिका रही है। यह एक सशक्त माध्यम है, जो सूचना, शिक्षा, मनोरंजन और जागरूकता फैलाने का काम करता है। रेडियो की भूमिका को विभिन्न पहलुओं से देखा जा सकता है:

(1) सूचना का माध्यम

रेडियो का उपयोग सबसे पहले सूचना प्रसार के लिए किया गया। यह विशेष रूप से ग्रामीण और दुर्गम क्षेत्रों में सूचना पहुंचाने का प्रभावी साधन बना। रेडियो पर प्रसारित समाचार लोगों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं

की जानकारी देते हैं। यह प्राकृतिक आपदाओं, चुनावों, सरकारी नीतियों और योजनाओं से संबंधित सूचनाओं को तुरंत जनता तक पहुंचाने में मदद करता है। संकट के समय जैसे युद्ध या आपदाओं के दौरान, रेडियो ने सही और सटीक जानकारी प्रदान की है।

(2) शिक्षा का साधन-

रेडियो ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "शैक्षिक प्रसारण" के माध्यम से छात्रों और शिक्षकों को पाठ्यक्रम आधारित शिक्षा प्रदान की जाती है। अनपढ़ और अशिक्षित लोगों को जागरूक करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जैसे कृषि संबंधी जानकारी, स्वास्थ्य संबंधित सुझाव, और व्यावसायिक प्रशिक्षण। सरकार और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा चलाए गए "कम्युनिटी रेडियो" कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता बढ़ाने में सहायक रहे हैं।

(3) मनोरंजन का साधन-

रेडियो मनोरंजन का एक प्रमुख स्रोत रहा है, खासकर उन समयों में जब टेलीविजन और इंटरनेट का प्रसार सीमित था। संगीत, नाटक, कॉमेडी शो, और लोक गीत जैसे कार्यक्रम जनता के बीच बहुत लोकप्रिय रहे। आज भी FM चैनल्स पर विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम जैसे गाने, इंटरव्यू और लाइव शो सुने जाते हैं।

(4) संस्कृति और परंपरा का संवाहक-

रेडियो ने भारतीय समाज की विविधता और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित और बढ़ावा देने में अहम भूमिका निभाई है। क्षेत्रीय भाषाओं में प्रसारण ने स्थानीय संस्कृति को प्रोत्साहन दिया। लोक गीत, कहानियां और त्योहारों पर आधारित विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से पारंपरिक विरासत को जन-जन तक पहुंचाया गया।

(5) जागरूकता और सामाजिक बदलाव -

रेडियो ने सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता फैलाने और सकारात्मक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं के अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल विवाह, स्वच्छता, और पर्यावरण संरक्षण जैसे विषयों पर आधारित कार्यक्रम समाज में जागरूकता लाते हैं। रेडियो पर चलाए गए अभियानों जैसे "मान की बात" और "स्वच्छ भारत मिशन" ने समाज में बड़े स्तर पर प्रभाव डाला है।

(6) संचार की सुलभता-

रेडियो का उपयोग करना आसान और किफायती है। यह उन लोगों तक भी पहुंचता है, जो इंटरनेट या टेलीविजन का उपयोग नहीं कर सकते। ग्रामीण क्षेत्रों और गरीब तबके के लोग रेडियो को अपनी जरूरतों के अनुसार इस्तेमाल करते हैं। ट्रांजिस्टर से लेकर मोबाइल तक, रेडियो ने समय के साथ अपनी पहुंच बनाए रखी है।

(7) लोकतंत्र के विकास में भूमिका-

रेडियो ने लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने में भी योगदान दिया है। यह जनता और सरकार के बीच संवाद का माध्यम है। चुनाव के समय रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम लोगों को मतदान के महत्व और प्रक्रिया की जानकारी देते हैं।

(8) आर्थिक विकास में योगदान-

रेडियो विज्ञापन का एक प्रमुख माध्यम है। यह छोटे और बड़े व्यवसायों को अपने उत्पाद और सेवाएं प्रचारित करने का अवसर देता है। किसान और व्यापारी रेडियो पर कृषि, बाजार और मौसम से संबंधित जानकारी प्राप्त करते हैं।

13.6 निष्कर्ष

रेडियो ने तकनीकी प्रगति के बावजूद आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए रखी है। यह समाज के सभी वर्गों के लोगों को जोड़ने का एक सशक्त माध्यम है। रेडियो न केवल सूचना और मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि यह शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक बदलाव का एक माध्यम भी है। विशेष रूप से भारत जैसे विविधता से भरे देश में, रेडियो का योगदान समाज को एकीकृत और सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण है। रेडियो ने संचार जगत में मानवीय कल्पनाओं को साकार किया जो नगाड़ों, मुनादी कबूतर सन्देश, घण्टे घड़ियाल जैसे परम्परागत संचार साधनों का परिवर्तित तकनीकी स्वरूप व वैज्ञानिक युग का प्रतिनिधित्व कर रहा था। यह एक ऐसा संचार माध्यम है जिसकी पहुंच अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा अधिक है।

13.7 पारिभाषिक शब्दावली

-एफएम- फ्रीक्वेंसी माड्यूलेशन यह ध्वनि संकेतों को डिकोड कर हवा द्वारा संचालित होता है।
-एएम- एम्पलीट्यूड मॉड्यूलेशन, यह भी ध्वनि संकेतों को डिकोड कर हवा द्वारा संचालित होता है।
-जीएमआरएस-जनरल मोबाइल रेडियो सर्विस.
-MHz(मेगाहर्ट्ज)- अर्थात प्रति सेकेण्ड 10.6 हजार चक्र.
-बीबीसी- ब्रिटिश ब्रॉडकस्टिंग कॉरपोरेशन.

13.8 संदर्भ सूची/सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुस्तकें (Books)

डगलस, एसजे (1987), इन्वेंटिंग अमेरिकन ब्रॉडकास्टिंग, 1899–1922, जॉन्स हॉपकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस। स्टर्लिंग, सीएच और किट्रॉस, जेएम. (2002)। स्टे ट्यूनड: ए हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन ब्रॉडकास्टिंग। हेनसी, बी. (2005)। द एमर्जेंस ऑफ ब्रॉडकास्टिंग इन ब्रिटेन, मेथ्यून पब्लिशिंग।

2. लेख और पत्रिकाएं (Articles and Journals)

मार्विन, सी. (1990)। "व्हेन ओल्ड टेक्नोलॉजीज वेर न्यू: द रोल ऑफ रेडियो इन कम्युनिकेशन हिस्ट्री।" मीडिया हिस्ट्री रिव्यू, वॉल्यूम 8(3), पृष्ठ 27–42.

कैट्ज़, ई., और लाजर्सफेल्ड, पी. एफ. (1955)। "रेडियो का जनसंचार में योगदान।" पब्लिक ओपिनियन क्वार्टरली, वॉल्यूम 19(4), पृष्ठ 43–54.

3. रिपोर्ट्स (Reports)

-शोध प्रबंध, ‘‘सामुदायिक रेडियो का समाज में प्रभावः उत्तराखण्ड के विशेष संदर्भ में’’(2024), राजेन्द्र सिंह क्वीरा।

-यूनेस्को (2001), द हिस्ट्री एंड एवोल्यूशन ऑफ रेडियो ऐज ए मीडियम ऑफ मास कम्युनिकेशन, पेरिस: यूनेस्को। अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (ITU) (2019)।

ए सेंचुरी ऑफ रेडियो: ग्लोबल एवोल्यूशन एंड इम्पैक्ट। जेनेवा: ITU.

4. वेब स्रोत (Web Sources)

बीबीसी इतिहास। "रेडियो ब्रॉडकास्टिंग का जन्म।" https://www.bbc.co.uk/history से प्राप्त। स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन। "रेडियो का विकास और प्रभाव।" https://www.si.edu से प्राप्त।

13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 रेडियो का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट करें व इसके विकासात्मक इतिहास पर प्रकाश डाले।

2 रेडियो के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से है? किसी एक पर विस्तार पूर्वक उदाहरण सहित वर्णन करें।

3 रेडियो की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? स्पष्ट करें।

4 अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा रेडियो कैसे अलग है?

इकाई- 14 चलचित्र
Cinema

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 चलचित्र: अर्थ एवं परिभाषा
14.3 चलचित्र के प्रकार
14.4 चलचित्र की विशेषताएँ
14.5 चलचित्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
14.6 सेंसर बोर्ड: चलचित्र के एक नियत्रंक के रूप में
14.7 चलचित्र की जनमत में भूमिका
14.8 चलचित्र का सामाजिक नियत्रंण में महत्व
14.9 सारांश
14.10 परिभाषिक शब्दावली
14.11 बोध प्रश्न के उत्तर
14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.14 लघु उत्तरीय प्रश्न
14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग में, चलचित्र (फिल्म) ने सामाजिक नियंत्रण के एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में अपना स्थान स्थापित किया है। समाज में नियंत्रण बनाए रखने और समाज के सदस्यों के व्यवहार को एक निश्चित दिशा में निर्देशित करने में चलचित्र (फिल्मों) ककी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चलचित्र को समान्य भाषा में "फिल्म" कहा जाता है। फिल्में केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि एक ऐसा शक्तिशाली माध्यम है जो लोगों के विचारों, भावनाओं और व्यवहार को प्रभावित करता है। अत: चलचित्र, जनमत का प्रमुख साधन है। चलचित्र एक सूक्ष्म किंतु प्रभावी उपकरण के रूप में उभरता है जो व्यक्तियों और समुदायों को नियंत्रित करने, प्रेरित करने और शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षार्थियों यह इकाई इस बात पर प्रकाश डालती है कि

कैसे चलचित्र समाजिक नियंत्रण को प्रभावित करते हैं और कैसे वे समाजिक मूल्यों, नियमों, और व्यवहारों को आकार देने में मदद करते हैं।

14.1 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपके द्वारा समझना सम्भव होगा –

- चलचित्र का अर्थ एवं परिभाषा
- चलचित्र की विशेषताएँ
- चलचित्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- सेंसर बोर्ड: चलचित्र के एक नियत्रंक के रूप में
- चलचित्र की जनमत में भूमिका
- चलचित्र का सामाजिक नियत्रंण में महत्व

14.2 चलचित्र का अर्थ एवं परिभाषाएं

चलचित्र शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - "चल" और "चित्र"। "चल" का अर्थ है गतिशील या हिलता-डुलता, और "चित्र" का अर्थ है छवि या तस्वीर। इस प्रकार, चलचित्र का शाब्दिक अर्थ है "गतिशील छवियाँ" या "हिलते-डुलते चित्र"। यह एक ऐसा माध्यम है जिसमें चित्रों को गति देकर एक कहानी को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया जाता है। चलचित्र को "सिनेमा" या "मूवी" भी कहा जाता है। द्सरे शब्दों में चलचित्र एक कलात्मक और तकनीकी माध्यम है जिसमें कैमरे की सहायता से चित्रों को रिकॉर्ड किया जाता है और उन्हें एक निश्चित गति से प्रदर्शित किया जाता है। जिससे दर्शकों को एक सुसंगत और प्रभावशाली कहानी का अनुभव हो सके। इसमें अभिनय, निर्देशन, संगीत, संपादन, और अन्य तकनीकी तत्वों का समन्वय होता है।
चलचित्र अभिव्यक्ति एवं जनमत का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम है। "इसमें कोई दो राय नहीं की सिनेमा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुए रचनात्मक माध्यम बना है। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, नाटक, कविता, रिपोर्ताज, रेखाचित्र सभी को सिनेमा ने एक सशक्त अभिव्यक्ति दी है। सिनेमा सृजनात्मक और यांत्रिक प्रतिभा का सुन्दर संगम बन बया है।"

परिभाषा- विभिन्न विद्वानों ने चलचित्र को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। जिनमें प्रमुख निम्नवत् है-

ब्लादीमियर इल्यीज लेनीन[1] ''हमारे लिए सिनेमा सभी कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण है। सिनेमा न केवल लोगों के मनबहाल का बल्कि सामाजिक शिक्षा, संवाद स्थापित करने का तथा हमारी विशाल जनसंख्या को एक सूत्र में बांध लेने का सशक्त साधन है।''

लुई बुनुएल[2] ''सिनेमा स्वपनलोक, मानवीय भावनाओं को उनकी सम्पूर्णता में दिखाने और मानवीय संवेगों को चित्रित करने का सर्वोत्तम माध्यम है।''

फिल्मकार कमलस्वरूप[3] "सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि और समष्टी के सम्बन्ध का विज्ञान है । विभिन्न नाटय एवं ललित कलाओ का सम्मिश्रण है। किसी घटना के काल और दिक् के आयामों का रूपांकन है।"

2) विजय शर्मा[4] "फिल्म साहित्य से अलग एक भिन्न विधा है। यहां कथानक होता है मगर वही सबकुछ नहीं होता है । फिल्म भिन्न मुहावरों में बात करती है।"

3) आलोक पांडेय[5] "दरअसल सिनेमा सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है, वह एक अन्वेषणकारी माध्यम भी है। वह बहुत कुछ ऐसा भी कहता और करता है, जिसे शब्दों में नही कहा जा सकता।"

4) बसंतकुमार तिवारी[6] "सिनेमा एक बड़ा धोखा है। कुछ भी नहीं होकर वह चलचित्रों से दर्शक को इतना आत्मविभोर कर देता है कि कुछ समय के लिए वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है।"

5) डॉ. कैलाशनाथ पांडेय[7] "जीवन की हर झांकी और मंजर को रूपायित करनेवाला सिनेमा संसार का सबसे सुंदर सांस्कृतिक उपहार है।"

6) शुचिता शरण[8] "सिनेमा को एक कला, एक व्यवसाय, एक उद्योग, एक नकली दुनिया, चकाचौंध, एक हकीकत अनेक विशेषणों से संबोधित किया जा सकता है।"

यहाँ विभिन्न विद्वानों ने सिनेमा की विविध परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हुए इसे समझने का प्रयास किया है। हालांकि, इन परिभाषाओं में से किसी को भी पूर्णतया सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता। ये सभी मिलकर भी सिनेमा के स्वरूप को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पातीं। फिर भी, इनके माध्यम से सिनेमा की प्रकृति को आंशिक रूप से समझने में कुछ सहायता अवश्य मिलती है। किंतु सिनेमा को समग्र रूप में जानने के लिए केवल इन परिभाषाओं पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। यदि सिनेमा के स्वरूप को सही अर्थों में समझना हो तो हमें फिल्मों के विभिन्न प्रकारों अध्ययन करना आवश्यक होगा।

14.3 चलचित्र के प्रकार

चलचित्र को उनकी शैली (style) या जॉनर (Genre) के आधार पर कई प्रकारों में विभाजित किया गया है। शैली का उद्देश्य चलचित्रों को उनके विषयवस्तु की समानताओं के आधार पर वर्गीकृत करना है। "फिल्म सिध्दान्तकारों के मुताबिक जॅनर एक पध्दति है, जिसके जरिए फिल्मों के विषय अथवा उनकी विवरणात्मक शैली में दिखनेवाली समानता के आधार पर उन्हें वर्गिकृत किया जाता है। सिनेमा में यह थ्योरी साहित्य से आयी है।"[9] इस प्रकार यह सिद्धांत मूलतः साहित्य से सिनेमा में आया है। आज 18 प्रमुख जॉनर (शैली) में फिल्में बनती हैं, जैसे – एक्शन, अपराध, रहस्य, प्रेम, पारिवारिक, हॉरर, म्यूजिकल, थ्रिलर, हास्य, विज्ञान-कथा (साइंस फ़िक्शन मूवी) , युद्ध सिनेमा आदि।

भारतीय सिनेमा में भी विभिन्न विषयों पर आधारित फीचर फिल्मों का निर्माण होता रहा है, जिनमें से प्रमुख प्रकार निम्नवत् हैं:

1) प्रेम पर आधारित चलचित्र- हिंदी फिल्मों में प्रेम विषय को अलग-अलग दृष्टिकोणों से बार-बार प्रस्तुत किया गया है। लगभग हर मुख्यधारा की हिंदी फिल्म में प्रेम कहानी देखने को मिलती है। प्यार, मोहब्बत, इश्क़, आशिकी जैसे भावों पर केंद्रित इन फिल्मों में कभी प्रेम त्रिकोण दिखता है तो कभी जुदाई की लंबी पीड़ा। रिचर्ड हैरिसन के अनुसार, "Romance applied to stories, is generally taken to mean that there is a dominant love theme and the dictionary describes is (among several other things) as a love affair an series of facts having this character."[10] अर्थात् Romance उन कहानियों को कहा जाता है, जिनमें प्रेम एक प्रमुख विषय के रूप में उपस्थित रहता है।" आज भी प्रेमप्रधान फिल्मों का दबदबा हिंदी सिनेमा में कायम है।

2) हिंसा पर आधारित चलचित्र- आजकल बॉलीवुड में हिंसा पर आधारित फिल्मों की संख्या काफी बढ़ गई है। इन फिल्मों में दर्शकों को चौंकाने के लिए मारकाट, खूनखराबा और डरावने दृश्य प्रस्तुत किए जाते हैं।

3) हास्य प्रधान चलचित्र- हास्य अथवा कॉमेडी फिल्मों का उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन करना होता है। इनमें आम जीवन की घटनाओं पर आधारित व्यंग्य और मजाकिया स्थितियों के माध्यम से हास्य उत्पन्न किया जाता है। ऐसी फिल्में दर्शकों को कुछ समय के लिए उनके तनाव और परेशानियों से राहत देती हैं।

4) सामाजिक चलचित्र- समाज से जुड़े मुद्दों जैसे आर्थिक शोषण, जातिवाद, धोखाधड़ी, सामाजिक अन्याय, प्रांतवाद, सांप्रदायिकता आदि पर आधारित फिल्में सामाजिक फिल्में कहलाती हैं। ये फिल्में समाज की वास्तविकताओं को उजागर करती हैं और समाज को एक आईना दिखाने का कार्य करती हैं।

5) राजनीति पर आधारित चलचित्र- राजनीति पर आधारित फिल्मों की संख्या हिंदी सिनेमा में अपेक्षाकृत कम है, जबकि राजनीति हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है। इन फिल्मों में देश की राजनीतिक स्थिति, नेताओं

का चरित्र और राजनीतिक दांवपेंच को चित्रित किया जाता है। उल्लेखनीय राजनीतिक फिल्मों में आंधी, राजनीति, युवा, रंग दे बसंती, चक्रव्यूह, सत्याग्रह आदि शामिल हैं।

6) पारिवारिक चलचित्र- इन फिल्मों में पारिवारिक संबंधों, उनके संघर्षों और मूल्यों को केंद्र में रखा जाता है। भाई-भाई के झगड़े, माता-पिता के साथ संबंधों की खटास, पति-पत्नी के बीच विवाद जैसे विषय पारिवारिक फिल्मों का मुख्य आधार होते हैं। इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति, परंपरा और सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान में चलचित्र के अधिक विविध एवं नवीन प्रकार दृष्टिगोचर हो रहें हैं जिनमें से प्रमुख निम्नवत् है-

1 डॉक्यूमेंट्री फिल्म - डॉक्यूमेंट्री फिल्मों का उद्देश्य सूचना और शिक्षा देना होता है। ये फिल्में कल्पना पर आधारित नहीं होतीं बल्कि वास्तविकता को प्रस्तुत करती हैं। इनका बजट फीचर फिल्मों से कम होता है और इन्हें आमतौर पर सरकारी या गैरसरकारी संस्थाओं के अनुदान से बनाया जाता है। वृत्तचित्र फिल्मों का प्रदर्शन सिनेमाघरों के बजाय फिल्म समारोहों और टीवी चैनलों पर होता है। इनके विषयों में पर्यावरण, जनस्वास्थ्य, सामाजिक समस्याएं आदि शामिल होते हैं। डॉक्यूमेंट्री फिल्म सूचनात्मक, यात्रा वृत्तांत, सामाजिक मुद्दों आधारित एक शोधपरक चलचित्र होता है ।

2 टेलीफिल्म- टेलीफिल्म का निर्माण विशेष रूप से टेलीविजन प्रसारण के लिए किया जाता है। कथानक, पात्र, संघर्ष, संगीत आदि में यह फीचर फिल्मों जैसी होती हैं, लेकिन इनकी लागत कम होती है। टेलीफिल्मों का मुख्य उद्देश्य विकास अभियानों को बढ़ावा देना है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में। इसके माध्यम से जनस्वास्थ्य, जल संरक्षण, बाल विकास, सफाई आदि मुद्दों पर लोगों को जागरूक किया जाता है।

3 एनिमेशन और कार्टून फिल्म- एनिमेशन और कार्टून फिल्में बच्चों के लिए विशेष रूप से बनाई जाती हैं। इनमें आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर दंतकथाओं, पुराणों, प्राचीन कहानियों को रोचक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। आज एनिमेशन फिल्मों का आकर्षण बच्चों से लेकर बड़ों तक सबमें देखा जा सकता है।

4 विज्ञापन फिल्म- व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए बनाई गई छोटी फिल्मों को विज्ञापन फिल्में कहा जाता है। इन फिल्मों में लोकप्रिय कलाकारों का इस्तेमाल कर उत्पादों और सेवाओं को बढ़ावा दिया जाता है। टीवी चैनलों और सिनेमाघरों में फीचर फिल्मों के बीच इनका प्रदर्शन होता है। विज्ञापन फिल्मों ने आज एक स्वतंत्र पहचान बना ली है, जो ग्राहकों और निर्माताओं दोनों के लिए लाभकारी साबित हो रही है।

14.4 चलचित्र की विशेषताएँ

चलचित्र न केवल एक मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि ये सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी दृष्टिकोण से समय के साथ विकसित होते रहते हैं। इनमें कथा कहने की कला, तकनीकी कौशल, और सामाजिक संदेशों का अद्भुत मिश्रण होता है, जो इन्हें मानव अनुभव के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में स्थापित करता है-

1. चलचित्र दृश्य (देखने योग्य) और श्रव्य (सुनने योग्य) दोनों माध्यमों का उपयोग करता है, जिससे कहानी या संदेश अधिक प्रभावशाली बनता है। यह एक कहानी या विचार को संप्रेषित करने का माध्यम होते हैं।
2. प्रत्येक चलचित्र में एक विषय और संदेश निहित होता है, जो सामाजिक, नैतिक या दार्शनिक सवाल उठाता है।
3. चलचित्र घटनाओं, भावनाओं और परिस्थितियों को इतनी जीवंतता से प्रस्तुत करता है कि दर्शकों को यथार्थ का अनुभव होता है।
4. चलचित्र न केवल मनोरंजन करता है बल्कि सामाजिक, शैक्षिक और नैतिक संदेश भी प्रदान करता है।
5. चलचित्र एक साथ बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करता है, जिससे इसका सामाजिक प्रभाव अत्यधिक होता है।
6. चलचित्रों में कैमरा, संपादन, ध्वनि प्रभाव, प्रकाश व्यवस्था और विशेष प्रभाव जैसी आधुनिक तकनीकों का प्रयोग होता है।
7. चलचित्र दर्शकों के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करता है। जिससे वे पात्रों और कहानी के साथ गहराई से जुड़ जाते हैं। प्रभावशाली चलचित्रों में चरित्रों का गहन और विश्वसनीय चित्रण होता है, जिससे दर्शक उनके साथ भावनात्मक रूप से जुड़ते हैं। कलाकारों का प्रदर्शन, उनके भाव-भंगिमा, अभिव्यक्ति, और संवाद प्रस्तुति चलचित्र के विश्वसनीयता तथा दर्शकों के साथ संबंध स्थापित करने में अहम होते हैं।
8. चलचित्र अक्सर समाज, संस्कृति, राजनीति, और मानवीय संवेदनाओं की झलक दिखाते हैं। यह दर्शकों को न केवल मनोरंजन बल्कि सोचने पर मजबूर करने वाले प्रश्न भी उठाते हैं।
9. चलचित्र समाज की संस्कृति, परंपराओं, मूल्यों और जीवनशैली को प्रतिबिंबित करता है।
10. चलचित्र में अभिनय, संगीत, नृत्य, चित्रण, लेखन आदि विभिन्न कलाओं का समन्वय होता है।
11. चलचित्र समय-समय पर सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा बनते हैं। समीक्षा और आलोचना से इनकी व्यापकता और प्रभाव का आकलन होता है।

12. कैमरा तकनीक, साउंड रिकॉर्डिंग, डिजिटल संपादन, और विजुअल इफेक्ट्स में निरंतर नवाचार ने चलचित्र निर्माण को नए आयाम प्रदान किए हैं।

अत: चलचित्र एक जटिल कला और मनोरंजन का रूप है जिसमें अनेक घटकों और तकनीकी तथा रचनात्मक पहलुओं का समागम होता है।

14.5 चलचित्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चलचित्र का आरंभ 19वीं सदी के अंत में हुआ, जब लुमिएर ब्रदर्स ने 1895 में पहली बार पेरिस में अपने लघु चलचित्र का प्रदर्शन किया। यह घटना आधुनिक सिनेमा के उदय का प्रतीक बनी। धीरे-धीरे, चलचित्र तकनीक में सुधार हुआ, और मूक फिल्मों से लेकर ध्वनि, रंग और डिजिटल फिल्मों का विकास हुआ। भारत में, दादा साहब फाल्के को भारतीय सिनेमा का जनक माना जाता है, जिन्होंने 1913 में पहली भारतीय फिल्म "राजा हरिश्चंद्र" बनाई। इसके बाद भारतीय सिनेमा ने तेजी से प्रगति की और अब यह दुनिया में सबसे बड़ा फिल्म उद्योग बन चुका है।

दादा साहब फाल्के की मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' धार्मिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित थी और उस समय के समाज में प्रचलित नैतिकता और पारंपरिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करती थी। प्रारंभिक सिनेमा का उद्देश्य दर्शकों को मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक शिक्षा देना था जैसे कि सत्य, धर्म, और कर्तव्य का पालन। ये फिल्में समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए पारंपरिक मानदंडों को बढ़ावा देती थीं। चलचित्र का इतिहास 19वीं सदी के अंत से शुरू होता है, जब पहली मूक फिल्में प्रदर्शित हुईं। भारत में, 1913 में दादासाहेब फाल्के द्वारा निर्मित "राजा हरिश्चंद्र" ने भारतीय सिनेमा की नींव रखी। उस समय से लेकर आज तक, चलचित्र ने सामाजिक संदेशों को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी फिल्मों ने राष्ट्रवाद की भावना को प्रज्वलित किया, जैसे आनंद मठ (1952) और शहीद (1965)। बाद में, सामाजिक सुधारों पर आधारित फिल्मों जैसे "दो बीघा जमीन" और "मदर इंडिया" ने गरीबी, असमानता और नारी शक्ति जैसे मुद्दों को उजागर किया। इस तरह, चलचित्र ने हमेशा समाज को नियंत्रित करने और दिशा देने का प्रयास किया है। भारत में चलचित्र के प्रमुख चरण निम्नवत् है-

1 चलचित्र का प्रारंभिक समय

1930 और 1940 के दशक में, सिनेमा ने सामाजिक मुद्दों को उठाना शुरू किया। कई फिल्मो 'अछूत कन्या' (1936) जैसी फिल्म ने जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता जैसे संवेदनशील विषयों को छुआ। जो उस समय समाज में गहरे जड़ें जमाए हुए थे। यह फिल्म एक प्रेम कहानी के माध्यम से सामाजिक सुधार का संदेश देती थी, लेकिन साथ ही यह पारंपरिक मूल्यों जैसे परिवार और सम्मान को भी बनाए रखती थी।

2 चलचित्र का स्वर्ण युग: 1940-1960

1940 से 1960 का दशक भारतीय सिनेमा का स्वर्ण युग माना जाता है। यह समय सिनेमा में कलात्मकता, सामाजिक मुद्दों की प्रस्तुति और प्रभावशाली निर्देशकों के उभार से परिपूर्ण था। इस काल में राज कपूर, गुरु दत्त और बिमल रॉय जैसे दिग्गज निर्देशक सामने आए। मदर इंडिया' (1957), 'दो बीघा ज़मीन' (1953), और 'प्यासा' (1957), सामाजिक असमानताओं, गरीबी, और मानवीय संघर्ष को उजागर करती थीं। 'मदर इंडिया' में एक ग्रामीण महिला की कहानी दिखाई गयी है। जो अपने परिवार की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। यह फिल्म भारतीय माँ की छवि को आदर्श बनाती है, जो बलिदान और धैर्य का प्रतीक है। ये फिल्में समाज में मौजूद समस्याओं को उठाती थीं, लेकिन अक्सर पारंपरिक मूल्यों जैसे परिवार की एकता और नैतिकता को ही अंतिम समाधान के रूप में प्रस्तुत करती थीं। राज कपूर की 'आवारा' (1951) जैसी फिल्मों ने सामाजिक न्याय और आम आदमी के संघर्ष को प्रमुखता दी। गुरु दत्त की 'प्यासा' (1957) और 'कागज़ के फूल' (1959) जैसे कृतियों ने प्रेम और अस्तित्व की जटिलताओं को प्रभावी ढंग से चित्रित किया। वहीं बिमल रॉय की 'दो बीघा ज़मीन' (1953) ने यथार्थवादी सिनेमा की ओर एक नया रास्ता खोला।

3 एक्शन और मसाला फिल्मों का समय: 1970-1980

1970 और 1980 के दशक में सिनेमा ने एक नया मोड़ लिया। इस दौर में 'शोले' (1975) और 'दीवार' (1975) जैसी फिल्में लोकप्रिय हुई। ये फिल्में एक्शन, ड्रामा, और भावनाओं का मिश्रण थीं, जो भ्रष्टाचार, कानून-व्यवस्था, और व्यक्तिगत न्याय जैसे विषयों पर केंद्रित थीं। 'शोले' ने नायक को समाज के रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। जिसने दर्शकों में कानून के प्रति सम्मान और अपराध के खिलाफ भावना को मजबूत किया। इस दौर में सिनेमा ने सामाजिक नियंत्रण को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया, क्योंकि यह समाज में व्यवस्था बहाल करने के विचार को बढ़ावा देता था।

चलचित्र पर वैश्वीकरण का प्रभाव: 1990 से अब तक

1990 के दशक में वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के साथ सिनेमा में भी बदलाव आया। 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' (1994) और 'कुछ कुछ होता है' (1998) जैसी फिल्मों ने शहरी जीवनशैली, युवा प्रेम, और विदेशी संस्कृति को दर्शाया। इन फिल्मों में पारंपरिक और आधुनिक मूल्यों का मिश्रण था। उदाहरण के लिए, 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' में नायक और नायिका विदेश में रहते हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति और पारिवारिक मूल्यों का सम्मान करते हैं। इस तरह, सिनेमा ने वैश्वीकरण के दौर में भी सामाजिक नियंत्रण को बनाए रखने में मदद की।

इस प्रकार, भारतीय सिनेमा का विकास समाज के बदलते स्वरूप के साथ हुआ है। यह समाज के मूल्यों को प्रतिबिंबित करता रहा है और कई बार उन्हें आकार भी देता रहा है।

बोध प्रश्न 1

1: "चलचित्र" शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

A) स्थिर चित्र

B) गतिशील चित्र

C) केवल चित्र

D) केवल छाया

प्रश्न 2: भारतीय सिनेमा के जनक कौन माने जाते हैं?

A) राज कपूर

B) गुरु दत्त

C) दादा साहब फाल्के

D) बिमल रॉय

प्रश्न 3: "राजा हरिश्चंद्र" किस प्रकार की फिल्म थी?

A) संगीत प्रधान

B) मूक फिल्म

C) रंगीन फिल्म

D) एक्शन फिल्म

14.6 सेंसर बोर्ड: चलचित्र के एक नियत्रंक के रूप में

फिल्मों में सेंसरशिप का मतलब है, फिल्मों के प्रदर्शन से पहले उनके विषय-वस्तु, संवाद, दृश्य, गाने आदि की जांच और नियंत्रण। यदि फिल्म में कोई आपत्तिजनक या नियमों के विरुद्ध सामग्री पाई जाती है, तो सेंसर बोर्ड उसे हटाने, काटने या संशोधित करने का आदेश दे सकता है।

भारत में फिल्मों की सेंसरशिप का काम केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड के तहत होता है। यह बोर्ड सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत काम करता है। किसी भी फिल्म को रिलीज़ करने से पहले CBFC से प्रमाण पत्र लेना जरूरी है। फिल्म को रिलीज़ से पहले बोर्ड के सदस्य फिल्म को देखते हैं। उसके बाद बोर्ड के सदस्य फिल्म की समीक्षा करते हैं। फिल्म को कौन सा प्रमाणपत्र देना है। कुछ दृश्य हटाने का सुझाव या पूरी फिल्म को रिजेक्ट करने का निर्णय बोर्ड द्वारा दिया जाता है। सेसंर बोर्ड का एक नियत्रंण के रूप में कार्य है-

1. सामाजिक और नैतिक मूल्यों की रक्षा करना सांप्रदायिक तनाव से बचाव
2. देश की एकता और अखंडता बनाए रखना

3. बच्चों और किशोरों को अनुचित सामग्री से बचाना
4. हिंसा, अश्लीलता, नशे का महिमामंडन जैसी प्रवृत्तियों को रोकना

अत: भारत में सेंट्रल बोर्ड ऑफ फिल्म सर्टिफिकेशन (सीबीएफसी) फिल्मों की सामग्री को नियंत्रित करता है। यह अक्सर उन फिल्मों को प्रतिबंधित करता है जो सामाजिक मानदंडों को चुनौती देती हैं। सेंसरशिप सामाजिक नियंत्रण को बनाए रखने का एक तरीका है, क्योंकि यह विवादास्पद विचारों को दबाती है। लेकिन यह रचनात्मक स्वतंत्रता को सीमित करती है। इसलिए फिल्म निर्माताओं की नैतिक जिम्मेदारी और दर्शकों की समझदारी दोनों महत्वपूर्ण हैं।

14.7 चलचित्र की जनमत में भूमिका

चलचित्र जनमत निर्माण में एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। इसके माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में विचारों, आदर्शों और मूल्यों में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया जा सकता है। फैशन के रुझानों को बदलने में भी चलचित्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसका प्रभाव इसलिए भी अधिक होता है क्योंकि इसमें प्रस्तुत घटनाएँ अत्यंत वास्तविक प्रतीत होती हैं, जिससे दर्शकों पर गहरा भावनात्मक असर पड़ता है। हालाँकि, यह माध्यम हर व्यक्ति तक सीधे नहीं पहुँच पाता है। फिर भी जहाँ प्रेरणा और भावना जगाने का प्रश्न है, वहाँ इसका प्रभाव अन्य किसी भी साधन की तुलना में अधिक सशक्त होता है।

जनमत निर्माण के सभी साधनों का उपयोग सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों ही प्रकार से किया जा सकता है। लोकतंत्र में इन साधनों का उपयोग सदैव जनहित में होना चाहिए, क्योंकि लोकतंत्र का आधार ही 'जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिये शासन' है। किसी भी दिशा में परिवर्तन लाने के लिए सर्वप्रथम जनमत को परिवर्तित करना आवश्यक होता है। इसके लिए पहले जनमत का आकलन करना चाहिए और फिर समस्या के प्रचार तथा उसके स्पष्टिकरण के माध्यम से जनमत को इच्छित दिशा में मोड़ने का प्रयास करना चाहिए।

चलचित्र न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि जनमत निर्माण और सामाजिक बदलाव का भी एक सशक्त माध्यम है। इसका प्रभाव यदि विवेकपूर्ण और जनकल्याण की भावना से किया जाए तो यह समाज को सकारात्मक दिशा में ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

14.8 चलचित्र का सामाजिक नियत्रंण में महत्व

1. सामाजिक नियत्रंण एवं चलचित्र- चलचित्र मुख्य रूप से अनौपचारिक नियंत्रण के अंतर्गत आता है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष रूप से दंड या नियम लागू नहीं करता है। बल्कि कहानियों, चरित्रों और नैतिक संदेशों के जरिए लोगों के मन को प्रभावित करता है। यह व्यक्तियों को सामाजिक मानदंडों के प्रति संवेदनशील बनाता है

और उन्हें स्वेच्छा से इनका पालन करने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, एक फिल्म जो पारिवारिक एकता को दर्शाती है, दर्शकों में परिवार के प्रति जिम्मेदारी की भावना जागृत कर सकती है।

2. **मूल्यों का चित्रण-** भारतीय सिनेमा में परिवार को समाज की आधारशिला के रूप में दर्शाया जाता है। 'हम आपके हैं कौन' (1994), 'कभी खुशी कभी गम' (2001), और 'बागबान' (2003) जैसी फिल्में परिवार के महत्व, कर्तव्य, और सम्मान को महिमामंडित करती हैं। 'कभी खुशी कभी गम' में नायक अपने पिता के निर्णय का पालन करता है और परिवार की एकता के लिए अपने प्रेम का त्याग करता है। यह संदेश देता है कि व्यक्तिगत इच्छाएं परिवार और समाज के हितों से ऊपर नहीं होनी चाहिए। इस तरह, सिनेमा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करता है।

3. **रूढ़ियों और उनके प्रभाव-** सिनेमा अक्सर लैंगिक, जातिगत, और वर्गीय रूढ़ियों को मजबूत करता है। महिलाओं को प्रायः घरेलू भूमिकाओं में दिखाया जाता है—माँ, पत्नी, या बहन के रूप में, जो अपने परिवार के लिए बलिदान करती हैं। पुरुषों को परिवार का मुखिया और रक्षक दिखाया जाता है। 'हम साथ-साथ हैं' (1999) में महिलाएं पारिवारिक एकता को बनाए रखने के लिए अपनी इच्छाओं को दबाती हैं। यह लैंगिक रूढ़ियों को सामान्य बनाता है और दर्शकों में पारंपरिक भूमिकाओं के प्रति स्वीकार्यता बढ़ाता है। इसी तरह, जाति और वर्ग की असमानताओं को अक्सर रोमांटिक या हास्यपूर्ण ढंग से दिखाया जाता है। 'राजा हिंदुस्तानी' (1996) में एक गरीब नायक और अमीर नायिका की प्रेम कहानी है, लेकिन यह सामाजिक असमानता की गंभीरता को कम करके आंकती है। ऐसी फिल्में दर्शकों को यह संदेश देती हैं कि सामाजिक पदानुक्रम स्वाभाविक और स्वीकार्य हैं।

4. **रूढ़ियों को चुनौती देना-** कई फिल्में पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास करती हैं। 'दंगल' (2016) में हरियाणा की महिला कुश्ती खिलाड़ियों की कहानी है। जो पितृसत्तात्मक समाज में सफलता हासिल करती हैं। यह फिल्म लैंगिक समानता का संदेश देती है। इसी तरह, 'क्वीन' (2013) में एक युवती अपनी शादी टूटने के बाद अकेले यात्रा करती है और आत्मनिर्भरता सीखती है। ये फिल्में दर्शकों को पारंपरिक भूमिकाओं पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करती हैं।

4. **सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में सिनेमा-** सिनेमा केवल सामाजिक नियंत्रण को मजबूत नहीं करता है। यह परिवर्तन का माध्यम भी बन सकता है। यह रूढ़ियों को चुनौती देता है, सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाता है, और हाशिए पर पड़े समूहों को सशक्त करता है।

5. **सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता बढ़ाना-** सिनेमा सामाजिक मुद्दों को मुख्यधारा में लाने में प्रभावी है। 'तारे ज़मीन पर' (2007) ने डिस्लेक्सिया पर प्रकाश डाला और शिक्षा प्रणाली में सुधार की मांग को प्रोत्साहित किया। 'पिंक' (2016) ने सहमति और महिलाओं के अधिकारों पर चर्चा शुरू की। पैडमैन

(2018) ने मासिक धर्म स्वच्छता को सामान्य बनाने का प्रयास किया। ये फिल्में दर्शकों को जागरूक करती हैं और सामाजिक सुधार के लिए प्रेरित करती हैं।

6. **हाशिए पर पड़े समूहों को सशक्त बनाना-** सिनेमा समाज के कमजोर वर्गों को आवाज देता है। 'न्यूटन' (2017) ने ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतंत्र की चुनौतियों को दिखाया। 'सुपर 30' (2019) ने गरीब छात्रों की शिक्षा के माध्यम से सामाजिक उन्नति की कहानी बताई। क्षेत्रीय सिनेमा भी इस दिशा में सक्रिय है। तमिल फिल्म 'विशारदाई' (2016) ने पुलिस हिंसा और मानवाधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया। दंगल' यह फिल्म पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की सफलता को दर्शाती है। इसने लैंगिक समानता और खेलों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया। यह फिल्में अधिनस्थ समूहों के संघर्ष को सामने लाती हैं और उन्हें सशक्त करने में मदद करती हैं।
7. **सामाजिक मानदंडों और मूल्यों का प्रसार-** चलचित्र समाज में प्रचलित मानदंडों और मूल्यों को मजबूत करने का एक प्रभावी माध्यम है। यह लिंग भूमिकाओं, पारिवारिक संरचना, और नैतिकता जैसे विषयों को प्रस्तुत करता है। पारंपरिक फिल्में जैसे "हम आपके हैं कौन" पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती हैं। इसमें शादी, रीति-रिवाज और सामूहिकता को इस तरह दिखाया गया है कि दर्शक इन्हें अपने जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित होते हैं। दूसरी ओर, "पिंक" और "थप्पड़" जैसी आधुनिक फिल्में लैंगिक समानता और व्यक्तिगत सम्मान जैसे प्रगतिशील विचारों को प्रस्तुत करती हैं, जिससे सामाजिक नियंत्रण में परिवर्तन और संतुलन दोनों दिखाई देते हैं। यह भी देखा गया है कि चलचित्र क्षेत्रीय संस्कृतियों और परंपराओं को संरक्षित करने में मदद करता है। दक्षिण भारतीय फिल्में जैसे "बाहुबली" और बंगाली सिनेमा की कृतियाँ अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए सामाजिक मानदंडों को दर्शाती हैं। इस तरह, यह समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधता है और व्यवस्था को कायम रखता है।
8. **जागरूकता और शिक्षा का माध्यम-** चलचित्र सामाजिक जागरूकता फैलाने का एक शक्तिशाली साधन है। यह उन मुद्दों को उजागर करता है जो समाज में छिपे हुए हैं या जिन पर चर्चा कम होती है। "स्वदेश" जैसी फिल्में ग्रामीण विकास और आत्मनिर्भरता के महत्व को दर्शाती हैं, जबकि "पद्मावत" ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाती है। पर्यावरण संरक्षण पर बनी फिल्में जैसे "इरादा (2017)", "जल" (2013) लोगों को प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी का एहसास कराती हैं।
9. **स्वास्थ्य के क्षेत्र-** स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी फिल्मों का योगदान उल्लेखनीय है। "हिचकी" ने टॉरेट सिंड्रोम जैसे दुर्लभ रोग पर प्रकाश डाला। 'तारे जमीन पर' में डिस्लेक्सिया की समस्या को दिखाया गया है। यह जागरूकता लोगों को समाज के प्रति जिम्मेदार बनाती है।
10. **मनोरंजन के साथ नियंत्रण का संतुलन-** चलचित्र का प्राथमिक उद्देश्य मनोरंजन है, लेकिन यह इस प्रक्रिया में सामाजिक नियंत्रण को भी प्रभावित करता है। व्यावसायिक फिल्में जैसे "दबंग" और "सिंघम"

पुलिस और कानून व्यवस्था का महिमामंडन करती हैं, जिससे दर्शकों में कानून के प्रति सम्मान बढ़ता है। ये फिल्में नायक को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं जो समाज में अराजकता को खत्म करता है, जिससे लोग व्यवस्था के महत्व को समझते हैं। इन फिल्मों का अतिनाटकीय चित्रण कभी-कभी वास्तविकता से दूर हो जाता है, फिर भी इनका प्रभाव समाज पर पड़ता है।

11. **नकारात्मक प्रभाव और चुनौतियाँ-** चलचित्र का प्रभाव हमेशा सकारात्मक नहीं होता। कुछ फिल्में हिंसा, अपराध और असामाजिक व्यवहार को बढ़ावा देती हैं। "सत्या" जैसी फिल्में, जो यथार्थवादी हैं, अपराध की दुनिया को आकर्षक बना सकती हैं। इसी तरह, अत्यधिक हिंसक फिल्में या वस्तुकरण करने वाली फिल्में समाज में गलत संदेश फैला सकती हैं। यह सामाजिक नियंत्रण को कमजोर करता है, क्योंकि युवा पीढ़ी इन व्यवहारों को सामान्य मानने लगती है।
12. **तकनीकी प्रगति और भविष्य की संभावनाएँ-** आधुनिक युग में, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स (जैसे नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम) ने चलचित्र की पहुँच को बढ़ाया है। वेब सीरीज जैसे "सेक्रेड गेम्स" और "मिर्जापुर" समाज के काले पहलुओं को उजागर करती हैं, लेकिन साथ ही यह सवाल उठता है कि क्या ये नियंत्रण को कमजोर करती हैं। दूसरी ओर, डिजिटल तकनीक ने एनिमेशन और वर्चुअल रियलिटी फिल्मों को जन्म दिया है, जो बच्चों और युवाओं को नैतिक शिक्षा दे सकती हैं। भविष्य में, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और इंटरैक्टिव फिल्में सामाजिक नियंत्रण को और प्रभावी बना सकती हैं।
13. **वैश्विक परिप्रेक्ष्य में चलचित्र-** वैश्वीकरण के दौर में, हॉलीवुड और अन्य अंतरराष्ट्रीय सिनेमा का प्रभाव भी देखा जा सकता है। "द पर्सुइट ऑफ हैप्पीनेस" जैसी फिल्में व्यक्तिगत संघर्ष और सफलता को दर्शाती हैं, जो भारतीय दर्शकों को भी प्रेरित करती हैं। इसी तरह, कोरियाई फिल्म "पैरासाइट" सामाजिक असमानता पर गहरी टिप्पणी करती हैं। यह वैश्विक प्रभाव सामाजिक नियंत्रण को एक नया आयाम देता है, क्योंकि यह विभिन्न संस्कृतियों के मूल्यों को आपस में जोड़ता है।

14.9 सारांश

भारतीय सिनेमा सामाजिक नियंत्रण में एक शक्तिशाली उपकरण है। यह पारंपरिक मूल्यों, रूढ़ियों, और सरकारी प्रचार के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है। दूसरी ओर, यह रूढ़ियों को तोड़कर, जागरूकता बढ़ाकर, और कमजोर वर्गों को सशक्त करके परिवर्तन लाता है। सेंसरशिप इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस प्रकार, भारतीय सिनेमा सामाजिक नियंत्रण और परिवर्तन के बीच एक संतुलन बनाता है, जो इसे समाज के लिए एक अनूठा और प्रभावी माध्यम बनाता है।

चलचित्र समाज के लिए एक दर्पण और मार्गदर्शक दोनों है। यह सामाजिक नियंत्रण को बनाए रखने और बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है, बशर्ते इसका उपयोग सकारात्मक और रचनात्मक तरीके से किया जाए। यह समाज को एकजुट करता है, मूल्यों को सुदृढ़ करता है, और जागरूकता फैलाता है। चलचित्र की यह दोहरी प्रकृति—मनोरंजन और नियंत्रण इसे एक अनूठा और शक्तिशाली उपकरण बनाती है।

14.10 परिभाषिक शब्दावली

चलचित्र- चलचित्र शब्द "चल" और "चित्र" से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "गतिशील चित्र" या "हिलते-डुलते चित्र"।

सेंसर बोर्ड- सेंसर बोर्ड का मुख्य कार्य फिल्मों की सामग्री की समीक्षा करना और उसे सामाजिक एवं नैतिक मानदंडों के अनुसार प्रमाणित करना है।

14.11 बोध प्रश्न के उत्तर

1- B) गतिशील चित्र 2- C) दादा साहब फाल्के 3- B) मूक फिल्म

14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साहित्यिक निबंध – गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.- 26
2. वही, पृ.- 48
3. सिनेमा अभिव्यक्ति का नहीं अन्वेषण का माध्यम है- फिल्मकार कमलस्वरूप (हंस हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी, 2013), पृ. 122
4. सिनेमा में शेक्सपियर आथेलो से ओंकारा तक विजय शर्मा ('हंस' हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी 2013), पृ. 134
5. समाज में सिनेमा आलोक पांडेय ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक 1, दिसंबर, 2012), पृ. 02
6. ये कहाँ आ गए हम, कहाँ जाएंगे बसंतकुमार तिवारी ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक-1, दिसंबर 2012) पृ. 14
7. पत्रकारिता, सिनेमा और बाजार डॉ. कैलाशनाथ पांडेय ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक-1, दिसंबर 2012) पृ. 25
8. शताब्दी मनाता भारतीय सिनेमा शुचिता शरण ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक -1, दिसंबर 2012) पृ. 88

9. पश्चिम और सिनेमा – दिनेश श्रीनेत, पृ. 69

10. How to write film stories - Richard Harison, page 37

14.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जवरीमल्ल पारख, ‘‘लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ’’2001 अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली।

2. राही मासूम रजा, ‘‘सिनेमा और संस्कृति’’2011 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

14.14 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चलचित्र से आप क्या समझतें हैं?

2. सेंसर बोर्ड का मुख्य कार्य क्या है?

3. चलचित्र की विशेषओं का वर्णन कीजिए।

14.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चलचित्र में एक निंबध लिखिए।

2. चलचित्र के विभिन्न प्रकारों के बारे में विस्तार से बताएं।

3. चलचित्र का ऐतिहासिक विकास और भारत में इसका उदय कैसे हुआ?

इकाई 15 नेतृत्व
Leadership

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 नेतृत्व की अवधारणा एवं परिभाषा
15.3 नेतृत्व की विशेषताएं
15.4 नेता का अर्थ एवं गुण
15.5 नेता के प्रकार
15.6 समाजिक नियत्रण में नेता (नेतृत्व) के कार्य
15.7 नेतृत्व के नवीन प्रतिमान
15.8 सारांश
15.9 परिभाषिक शब्दावली
15.10 बोध प्रश्न के उत्तर
15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.13 लघु उत्तरीय प्रश्न
15.14 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

हम किसी भी समाज की कल्पना नेतृत्व के बिना नहीं कर सकते। हर छोटे-बड़े समाज, समूह या समुदाय में किसी न किसी रूप में नेतृत्व की भूमिका अवश्य दिखाई देती है। समाज का समुचित संचालन चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी नेता के मार्गदर्शन, योजनाओं और सुझावों पर निर्भर करता है। नेता समाज में जनमत को दिशा देने और उसे प्रभावित करने का कार्य करते हैं। वे लोगों की भावनाओं, समस्याओं और जरूरतों को समझकर ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जो समाज को एकजुट करता है। नेता अपने भाषणों, निर्णयों और कार्यों के माध्यम से जनता की राय को आकार देते हैं। जनमत निर्माण में नेता की भूमिका केवल मार्गदर्शक की नहीं बल्कि प्रेरक शक्ति की होती है। वे समाज को सोचने, समझने और निर्णय लेने के लिए एक दिशा प्रदान करते हैं।

नेता के कुशल नेतृत्व के कारण ही सामाजिक जीवन में नियमों और मूल्यों की स्थापना संभव हो पाती है। वह समाज, समुदाय, देश और राष्ट्र की उन्नति हेतु विभिन्न योजनाओं के निर्माण में विधान सभा, संसद या मंत्रालय जैसे संस्थानों के माध्यम से भागीदारी करता है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु वह अपने सहयोगियों, साथियों और अधिकारियों को प्रेरित करके जनतम का निमार्ण करता है। अत: नेतृत्व एक ऐसी कला है जो किसी व्यक्ति को दूसरों को प्रेरित करने, मार्गदर्शन देने और एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर करने की क्षमता प्रदान करता है। यह दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है। यह केवल पद या अधिकार का विषय नहीं, बल्कि जिम्मेदारी, दूरदर्शिता और प्रेरणा का समन्वय है। एक सफल नेता वह होता है जो अपने अनुयायियों को सही मार्ग दिखाता है और उनके विश्वास को जीतता है। नेतृत्व का महत्व हर क्षेत्र में देखा जा सकता है, चाहे वह व्यवसाय हो, राजनीति हो, शिक्षा हो या सामाजिक परिवर्तन। एक प्रभावी नेता न केवल अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है, बल्कि उनके भीतर आत्मविश्वास और सकारात्मकता का संचार भी उत्पन्न करता है। प्रिय शिक्षार्थियों इस इकाई में नेतृत्व के विभिन्न पक्षों का समाजशात्रीय द्रष्टिकोण से विवेचन किया गया है।

15.1 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आपके द्वारा समझना सम्भव होगा –

- नेतृत्व की अवधारणा एवं अर्थ परिभाषा
- नेतृत्व की विशेषताएं
- नेता के गुण
- नेता के प्रकार
- समाजिक नियत्रण में नेता (नेतृत्व) के कार्य
- नेतृत्व के नवीन प्रतिमान

15.2 नेतृत्व की अवधारणा एवं परिभाषा

नेतृत्व का शाब्दिक अर्थ है—"नेता का गुण या भाव"। यह वह क्षमता है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति दूसरों को प्रभावित करके सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। नेतृत्व में निर्णय लेने की कुशलता, संवाद, संचार एवं समस्याओं का समाधान करने की क्षमता होती है। सीमैन और मैरिस[1] का विचार है कि- नेता वह है जो द्वसरों को प्रभावित कर ले।

जे.बी. चिताम्बर[2] ने अपनी पुस्तक इन्ट्रोडक्ट्री रूरल सोशियोलॉजी में नेतृत्व को स्पष्ट किया है, कि, प्रत्येक समाज की शक्ति-संरचना में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो व्यक्तियों को प्रोत्साहित करते हैं, प्रेरणा देते हैं,

मार्गदर्शन करते हैं अथवा व्यक्तियों को क्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ऐसी क्रिया को हम नेतृत्व और ऐसे व्यक्तियों को नेता, शक्ति धारण करने वाले, शक्ति मानव, शक्ति केन्द्र तथा शक्ति अभिजात कह सकते हैं। इस प्रकार नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जो नायकत्व से जुड़ी होती है। जिसे नेता द्वारा संपन्न किया जाता है।

लेपियर तथा फ्रान्सवर्थ[3] ने अपनी कृति सोशियल साइकोलॉजी में नेतृत्व को नेता एवं नेतानुगामी के आपस में प्रभावित होने वाले व्यवहारों को बताया है। यह लिखते हैं, नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरे लोगों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार नेता को प्रभावित करते हैं।

सीमेन एवं मॉरिस[4] के अनुसार, "नेतृत्व का तात्पर्य एक व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले उन कार्यों से है जो दूसरे व्यक्तियों को एक विशेष दिशा में प्रभावित करते हैं।" रिचार्ड शिमर ने नेतृत्व के सम्बन्ध में कहा है, "कुछ सामान्य हितों के लिए एक व्यक्ति तथा समूह के मध्य बनने वाले सम्बन्ध एवं इस प्रकार से व्यवहार किया जाना जो उसके द्वारा निर्धारित हो।"

ओ. टीड[5] ने दा आर्ट ऑफ लीडरशिप में नेतृत्व को परिभाषित करते हुए लिखा है, नेतृत्व एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा वांछित लक्ष्यों को पाने के लिए लोगों को सहयोग देने के लिए प्रभावित किया जा सके।

चिताम्बर, लेपियर, फ्रान्सवर्थ, सीमेन, मॉरिस, रिचार्ड शिमर और टीड द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नेतृत्व एक सतत प्रक्रिया है, जो समाज की शक्ति संरचना में नेता और उसके अनुयायियों (सहचर, अनुचर, चरणानुग, अनुपालक या समर्थ) के बीच संचालित होती है। यह एक विशेष प्रकार का व्यवहार होता है जिसमें नेता दूसरों के व्यवहार पर अधिक प्रभाव डालता है, जबकि स्वयं कम प्रभावित होता है। यह एक ऐसी क्रियाविधि है जिसके माध्यम से लोगों को प्रेरित कर, उन्हें प्रभावित करके, सहयोग एवं जनमत प्राप्त किया जाता है ताकि निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

15.3 नेतृत्व की विशेषताएं

एक अच्छा नेता वो होता है जो प्रभावशाली बोल सके, नैतिक हो, दूसरों की भावनाओं को समझे और समय के अनुसार खुद को ढाल सके।

नेतृत्व की परिभाषाओं के आधार पर इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

1. नेता- नेतृत्व प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण तत्व नेता होता है। अगर नेता न हो तो नेतृत्व और अनुगामियोंकी कल्पना नहीं की जा सकती। किसी भी संगठन या समूह में लोगों को एक दिशा में आगे बढ़ाने, संगठित रखने और समूह का मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी नेता की होती है।

2. अनुयायी या अनुगामी- अनुयायियों के बिना नेतृत्व की कोई परिभाषा नहीं होती। यह नेतृत्व की प्रक्रिया का दूसरी अनिवार्य विशेषता हैं। नेता का प्रभाव तभी दिखता है जब लोग उसका अनुसरण करते हैं। नेतृत्व एक दो-तरफा प्रक्रिया है। जहाँ एक ओर नेता मार्गदर्शन करता है, वहीं दूसरी ओर लोग उसके बताए रास्ते पर चलते हैं। नेतृत्व तभी सफल हो सकता है जब अनुगामी अपने नेता के फैसलों, योजनाओं और दिशा-निर्देशों को अपनाएँ। नेता और अनुगामी एक-दूसरे से पूरक होते हैं । दोनों के बिना नेतृत्व संभव नहीं।

3. परिस्थितियाँ - नेतृत्व का प्रभाव और तरीका परिस्थिति के अनुसार बदलता है। संकट की स्थिति में नेतृत्व की भूमिका अधिक निर्णायक होती है। परिस्थितियाँ यानी समय, स्थिति और माहौल नेतृत्व को प्रभावित करती हैं। नेता और अनुयायी एक विशेष सामाजिक या सांस्कृतिक स्थिति में ही आपसी संबंध बनाते हैं और काम करते हैं। समूह के लोगों के आपसी रिश्ते, संस्कृति, विश्वास, मूल्य और भौतिक स्थिति इन्हीं परिस्थितियों के अधार पर अलग-अलग प्रकार के नेता उभरते हैं। जैसे नौकरशाही, लोकतांत्रिक या औपचारिक नेता।

4. कार्य/उद्देश्य- कार्य यानी समूह का मिलकर कोई उद्देश्य पूरा करना। नेतृत्व का कार्य एक निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य की प्राप्ति होती है। यह लक्ष्य समूह का साझा होता है। जिसे नेता और अनुयायी मिलकर प्राप्त करते हैं। नेता तभी सफल माना जाता है जब वह समूह को उद्देश्य की प्राप्ति में मार्गदर्शन देकर कार्यों को पूरा करवाता है।

5. नियोजित व्यवहार- नेतृत्व एक सोच-समझकर किया गया व्यवहार होता है। यह कोई अचानक होने वाली चीज नहीं है। इसमें योजना, सोच, दिशा-निर्देश और प्रभाव शामिल होता है। नेता सोच-समझकर अपने अनुयायियों को दिशा देता है, उनका मार्गदर्शन करता है, और उनकी गतिविधियों को संगठित करता है। जैसा कि "पीगर्स ने लिखा है कि नेतृत्व पारस्परिक उत्तेजना की एक प्रक्रिया है। नेतृत्व के द्वारा समूह के सदस्यों का व्यवहार उत्तेजना के द्वारा नियोजित एवं प्रभावपूर्ण बनाया जाता है।"[6]

6. संचार- नेतृत्व का एक आवश्यक विशेषता है प्रभावी संचार। नेता को अपने विचारों, आदेशों, और प्रेरणाओं को स्पष्ट रूप से अनुयायियों तक पहुँचाना होता है।

7. प्रभाव- नेतृत्व का मूल तत्व व विशेषता है दूसरों पर प्रभाव डालना। यह प्रभाव शक्ति, प्रेरणा, विश्वास या आदर्शों के आधार पर हो सकता है।

8. सतत प्रक्रिया-किसी भी संगठन में नेतृत्व की गतिविधि लगातार चलती रहती है। व्यावसायिक संस्थान की स्थापना से लेकर उसके अस्तित्व तक, नेतृत्व की प्रक्रिया सक्रिय रहती है। प्रबंधक नई-नई तकनीकों को अपनाते रहते हैं और कर्मचारियों को इनसे संबंधित जानकारी, प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इस तरह, नेतृत्व एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो निरंतर गतिशील रहती है।

15.4 नेता का अर्थ एवं गुण

स्प्रोट के अनुसार-"कोई भी जो दूसरों के लिये एक आदर्श है बहुधा एक नेता कहलता है।"[7] इस प्रकार, विभिन्न समूहों में उसी व्यक्ति को नेता माना जाता है जो अन्य सदस्यों के लिए प्रेरणास्रोत हो। पहलवानों के समूह में सबसे कुशल पहलवान ही नेता हो सकता है। जबकि राजनीतिक दल में वही व्यक्ति नेतृत्व करता है जो राजनीतिक रणनीति में माहिर हो। दोनों ही स्थितियों में नेता वही होता है जो दूसरों को मार्गदर्शन करता है और आदर्श प्रस्तुत करता है। अर्थात् जिसे समूह का आदर्श माना जाता है। आदर्श होने के कारण ही समूह के अन्य सदस्य स्वाभाविक रूप से नेता का अनुसरण करने लगते हैं। यही कारण है कि नेता का दूसरों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अनुयायी नेता के निर्देशों का पालन करते हैं, उसकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारना चाहते हैं, और कभी-कभी तो उसके इशारे पर सब कुछ दाँव पर लगा देते हैं। अत: किसी भी समूह को संगठित करने में नेता का प्रमुख दायीत्व नेतृत्व होता है। एक सफल नेता में कुछ मूलभूत गुण होने चाहिए। यह गुण जन्मजात हो सकते हैं, या यह गुण अभ्यास और अनुभव से विकसित कर सकते हैं। । "एक अच्छे नेता के लिए टीड ने 10, ऑलपोर्ट ने 21, बनार्ड ने 31 लक्षणों को बताया है। बाइण्ड ने 20 मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुझाए गए लक्षणों के आधार पर 79 लक्षणों को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया है। एम. एन. बसु ने अपने एक लेख, The Role of Leadership in the Life of an Individual, एल. पी. विद्यार्थी द्वारा सम्पादित पुस्तक Leadership in India में10 गुणों को अनिवार्य माना है**-** सुदृढ़ व्यक्तित्व, दूसरों के प्रति सहानुभूति, अच्छा वक्ता, भीड़ को भाषण से प्रभावित करने वाला, स्पष्ट मौखिक अभिव्यक्ति, समूह मनोविज्ञान का ज्ञाता, ईमानदार, नैतिकता एवं दयालुता, अनुकूलन की क्षमता, सूचनाओं से पूर्ण अवगत, एवं बहु-हितकारी हो। मनोवैज्ञानिकों ने सफल नेता के जो गुण बताए हैं उनमें से निम्नलिखित गुण विशेष उल्लेखनीय हैं-1) लचीलापन, (2) सामाजिकता, (3) शारीरिक लक्षण, (4) परिश्रमी, (5) उद्दीपकता, ((7) आत्म-विश्वास, (8) संकल्प-शक्ति, (9) कल्पना शक्ति, और (10) अन्तर्दृष्टि।"[7]

पिगोर्स[8] का मत- नेतृत्व के विषय में पिगोर्स ने निम्नलिखित बातों को आवश्यक माना है-

1. सामान्य उद्देश्य
2. नेता
3. अनुगामी
4. वर्तमान परिस्थिति

आलपोर्ट[09] के अनुसार नेतृत्व के गुण-आलपोर्ट ने नेता में निम्नलिखित गुण बतलाये हैं-

1. ऊपर उठने का गुण
2. शारीरिक शक्ति

3. अधिक फुर्तीलापन
4. सीधा और प्रभावशाली शरीर
5. मृदुवाणी
6. दृढ़ता
7. सन्मुख बोलने की प्रणाली
8. शक्ति की परिपूर्ति
9. संयम
10. गहनता
11. व्यापक क्रिया क्षेत्र
12. उच्च बुद्धि
13. समझ
14. सामाजिक प्रेरणा से अत्यधिक प्रभावित होने वाला
15. चतुरता
16. उत्साह
17. सामाजिक कार्यों में भाग लेना
18. चरित्र (Character)
19. प्रेरणा शक्ति (Drive)

उपरोक्त गुणों के अनुसार, एक अच्छा नेता वह होता है जो अपने लक्ष्यों के प्रति दृढ़ संकल्पित और समर्पित होता है। उसके पास स्पष्ट दृष्टिकोण और लक्ष्य होते हैं। जिनकी प्राप्ति के लिए वह विषम परिस्थितियों में भी उचित निर्णय लेता है। प्रभावी संचार और संवाद कौशल के माध्यम से वह अपनी बात स्पष्ट रूप से रखता है। एक नेता न केवल दूसरों को प्रेरित करता है, बल्कि उनमें आत्मविश्वास भी उउत्पन्न करता है। ईमानदारी, धैर्य और संयम उसके चरित्र को मजबूत बनाते हैं। जिससे वह अपने अनुयायियों का विश्वास अर्जित करता है। भावनात्मक बुद्धिमत्ता के माध्यम से वह दूसरों की भावनाओं को समझता है और गहरा संबंध बनाता है। दूरदर्शिता, आत्मविश्वास, लचीलापन और अनुकूलनशीलता जैसे गुण भी नेतृत्व को प्रभावशाली बनाते हैं।

15.5 नेता के प्रकार

नेताओं के प्रकार विविध लेखकों द्वारा विभिन्न आधारों पर विभाजित किए गए हैं।

ई० एस० बोगार्डस ने नेताओं को दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा है-

1) **प्रत्यक्ष नेता** – जो लोगों से सीधे संपर्क में रहते हैं।
2) **अप्रत्यक्ष नेता** – जो सामाजिक शक्तियों को प्रभावित करते हैं और दीर्घकाल में ऐतिहासिक बदलाव लाते हैं।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने नेताओं को दलीय, वैज्ञानिक, सामाजिक, मानसिक और पैतृक जैसे उपवर्गों में भी विभाजित किया है।

सैन्डर्सन और नेके ने चार प्रकार के नेताओं की पहचान की-

1) **स्थैतिक नेता** – प्रतिष्ठित लेकिन सीमित प्रभाव वाले।
2) **कार्यकारी नेता** – जिनके पास निर्णय लेने की शक्ति होती है।
3) **व्यवसायिक नेता** – जैसे पादरी, अध्यापक, जो उस समूह का हिस्सा नहीं होते जिसका नेतृत्व करते हैं।
4) **समूह नेता** – जो समूह के सदस्य होते हैं और उनके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं।

नेताओं का वर्गीकरण उनके गुणों व कार्यशैली के आधार पर भी किया गया है:-

1 नेता और अनुयायी संबंधों के आधार पर:-

a) हृदयग्राही नेता – भावनात्मक रूप से निकट और प्रभावशाली।
b) प्रभुताशाली नेता – सीधे संपर्क में नहीं होते पर गहरी समझ रखते हैं।
c) संस्थागत नेता – संस्था से बाहर होते हुए भी प्रभावी होते हैं।
d) विशेषज्ञ नेता – जिनके पास विषय विशेष का गहन ज्ञान होता है।

2 नियुक्ति के आधार पर:-

a) स्वतः नियुक्त – आत्मविश्वास से भरे, स्वयं नेतृत्व ग्रहण करते हैं।
b) समूह द्वारा नियुक्त – समूह में लोकप्रिय और प्रभावशाली।
c) कार्यकारिणी द्वारा नियुक्त – संस्था द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि।
d) प्रशासनिक शैली के आधार पर:
e) प्रजातांत्रिक नेता – जनचयन द्वारा चुने जाते हैं।
f) निरंकुश नेता – पूर्ण शक्ति अपने पास रखते हैं।
g) अघ नेता – दैविक शक्ति वाले, जिनका जनता पर विशेष प्रभाव होता है।
h) उद्देश्य आधारित वर्गीकरण:
i) अधिशासी नेता – जैसे सरकारी अधिकारी।
j) बौद्धिक नेता – जिनकी पहचान ज्ञान और विचारों से होती है।
k) कलात्मक नेता – जो कला के क्षेत्र में प्रसिद्ध होते हैं।

हर्वत्त ढिल्लन और उनके साथियों ने दक्षिण भारत के एक गाँव के अध्ययन के आधार पर ग्रामीण नेताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया:

1) प्राथमिक नेता – पंचायत की बैठक में अनिवार्य उपस्थिति वाले।
2) माध्यमिक नेता – दलों और समूहों के महत्वपूर्ण सदस्य।
3) तृतीयक नेता – सीमित प्रभाव वाले, छोटे समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

एब्लिन बुड के अनुसार नेता के प्रकार**:-**

1) कुलीन नेता – जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय।
2) सरकारी अफसर – जिलाधिकारी आदि।
3) धार्मिक नेता – पुजारी, महंत आदि।
4) अल्पसंख्यक नेता – जो आंदोलनों के माध्यम से सत्ता में आते हैं।
5) निरंकुश पारिवारिक नेता – अधिनायकवादी प्रवृत्ति वाले।
6) मध्यस्थ नेता – जैसे नाई, धोबी, जो जनमत प्रभावित करते हैं।

एस० एन० सिंह और सहयोगियों ने उत्तर भारत के दो गाँवों के अध्ययन से पाँच प्रकार के नेताओं का उल्लेख किया:-

1) परम्परागत नेता
2) राजनैतिक नेता
3) मत-निर्माता
4) निर्णयकर्ता
5) जाति आधारित नेता

नेतृत्व का स्वरूप समय, स्थान और सामाजिक परिवेश के अनुसार बदलता रहता है। विभिन्न विद्वानों और समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत ये वर्गीकरण यह स्पष्ट करते हैं कि नेता केवल राजनीतिक या प्रशासकीय ही नहीं होते, बल्कि वे धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक रूपों में भी समाज को दिशा देने का कार्य करते हैं। इस प्रकार, नेतृत्व एक बहुआयामी अवधारणा है जो समाज की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विविध रूपों में प्रकट होती है।

बोध प्रश्न

1. हर्वत्त ढिल्लन और उनके साथियों ने ग्रामीण नेताओं को विभाजित नहीं किया-

a) प्राथमिक नेता – पंचायत की बैठक में अनिवार्य उपस्थिति वाले।
b) माध्यमिक नेता – दलों और समूहों के महत्वपूर्ण सदस्य।

c) तृतीयक नेता – सीमित प्रभाव वाले, छोटे समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं।
d) चतुर्थ नेता- जो आंदोलनों के माध्यम से सत्ता में आते हैं।

2. किसके अनुसार, "कोई भी जो दूसरों के लिये एक आदर्श है बहुधा एक नेता कहलता है।"
a) स्प्रोट के अनुसार
b) एब्लिन बुड
c) ई० एस० बोगार्डस
d) सैन्डर्सन

15.6 समाजिक नियंत्रण में नेता (नेतृत्व) के कार्य

नेता और नेतृत्व के कार्यों को एक-दूसरे से अलग करके पूरी तरह समझा नहीं जा सकता। नेता का प्राथमिक लक्ष्य समूह के नैतिक स्तर को उन्नत कर सामाजिक नियंत्रण स्थापित करना है, किंतु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे कई अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। एक नेता का पद अनेक जिम्मेदारियों और भूमिकाओं से परिपूर्ण होता है। वह न केवल मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है, बल्कि समाज सुधारक, योजनाकार, नीति-निर्माता और संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है। क्रेच और क्रचफील्ड के अनुसार "प्रत्येक नेता को किसी-न-किसी मात्रा में अधिशासक, नियोजक, नीति-निर्धारक, विशेषज्ञ, समूह का वाह्य प्रतिनिधि, आन्तरिक सम्बन्धों का नियन्त्रक, दण्ड और पुरस्कार का निर्धारक, पंच और मध्यस्थ तथा आदर्श के रूप में कार्य करना होता है।"[08] इस दृष्टिकोण से, सामाजिक नियंत्रण की स्थापना के लिए नेता द्वारा किए जाने वाले इन विविध कार्यों के माध्यम से नेतृत्व के महत्व और उसकी व्यापक भूमिका को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है

(1) सामाजिक व्यवस्था और नियंत्रण- नेता सामाजिक नियमों, परंपराओं, और मूल्यों को बनाए रखने के लिए कार्य करते हैं। वे समुदाय में नैतिकता और अनुशासन को बढ़ावा देते हैं, जिससे सामाजिक एकता बनी रहती है। उदाहरण के लिए, वे सामाजिक विचलनों (जैसे हिंसा या असामाजिक गतिविधियों) को रोकने के लिए सामुदायिक नियम लागू करते हैं।

(2) जनमत निमार्ण व नेतृत्व - जनमत का तात्पर्य जनता के सामूहिक विचार, मत और निर्णयों से होता है। जिन्हें किसी विशेष समस्या या मुद्दे पर व्यक्त किए जाता हैं। यह जरूरी नहीं कि हर व्यक्ति एक जैसे विचार रखे, लेकिन जनमत आमतौर पर बहुमत या प्रभावशाली मत को दर्शाता है। ''मैक्डुगल ने इसे जनता की नैतिक धारणायें माना है।''[10] किंतु यह केवल नैतिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों से भी संबंधित होता है। जनमत-निर्माण में नेतृत्व की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। नेता न केवल जानकारी देते हैं, बल्कि विचारधारा को एक दिशा देने और लोगों को विशेष प्रतिक्रियाओं के लिए प्रेरित करने की क्षमता रखते हैं। एक स्वस्थ नेतृत्व, विवेकपूर्ण जनमत को जन्म देता है, जबकि अस्वस्थ नेतृत्व जनमत को भीड़ जैसा बना सकता

है। इसके अलावा शासन भी जनमत-निर्माण में अहम भूमिका निभाता है। एक सफल सरकार (नेता) या तो जनमत की अनुरूप कार्य करती है। अपनी नीतियों के पक्ष में जनमत तैयार करती है। लोकतंत्र में शासन या नेता जनमत की उपेक्षा कर लंबे समय तक नहीं सकता है। राजनीतिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जनमत का निर्णायक प्रभाव होता है, र इसलिए नेता और जनता के बीच घनिष्ठ संबंध बनाए रखना अत्यावश्यक है।

(3) पुरस्कार एवं दंड का निर्धारण- अच्छे कार्यों को प्रोत्साहित करने और अनुचित व्यवहार को हतोत्साहित करने के लिए नेता पुरस्कार (जैसे सम्मान या सामुदायिक मान्यता) और दंड (जैसे सामाजिक बहिष्कार या जुर्माना) निर्धारित करते हैं। यह सामुदायिक अनुशासन को बनाए रखने में मदद करता है।

(4) मार्गदर्शन एवं प्रेरणा प्रदान करना-ग्रामीण नेता समुदाय के लिए दिशा-निर्देशक और प्रेरणा स्रोत होते हैं। वे व्यक्तियों और समूहों को शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक विकास के अवसरों की ओर प्रेरित करते हैं।

(5) आदर्श एवं मूल्यों की स्थापना- अपने व्यवहार, नैतिकता, और कार्यों के माध्यम से नेता एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो समुदाय के लिए अनुकरणीय होता है।

(6) संदेशवाहक की भूमिका- नेता समुदाय और बाहरी संस्थाओं (जैसे सरकारी विभाग, NGOs) के बीच संदेशवाहक के रूप में कार्य करते हैं। वे समुदाय की समस्याओं को बाहरी मंचों तक पहुंचाते हैं और विकास योजनाओं को ग्राम तक लाते हैं।

(7) मध्यस्थता- समुदाय या संगठन में छोटे-मोटे विवाद आम हैं। नेता इन विवादों को निष्पक्ष और शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाने में मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। जिससे सामुदायिक सद्भाव बना रहता है। गुटबन्दी की प्रक्रिया को रोकना, नेता का प्रमुख कार्य है।

(8) विकास योजनाओं का निर्माण- नेता स्थानीय जरूरतों के आधार पर विकास योजनाएं बनाते हैं, जैसे सड़क निर्माण, स्कूल स्थापना, या स्वास्थ्य केंद्रों का विकास।

(9) दक्षता-कार्य- नेता स्वयं के क्षेत्र के लिए दक्ष-व्यक्ति (विशेषज्ञ) के रूप में भी कार्य करता है। वह अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं, सम्बन्धित सूचनाओं, समाधान आदि को तैयार करता है। सम्बन्धित योजनाकारों, कर्मचारियों आदि को सूचनाएँ एवं समाधान उपलब्ध कराता है।

(10) संरक्षण-कार्य- नेता अपने समूह या संगठन के सदस्यों का संरक्षक होता है। समुदाय या संगठन के लोग भी नेता को अपने समुदाय या संगठन के सदस्यों का संरक्षक और प्रतिनिधि मानते हैं।

(11) सामाजिक सुधार एवं प्रगतिशील परिवर्तन- नेता सामाजिक बुराइयों, जैसे अशिक्षा, बाल विवाह, और लैंगिक भेदभाव, को दूर करने के लिए जागरूकता और सुधारात्मक कदम उठाते हैं। केवल वही नेता प्रभावी ढंग से नेतृत्व कर सकता है जो समुदाय के लिए अधिक से अधिक विकास और सुधार कार्यक्रम शुरू करे तथा उन्हें सफलतापूर्वक पूरा करे। हिचकॉक ने अपने अध्ययन क्षेत्र खालापुर में देखा कि वहाँ के राजपूत नेता ने सामुदायिक स्तर पर समाज सुधार कार्यक्रमों को लागू किया।

(12) प्रबन्धकारिता (प्रभावी प्रबंधन और संगठन)- नेता का व्यक्तित्व बहुआयामी होता है, जिसमें प्रबन्धन की क्षमता भी शामिल है। वह अपने क्षेत्र के प्रबन्धक के रूप में कार्य करता है। नेता समुदाय के संसाधनों, परियोजनाओं, और गतिविधियों का प्रबंधन करते हैं। वे सामुदायिक आयोजनों और विकास परियोजनाओं को व्यवस्थित करते हैं। समुदाय के सदस्यों की योग्यता व आवश्यकता के आधार पर कार्यों का विभाजन करता है तथा जिम्मेदारियाँ सौंपता है। वह इन कार्यों को पूर्ण होने तक निगरानी करता है। आवश्यक सहायता उपलब्ध करवाने की व्यवस्था करता है। सूखा, अकाल, बाढ़, महामारी या अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय, वह गाँववासियों के लिए विभिन्न संगठनों, एजेंसियों और सरकार से यथासंभव सहायता प्राप्त करता है। सरकारी अधिकारियों के समक्ष वास्तविक स्थिति प्रस्तुत कर अधिकतम सहायता हासिल करने का प्रयास करता है।

(13) नीतियों और नियमों का निर्माण- नेता समुदाय के लिए नीतियां और नियम बनाते हैं, जो सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हैं। ये नीतियां स्थानीय जरूरतों और दीर्घकालिक लक्ष्यों पर आधारित होती हैं।

अत: उपरोक्त से स्पष्ट है कि नेता एक बहुआयामी भूमिका निभाते हैं, जो सामाजिक एकता, आर्थिक प्रगति, और सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा देती है। उनके कार्य समुदाय को संगठित और प्रगतिशील बनाने में महत्वपूर्ण हैं। समावेशी दृष्टिकोण और सामुदायिक भागीदारी के साथ नेतृत्व को और प्रभावी बनाया जा सकता है।

15.7 नेतृत्व के नवीन प्रतिमान

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जिन राजनीतिक मूल्यों, आदर्शों और मौलिक अधिकारों की मांग की गई थी, उन्हें स्वतंत्रता के पश्चात धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सार्वभौमिक संविधान द्वारा भारत के सभी नागरिकों को प्रदान किया गया। इस प्रक्रिया में विशेष रूप से अनेक कानूनों, योजनाओं और नवाचारों जैसे प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण, त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था, तथा मतदान अधिकार ने नेतृत्व प्रणाली में क्रांतिकारी बदलाव लाए। पारंपरिक नेतृत्व जो मुख्य रूप से अधिकार-आधारित और व्यक्तिकेंद्रित थे। किन्तु आज का नेतृत्व सहयोग, समावेशिता, तकनीकी नवाचार, और सामाजिक प्रभाव पर केंद्रित है। ये प्रतिमान वैश्विक और स्थानीय स्तर पर संगठनों, समुदायों, और समाज को प्रभावित कर रहे हैं। भारत में नेतृत्व का स्वरूप अब परंपरागत और वंशानुगत न रहकर लोकतांत्रिक, राजनीतिक, विविधतापूर्ण और सामूहिक होता जा रहा है। आधुनिक समाज में नेतृत्व का स्वरूप निरंतर परिवर्तित हो रहा है। नेतृत्व के प्रमुख नवीन प्रतिमानों का विवरण निम्नवत् है

1. **राजनीतिक नेतृत्व का प्रचलन-** परंपरागत सामाजिक या धार्मिक नेतृत्व की जगह अब राजनीतिक दलों से जुड़े नेता नेतृत्व में सक्रिय भूमिका निभा रहे। अब परंपरा नही राजनैतिक दलों की रणनीतियों, जातिगत समीकरणों और बहुमत के समर्थन से नेतृत्व तय होता है।

2. **परिवर्तनशील नेतृत्व-** परंपरागत नेतृत्व के अंत के बाद अब नेता को ग्रामीणों की अपेक्षाओं के अनुसार स्वयं को लगातार ढालना पड़ता है। मतदान के ज़रिय नेताओं को बदल सकते हैं, जिससे नेतृत्व अधिक लचीला और उत्तरदायी बन गया है।
3. **लोकतांत्रिक नेतृत्व का उदय-** नेतृत्व अब वंशानुगत नहीं बल्कि अर्जित होता है। गुप्त मतदान और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण ने नेतृत्व को समावेशी और लोकाभिमुख बना दिया है।
4. **समावेशी नेतृत्व-** यह नेतृत्व विविधता को अपनाता है और सभी व्यक्तियों, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों, को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करता है। वर्तमान में नेतृत्व उच्च जातियों और भू-स्वामियों के बजाय किसानों, मजदूरों, कारीगरों जैसे मध्यम वर्गीय लोगों के हाथों में है। आरक्षण और राजनीतिक जागरूकता के चलते अनुसूचित जातियों व जनजातियों का प्रभाव भी बढ़ा है।
5. **शिक्षा का बढ़ता महत्व-** शिक्षित नेताओं की संख्या बढ़ी है, जिससे पंचायत संचालन, वित्तीय प्रबंधन और सरकारी कामकाज में पारदर्शिता आई है। अब नेतृत्व में शिक्षित व्यक्ति अधिक प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं।
6. **युवा एवं महिला प्रतिनिधित्व** –समाज वृद्ध नेताओं के स्थान पर युवा, क्रियाशील और परिवर्तनशील विचारधारा वाले नेताओं को प्राथमिकता दे रहा है। वर्तमान में महिलाएं भी राजनिति में अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज कर रही है। यह बदलाव नेतृत्व को अधिक प्रगतिशील और व्यावहारिक बना रहा है।
7. **करिश्माई नेतृत्व** – व्यक्तिगत आकर्षण और प्रेरणादायक संप्रेषण शैली से जनसमूह को प्रभावित करता है।
8. **डिजिटल नेतृत्व** – तकनीकी प्लेटफ़ॉर्मों के उपयोग से प्रभावशाली और समकालीन नेतृत्व को दर्शाता है।

आधुनिक समाज में नेतृत्व का स्वरूप अब अधिक समावेशी, उत्तरदायी, परिवर्तनशील और जनोन्मुखी बन गया है। यह नेतृत्व अब केवल पद नहीं बल्कि जनसेवा, संवाद और नवाचार का माध्यम बनता जा रहा है।

15.8 सारांश

नेता अपने नेतृत्व के माध्यम से व्यक्तियों, समूहों या संगठनों को एक दिशा प्रदान करता है। नेतृत्व केवल अधिकार या पद का परिणाम नहीं है। बल्कि नेतृत्व में प्रभाव डालने, प्रेरणा देने और दिशा प्रदान करने की क्षमता है। नेतृत्व एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति को समाज, संगठन या राष्ट्र की दिशा निर्धारित करने में सक्षम

बनाता है। इनका प्रथम दायित्व जनता की समस्याओं को अपने कुशल शासन से दूर करने का है। एक अच्छा नेता न केवल अपने समूह को प्रेरित करता है, बल्कि अपने विचारों, कार्यों और व्यवहार के माध्यम से दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है। नेता नेतृत्व के माध्यम से अपने संगठनों और समाज को सकारात्मक दिशा में ले जा सकें। नेतृत्व सामाजिक नियत्रंण का प्रमुख अभिकरण है।

15.9 परिभाषिक शब्दावली

सामाजिक नियंत्रण- समाज में अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने हेतु मान्यताओं और नियमों का पालन सुनिश्चित करने की प्रक्रिया।

जनमत- किसी सामाजिक, राजनीतिक या नैतिक मुद्दे पर व्यक्तियों के बहुमत या प्रभावशाली समूह की सम्मिलित राय।

नेता- वह व्यक्ति जो समाज या समूह को दिशा देता है और उनके विचारों व क्रियाओं को प्रभावित करता है।

नेतृत्व- वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति समूह को प्रेरित, मार्गदर्शित और संगठित करता है।

15.10 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1

d) चतुर्थ नेता- जो आंदोलनों के माध्यम से सत्ता में आते हैं।

बोध प्रश्न 2

a) स्प्रोट के अनुसार

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह. वी. एन., सिंह जनमजेय (2013). ग्रामीण समाजशास्त्र. दिल्ली: विवेक प्रकाशन, पेज न. 131
2. मुखर्जी, रवीन्द्र नाथ (2018). ग्रामीण समाजशास्त्र . आगरा: एस बी पी डी पब्लिकेशन्स. पृष्ठ सं. 101
3. वही, पृष्ठ सं. 101
4. वही, पृष्ठ सं. 101
5. वही, पृष्ठ सं. 102
6. वही, पृष्ठ सं. 103
7. वही, पृष्ठ सं. 105-106

8. शर्मा रामनाथ, शर्मा राजेन्द्र कुमार (1996). सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण. दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड.

9. शर्मा रामनाथ, शर्मा राजेन्द्र कुमार (1996). सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण. दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड.

10. Ibid, p. 417

11. Wm. Mocdougall, The Group Mind, pp198-199

15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जनमजेय सिंह वी. एन. सिंह. (2013). ग्रामीण समाजशास्त्र. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

2. जी० के० अग्रवाल (2000) सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स.

3. रवीन्द्र नाथ मुखर्जी (2018). ग्रामीण समाजशास्त्र . आगरा: एस बी पी डी पब्लिकेशन्स

4. रामनाथ शर्मा, राजेन्द्र कुमार शर्मा (1996). सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण. दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड.

5 . https://www.iese.edu/standout/types-leaders/

15.13 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नेता के लिए आवश्यक गुणों का विवेचना कीजिए।
2. नेता के प्रमुख प्रकार बताइए।
3. समाजिक नियंत्रण में नेतृत्व की क्या भूमिका है?
4. **नेतृत्व की विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पड़ी लिखिए।**

15.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व का अर्थ स्पष्ट करते हुए नेता के प्रमुख प्रकार बताइए।
2. समाजिक नियंत्रण में नेतृत्व की क्या भूमिका है? व्याख्या कीजिए।
3. नेता के प्रकार की सविस्तार विवेचना कीजिए।